Peer Reviewed / Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

Impact Factor - 3.855 (SJIF)

# पँखुड़ी

# Pankhuri

AN

## INTERDISCIPLINARY JOURNAL

(BIANNUAL, BILINGUAL)

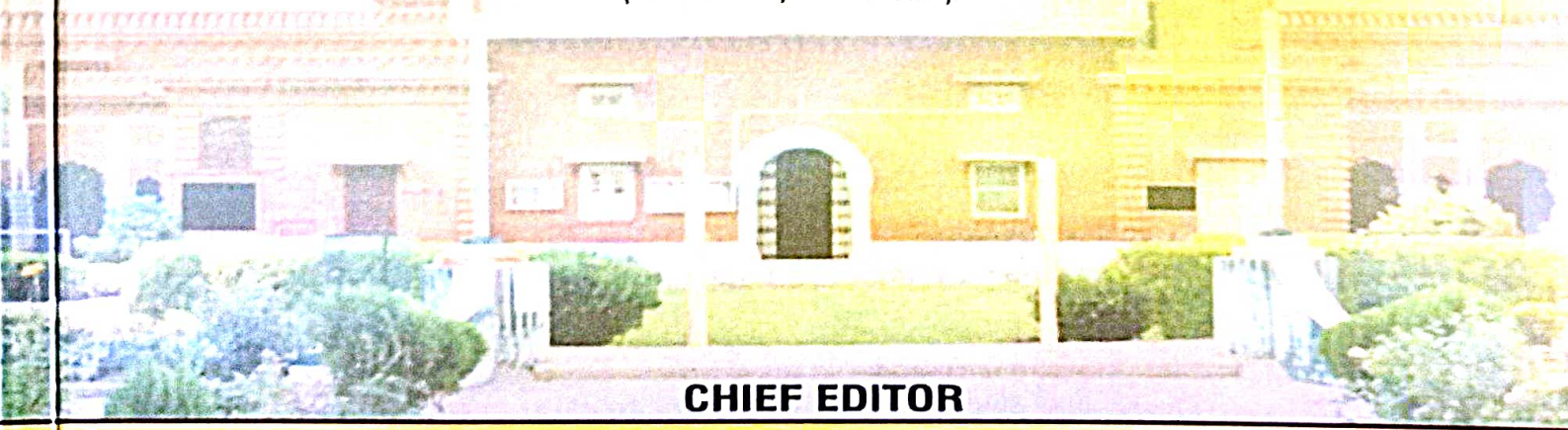

CHIEF EDITOR

**Prof. Virendra Singh**

Editor:

**Dr. Kiran Garg**

gargkiran101@gmail.com

www.pankhurijournal.in

09456481541, 09412106486

Peer Reviewed/ Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

**Chief Editor :**

- **Prof. Virendra Singh :** Principal, Digambar Jain College, Baraut, Baghpat (U.P.) INDIA

**Editor :**

- **Dr. Kiran Garg :** Asst. Prof., B.Ed. Deptt., Digambar Jain College, Baraut, Baghpat (U.P.) INDIA

**Editorial and Advisory Board Cum Review Committee :**

- **Prof. P. Ramaiha** : Former VC, B.R. Ambedkar Uni, Hyderabad. (Telengana).
- **Prof. B.L. Shah** : Former Director, UGC-ASC, Nainital (Uttrakhand)
- **Prof. P.K. Pandey** : Ex. Director of Education, UPRTOU, Prayagraj (U.P.)
- **Dr. R.P. Jain** : Ex. Dean of Education Deptt., C.S.S. University, Meerut. (U.P.)
- **Prof. P.K. Mishra** : Director of CPRHE, NIEPA, New Delhi
- **Prof. Yash Pal Singh** : Prof. Edu. Deptt., M.J.P. Rohilkhand Uni., Bareilly. (U.P.)
- **Prof. Anju Agarwal** : Prof. Edu. Deptt., M.J.P. Rohilkhand Uni., Bareilly. (U.P.)
- **Prof. Vijay Jaiswal** : Prof. Edu. Deptt., C.C.S. University, Meerut (U.P.)
- **Prof. Shah Mohd. Ashraf** : Prof., Physics Deptt., N.I.T. Srinagar (Jammu & Kashmir)
- **Dr. Shikha Chatturvedi** : Ex. Prof. & HOD. of Edu Deptt., N.A.S. College, Meerut (U.P.)
- **Prof. Sudhir Kumar Pundir** : Prof., Education Deptt., Meerut College, Meerut (U.P.)
- **Prof. Alka Tiwari** : Prof. & HOD Drawing & Fine Art Deptt., NAS College, Meerut (U.P.)
- **Dr. Pradeep D. Waghmare** : Asso. Prof. of History Deptt., R.R.A. College, Matunga, Mumbai (M.H.)
- **Dr. Anshumali Sharma** : Ex. SLO, NSS Cell of Hr. Edu. Deptt., Govt. of India, Lucknow (U.P.)
- **Dr. Bharti Tyagi** : Asso. Prof., English Deptt., D.J. College, Baraut - Baghpat (U.P.)
- **Dr. Usha Rani Malik** : Asst. Prof., Education Deptt., Maharaja Surajmal Institute, New Delhi
- **Dr. Priyanka Bhardwaj** : Uttam School for Girls, Subject Geography, Ghaziabad (U.P.)
- **Dr. Rekha Ojha** : Asst. Prof, Philosophy & Comparative Religion Deptt., Visva Bharti University, Bolpur, Shanti Niketan (W.B.)
- **Dr. Devendra Kumar** : Asso. Prof. & HOD Sanskrit Deptt. Shri Varshney College, Aligarh (U.P.)
- **Dr. Mamta Sharma** : Asso. Prof. Hindi Deptt.,Govt. College, Krishan Nagar, (Haryana)
- **Dr. Kaulesh Kumar** : Secretary General (Founder) ABTO, Dept. of Tourism, Govt. of Telangana (India)
- **Dr. Shailendra Kr. Singh** : Asst. Prof., Department of Philosophy, Magadh University, Bodhgaya (Bihar)
- **Dr. Prem Singh Sikarwar** : Assistant Professor, School of Education, Shri Lal Bahadur Shastri National Sanskrit University New Delhi -110016

पँखुड़ी
Pankhuri
AN
INTERDISCIPLINARY JOURNAL
(BIANNUAL, BILINGUAL)

Peer Reviewed/ Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-3950

# Contents


1. "A Comparative Study of E-banking Services in Private and Public Sector Banks, Assessing Its Impact On Customer Satisfaction" – Dhwani Gupta 01
2. Artificial Intelligence and Indian Higher Education
Saroj, Prof. Vijay Jaiswal 04
3. भारतीय परिप्रेक्ष्य में तीर्थाटन, विरासत संरक्षण और समावेशी शिक्षा
डॉ० प्रेम सिंह सिकरवार, 07
4. वैश्विक सन्दर्भ वर्तमान भारतीय शिक्षा
भारती शर्मा, गवेषिका 10
5. कौटिल्य नीतियों की वर्तमान में प्रासंगिकता
डॉ० देवेन्द्र कुमार 13
6. भारतीय ज्ञान परम्परा तथा भारतीय नृत्य कला
अदिति सामन्त (अनुसन्धात्री) 16
7. संस्कृतवाङ्मये वेदांगेषु शिक्षायाः भूमिका
बिरंचीनारायणरथः 20
8. श्रीमद्भगवद्गीता में निहित मूल्यों की सार्थकता
डॉ० मनोज कुमार मीणा 22
9. विश्वनाथकविराज तं मम्मटकाव्यलक्षणखण्डनं स्वमतस्थापनम् च
पूनम कुमारी 27
10. 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम : एक पुनरावलोकन
डॉ० मुकेश पाल, रोहित कश्यप 30
11. Value Education : Need of the Hour
Prof. Vijay Jaiswal, Shilpi Agarwal 32
12. "A Comparative Study of Teaching Competency of Rural & Urban Secondary School Teachers of Meerut District of Uttar Pradesh" — Amit Jain 41
13. आयुर्वेदिक लोकोद्रियों से रोगों का समाधान
डॉ० संतोष गोडरा 44
14. उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत विद्यार्थियों की अधिगम शैली का तुलनात्मक अध्ययन
डॉ० जितेन्द्र सिंह गोयल, दीपांजली 47
15. बिहारी के काव्य में समाज का यथार्थ स्वरूप
डॉ० ओमवीर सिंह 52
16. वैश्विक परिप्रेक्ष्य में राम काव्य
डॉ० शीतल 54
17. भारतीय मातृभाषा शिक्षण का महत्व
डॉ० ऊषा रानी मलिक 56
18. ऐतिहासिक व धार्मिक दृष्टि से सुल्तानपुर
कंचन देवी, प्रो० नीतू वशिष्ठ 58
19. नवीन प्रवृत्तियाँ व लोक-कलाऐं
सतेन्द्र कुमार, प्रो० वन्दना वर्मा 61
20. मधु कांकरिया के उपन्यास 'सेज पर संस्कृत' में नारी विद्रोह का स्वर : धार्मिक मान्यताओं एवं आडम्बरों के संदर्भ में
सरिता पारीक 64
21. A Study of Personality and Career Aspiration in Relation with Academic Achievement of Secondary School Students – Dr. Vinita, Neetu Singh 67
22. महिला सशक्तीकरण एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020
डॉ० लोमेश कुमार 71
23. A Comparative Study of the Attitude of Government Secondary School Teachers of Different Stream (Science & Art) Towards Teaching Profession – Dr. Kiran Garg, Dr. Preeti Sharma, Dr. Amit Kumar Sharma 73


पँखुड़ी Pankhuri. AN INTERDISCIPLINARY JOURNAL

Peer Reviewed/ Refereed Research Journal, Vol. 9, Issue 2, July - Dec 2023 ISSN 2454-39

# भारतीय परिप्रेक्ष्य में तीर्थाटन, विरासत संरक्षण और सामावेशी शिक्षा

डॉ प्रेम सिंह सिकरवा
सहायक प्रोफेसर, शिक्षापी
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली–1100

## सारांशिका

भारत में प्राचीन समय से ही तीर्थाटन और सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण राजाओं, जागीरदारों, सेठों और समाजसेवियों के द्वारा किया जाता रहा है। आजादी के बाद भी उसी प्रकार उन तीर्थों और विरासतों का संरक्षण हो रहा है तथा कुछ संरक्षण के अभाव में महत्वपूर्ण विरासत स्थल अपना अस्तित्व भी खो चुके थे। इसलिए भारत सरकार ने तीर्थाटनों और विरासत स्थलों के संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किए तथा संविधान द्वारा महत्वपूर्ण तीर्थाटन और विरासत स्थलों के संरक्षण हेतु नियम तथा प्रावधानों को लागू किया गया, जिससे इनका संरक्षण तथा सुरक्षा मिल सके। इसके लिए भारतीय संविधान की सूचियों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान की संघ सूची की मद संख्या सड़सठ (67), राज्य सूची की मद संख्या बारह (12) तथा संविधान की समवर्ती सूची की मद संख्या चालीस (40) भारतीय विरासत संरक्षण से संबंधित है। भारतीय तीर्थाटन की विरासत की विशाल धरोहर भंडार को वैश्विक स्तर पर इसकी अनूठी सांस्कृतिक पहचान के एक महत्वपूर्ण अंग के रूप में चिह्नित किया गया है। न केवल वर्तमान समय में विरासत संरक्षण और परिरक्षण को लेकर जनसामान्य जागरूक हैं अपितु केन्द्र एवं राज्य सरकारें तीर्थाटन को लेकर बहुत ही गम्भीरता से कार्य कर रही हैं। परन्तु केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा इन विरासतों के संरक्षण व रखरखाव पर होने वाले वित्तीय प्रबन्धन की व्यवस्था करना बहुत कष्टकर है। तीर्थाटन और विरासत संरक्षण हेतु सरकारी प्राधिकार द्वारा धन की कमी प्रमुख चुनौती बनी हुई है।

समावेशी शिक्षा उस शिक्षा को कहते हैं जिसमें सामान्य विद्यालय में बाधित एवं सामान्य बालकों को एक ही साथ रख कर शिक्षा प्रदान करने का कार्य किया जाता है। समावेशी शिक्षा अपंग बालकों की शिक्षा सामान्य स्कूल तथा सामान्य बालकों के साथ कुछ अधिक सहायता प्रदान करने की ओर इंगित करती है। यह शारीरिक तथा मानसिक रूप से बाधित बालकों को सामान्य बालकों के साथ सामान्य कक्षा में शिक्षा प्राप्त करना विशिष्ट सेवाएँ देकर विशिष्ट आवश्यकताओं के प्राप्त करने के लिए सहायता करती है। इस ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था और तकनीकी दक्षता वाले 21वीं सदी के भारत की अस्मिता और उसके विश्व गुरू बनने की प्रक्रिया एक सत्त् एवं समावेशी शिक्षा के माध्यम से सम्भव हो सकेगी। इस सन्दर्भ में भारत की नई शिक्षा नीति 2020 महत्वपूर्ण कदम साबित होने जा रही है। शिक्षा मानवीय क्षमताओं के विकास का प्रमुख साधन हैं। शिक्षा के माध्यम से एक समावेशी एवं न्याय संगत समाज का निर्माण करके राष्ट्र का सत्त, संतुलित और सम्पोषणीय विकास सुनिश्चित किया जाता हैं। सुशिक्षित व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की प्रगति का संवाहक होता है, जबकि अशिक्षित या अर्ध–शिक्षित व्यक्ति राष्ट्रीय विकास में बाधक बन रहे हैं।

भारत की प्राचीन ज्ञान परम्परा और आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली (प्रतीची एवं प्राची) के संगम के साथ नई शिक्षा नीति 2020 वैश्विक पटल पर भारत की मजबूत उपस्थिति दर्ज काने में सफल साबित होगी। एक समय था, जब भारतवर्ष की समग्र शिक्षा प्रणाली का डंका पूरे विश्व में बजता था। भारत में ज्ञानार्जन हेतु दूर–दूर से लोग आया करते थे। उत्तर में तक्षशिक्षा, पूर्व में नालंदा और विक्रमशिला, सौराष्ट्र में वल्लभी तथा दक्षिण में कांथालूरसाला ऐसे संस्थान रहे हैं, जिनमें डिग्रीधारी नहीं, बल्कि ज्ञानवान, विवेकी, साहसी, संतोषी, उद्यमी और आत्मनिर्भरवादी पथ तैयार किये जाते थे और विभिन्न विषयों पर गहन अनुसन्धान होते रहते थे। आज भी वैसा ही प्रयास अपेक्षित है।

**मुख्य बिन्दु** : भारतीय, तीर्थाटन, विरासत संरक्षण, समावेशी शिक्षा।

**प्रस्तावना** : भारत के पास एक समृद्ध धरोहर (Heritage) रही है जो पुरातात्त्विक संपत्तियों और आश्चर्यजनक स्मारकों का भंडार है। वे सभ्यता की एक अद्वितीय विरासत का प्रतिनिधित्त्व करती हैं और इसलिये निर्मित धरोहर (built heritage) के संरक्षण को आमतौर पर समाज के दीर्घकालिक हित में माना जाता है। लेकिन भारत के अधिकांश स्थापत्य धरोहर (architectural heritage) और स्थल अज्ञात तथा काफी हद तक असंरक्षित बने रहे हैं और जो संरक्षित हैं, वे भी जलवायु परिवर्तन एवं असंवहनीय पर्यटन अभ्यासों से संबद्ध चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इस परिदृश्य में, भारतीय धरोहर से संबंधित मुद्दों को सावधानी से चिह्नित किया जाना चाहिये और व्यापक तरीके से इसका समाधान किया जाना चाहिये।

तीर्थाटन एवं विरासत संरक्षण में कार्य करने वाले संगठन और संस्थाएँ संबंधित कार्य में विशेषज्ञता नहीं रखने वाले व्यवसायों को विरासत स्थलों के रख–रखाव की अनुमति देने से उनके ऐतिहासिक महत्त्व के खोने की समस्या देखी जा सकती है। तीर्थाटन को प्राचीन समय में राज्याश्रय प्राप्त था और भारत के राजाओं ने अपने राज में अनेक किलें, मन्दिर, महल, विद्यालय, आश्रम, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, तालाब, सरोवर, बावडी, नहर, बुर्ज, सराय, बाग–बगीचे बनाकर प्रजा का पालन किया। अतीत की ये धरोहरें संरक्षण के अभाव में या पुनरूद्धार के अभाव में मानव जीवन और जीव–जन्तुओं को लिए जोखिम उत्पन्न कर रही हैं। इन विरासत स्थलों को धरोहर की संज्ञा दी गई है हमारी धरोहर हमारा गौरव है और ये हमारे इतिहास–बोध को मूर्त स्वरूप प्रदान करते हैं।

**विरासत** : विरासत (Heritage) से तात्पर्य उन इमारतों, कलाकृतियों, संरचनाओं, क्षेत्रों और परिसरों से है जो ऐतिहासिक, सौंदर्यवादी, वास्तुशिल्प, पारिस्थितिक या सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

मासिकी

ISSN 2278-0416

# हरिप्रभा

अन्ताराष्ट्रिया मूल्याङ्किता मासिकी शोधपत्रिका

An International Refereed Monthly Research Journal

वर्षम् : १६, अंङ्क : ११-१२, नवम्बर - दिसम्बर - २०१६

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सधीचीनो मादयस्वा निषद्य॥

( ऋक्० १०/११२/३ )

हरियाणा संस्कृत अकादमी, पंचकूला

# अनुक्रमणिका

पृष्ठसंख्या

सम्पादकीयम् ३

१. भारतीयसंस्कृतवाङ्मये मूल्यानां संकल्पना — डॉ. प्रेमसिंहसिकरवार: ५

२. अर्वाचीनसंस्कृतस्तोत्रसाहित्यम् — डॉ. रामदत्त शर्मा १३

३. भारतीय-ज्योतिषशास्त्रे ग्रहणविज्ञान विमर्श: — पं. श्रीकृष्णकुमार मिश्र २०

४. कृषिकर्मणि ज्योतिष: प्रभाव: — श्रीखेमराजरेग्मी २८

५. महाकविभवभूते: राष्ट्रीयभावना — डॉ. रामेश्वर प्रसाद गुप्त: ३५

६. जलस्वरूपविवेचनम् — अजयकुमारकर: ३९

७. आचार्यमहेशचन्द्रगौतमस्योपन्यासेषु नारीणां स्थिति: — डॉ. कामदेव झा ४५

८. वर्तमानपरिप्रेक्ष्ये मूल्यशिक्षाया: उपादेयता — डॉ. विचारीलालमीना ५५

९. हरियाणा-संस्कृत-अकादम्या: गतिविधिय: — डॉ. प्रतिभा वर्मा ६४

*****

# भारतीयसंस्कृतवाङ्मये मूल्यानां संकल्पना

*डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः

**मूल्यानां भूमिका-**

भारतीयसंस्कृतसाहित्ये मूल्यानां विषये बहवः संकल्पनाः विद्यन्ते। सर्वेषु संस्कृतग्रन्थेषु मूल्यानां वर्णनं वर्तते। अस्यां पृथिव्यां मानवजीवनं श्रेष्ठजीवनं वर्तते। इत्यस्मिन् विषये लिखितमस्ति- ''नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्'' इति। सम्पूर्णविकसितमानवजीवनाय यानि यानि तत्त्वानि आवश्यकानि भवन्ति, तेषु तत्त्वेषु मूल्यम् अतीव महत्त्वपूर्णतत्त्वं वर्तते। वयं जानीमः यत् अस्माकं देशः मूल्यानां देशः वर्तते। पुराकालादेव अस्य भारतदेशस्य निवासीनां जीवनचर्यायां सद्गुणानां समावेशः वर्तते। मूल्यानां देशः वर्तते। पुराकालादेव अस्य भारतदेशस्य निवासीनां जीवनचर्यायां सद्गुणानां समावेशः वर्तते। मूल्यानां प्रभावकारणात् एव सम्पूर्णे विश्वे जगद्गुरू इत्यनाम्ना प्रसिद्ध आसीत्। परन्तु अद्य न केवलं भारतदेशे अपितु सम्पूर्णे अपि संसारे मानवमूल्येषु ह्रासः दृश्यते। अनेन मूल्यह्रासः दृश्यते। अनेन मूल्यह्रासेन एव व्यक्ते, परिवारस्य, समाजस्य, सम्पूर्णदेशस्य समग्रविश्वस्य च पतनं वेगेन भवति।

प्रत्येकमपि मानवस्य अथवा मानवसमूहस्य इदं कर्त्तव्यं भवति यत् सः समाजस्य, प्रान्तस्य, स्वदेशस्य, विश्वस्य च संगतिषु उन्नतिषु वा मूल्यानां विकासाय कार्यं कुर्यात्। येन वैयक्तिकमूल्यानां, पारिवारिकमूल्यानां, सामाजिकमूल्यानां, राष्ट्रियमूल्यानाम् अन्ताराष्ट्रियमूल्यानां च पुनर्प्रतिष्ठा भवति। मूल्यानां पुनर्प्रतिष्ठायै तेषां विकासः करणीयः एव। येन समाजे मूल्यानां विकासो भवेत्। भारतीयसंस्कृतसाहित्यं मानवमूल्यानां निधिः वर्तते। ऋग्वेदादारभ्य आधुनिकसंस्कृतसाहित्यरचनासु नैकविधानि मूल्यानि विद्यामानानि सन्ति। अतः संस्कृतसाहित्यमाध्यमेन मानवेषु मूल्यानां विकासः करणीयः।

शिक्षा ज्ञानस्य तदमूल्यमस्त्रमस्ति, यदभिव्यक्तेः सशक्तमाध्यमं वर्तते, येन सभ्यताः विकसन्ति, संस्कृतयः शोभन्ते, इतिहासः जायते च। शिक्षाया उद्देश्यं व्यक्तेरन्तर्निहितशक्तीनां सर्वांगीणविकासकरणमस्ति। सर्वांगीणविकासस्याभिप्रायः शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, भावात्मक, सामाजिक, नैतिकमूल्यानां विकासकरणम् अस्ति।

अधुना सर्वे जनाः मूल्यविषये अतीव चिन्तिताः सन्ति, यत् वर्तमानसमये मूल्यानां तीव्रगत्या ह्रासो जायते। अत एव इदानीं मूल्यशिक्षायाः महती प्रासंगिकता समुत्पद्यते।

---

* *सहायकाचार्यः ( शिक्षाशास्त्र विभागः ) श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठम् ( मानितविश्वविद्यालयः ) नवदेहली-११००१६। दूरभाष- ९६९७०४१८७७*

---

त्रैमासिकी

ISSN 2278-0416

# हरिप्रभा

अन्ताराष्ट्रिया मूल्याङ्किता त्रैमासिकी शोधपत्रिका

An International Refereed Quarterly Research Journal

वर्षम् : १८, अंङ्क : ०१-०३, जनवरी - मार्च - २०२१

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठे रूपेस्तन्वं स्पर्शयस्व।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य॥
(ऋक् १०/११२/३)

हरियाणा संस्कृत अकादमी, पंचकूला

# अनुक्रमणिका


| | | पृष्ठसंख्या |
|---|---|---|
| सम्पादकीयम् | | |
| १. शुभाशंसा | श्री नेमीचन्द शाण्डिल्यः | ६ |
| २. पुरस्कृत विदुषां सूची | | ७ |
| ३. वैदिकयज्ञविज्ञानम् | श्री शिवदेव आर्यः | १३ |
| ४. ऋग्वेदे वास्तुविज्ञानतत्वानां परिशीलनम् | डॉ. कृष्णकुमारमिश्रः | १८ |
| ५. वेदेषु भक्तितत्त्वविमर्शः | डॉ. सत्यराज रेग्मी | २२ |
| ६. ईशोपनिषदीश्वर-मीमांसा | मनजीत कुमारी | ३० |
| ७. माघमहाकवेः नृपनीतिनैपुणी | डॉ. राधावल्लभशर्मा | ३३ |
| ८. संस्कृत पद्यसाहित्यस्य नव्यविधानामनुशीलनम् | डॉ. प्रतिमा शुक्ला | ४३ |
| ९. शब्दाद्वैतवादे वाक्स्वरूपविमर्शः | डॉ. यीशनारायणो द्विवेदी | ४८ |
| १०. शब्दशक्तिविमर्शः | डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः | ५३ |
| ११. संस्कृतभाषायाः भाषिकवैविध्यम् | डॉ. सुधाकरमिश्रः | ५६ |
| १२. जॉनड्राइडनमहोदयस्य काव्यशास्त्रीयं चिन्तनम् | प्रो सुमनकुमारझाः | ६१ |
| १३. अकादम्याः कार्यक्रमाणाम् छायाचित्राणि | | ६८ |
| १४. आधुनिकयुगे संस्कृतभाषायाः योगदानम् | श्रीमुकेशपाण्डेयः | ७३ |
| १५. नागेशस्य दृष्ट्या शाब्दबोधस्य सहकारिकारणानि | श्री नितिनशर्मा | ७६ |

| | | |
|---|---|---|
| १६. नरवराश्रमम् | डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा | ८३ |
| १७. संख्याप्रतीतिः तत्तन्त्राऽतन्त्रनिर्णयश्च | श्री प्रदीपकुमारपाण्डेयः | ८६ |
| १८. व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मताज्ञानं परामर्शः | डॉ. आशीषकुमारः | १०० |
| १९. वनदेवीमहाकाव्ये समरसतायाः विमर्शः | सिम्मी | १०६ |
| २०. माध्ववेदान्ते दार्शनिकं चिन्तनम् | श्री मोहनलालशर्मा | ११७ |
| २१. देवर्षिकलानाथशास्त्रिप्रणीताख्यानवल्लरीकथा-सङ्ग्रहे लोकनीतिविमर्शः | सौम्या | १२२ |
| २२. स्तोत्ररत्ने गुरुतत्त्वमुखेन भगवत्प्राप्तिः | मोनू देवी | १२७ |
| २३. महिलायाः त्यागः | डॉ. कामदेव झा | १३२ |
| २४. गौरीरमणरूपिणमिति शब्दसिद्धिविचारः | श्री ज्ञानप्रकाशमिश्रः | १४३ |
| २५. हरियाणासंस्कृत-अकादम्याः गतिविधयः | डॉ. प्रतिभा वर्मा | १५९ |


*****

# शब्दशक्तिविमर्शः

* डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः,

**शोधसारः-**

शाब्दाज्जायमानं ज्ञानं शाब्दबोधः। यस्य ज्ञानस्य हेतुः निराकांक्षमासन्नमन्वययोग्यं वाक्यरूपं पदसमूहं भवति तज्ज्ञानं शाब्दबोध इति कथ्यते। किं वा वाक्यार्थज्ञानं शाब्दबोध इति अर्थः। शब्दादपि बोधः अर्थं द्वारीकृत्य एव भवति, यतोहि कस्माचिदपि शब्दात् तस्यार्थोपस्थिति तावन्न जायते यावत् तदर्थनिरूपिता शक्तिस्तस्मिन् शब्दे गृहीता न भवेत्। अतः पूर्वं शक्तिग्रहः ततः पदार्थोपस्थितिः, ततः शाब्दबोध इत्यस्ति शाब्दबोधानां विवेचनम्। शाब्दबोधे पदज्ञानमेव प्रमुखं कारणं स्वीक्रियते। तदुक्तम्-

**पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः।**

**शाब्दबोधः फलं तत्र शक्तिधीः सहकारिणी॥ इति।**

पदज्ञानं (करणं), आकांक्षायोग्यतासंनिधिसहकृतेन पदेन पदार्थसंबन्धरूपशक्तिनिश्चयः (सहकारिकारणम्), निश्चितशक्तिसाहाय्येन पदजन्यपदार्थबोधः (व्यापारः), शाब्दबोधः (फलम्)। तत्र चत्वारि सहकारिकारणानि आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति, तात्पर्यमित्येतानि भवन्ति। अस्मिन् पत्रे शब्दशक्तिविवेचने सरलभाषया पदार्थबोधः स्यात् इति प्रयासः कृतः।

**भूमिका-**

शब्दशक्तिः शब्दवृत्तिः वा शब्दानां शक्तिः शब्दानां वृत्तिः वा। व्याकरणे शब्दजन्यं ज्ञानम् इति। शब्दादपि बोधः अर्थं द्वारीकृत्य एव भवति, यतोहि कस्माचिदपि शब्दात् तस्यार्थोपस्थिति तावन्न जायते यावत् तदर्थनिरूपिता शक्तिस्तस्मिन् शब्दे गृहीता न भवेत्। अतः पूर्वं शक्तिग्रहः ततः पदार्थोपस्थितिः, ततः शाब्दबोध इत्यस्ति शाब्दबोधानां विवेचनम्। शाब्दबोधे पदज्ञानमेव प्रमुखं कारणं स्वीक्रियते। तदुक्तम्-

**पदज्ञानं तु करणं द्वारं तत्र पदार्थधीः।**

**शाब्दबोधः फलं तत्र शक्ति धीः सहकारिणी॥ इति**

अत्र आकांक्षा हि वाक्यार्थज्ञाने सहकारिहेतुः। एवं च अभिधानस्य अपर्यवसानम्, पदानां परस्परव्यतिरेकेण परस्पराभावे वा वाक्ये अन्वयाभावः, प्रतीतिपर्यवसानविरहः, पदार्थानां परस्परजिज्ञासा-

---

** सहायकाचार्यः, शिक्षाशास्त्रविभागः, श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली-११००१६*

UGC CARE LISTED

ISSN 2278-0416

# हरिप्रभा

अन्ताराष्ट्रिया मूल्याङ्किता त्रैमासिकी शोधपत्रिका

PEER REVIEWED, REFEREED, OPEN ACCESS, INDEXED
INTERNATIONAL QUARTERLY RESEARCH JOURNAL (UGC CARE LISTED)

वर्षम् : १६, अंङ्क : ०४-०६, अप्रैल - जून, २०२२

देशोऽस्ति हरियाणाख्यः
पृथिव्यां स्वर्गसन्निभः

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठे रूपैरन्वं स्पर्शयस्व।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य॥

( ऋक्० १०/११२/३ )

हरियाणा – संस्कृत – अकादमी, पंचकूला

# अनुक्रमणिका


| | | पृष्ठसंख्या |
|---|---|---|
| सम्पादकीयम् | | १ |
| संकेतभाषायाः परियोजनासमीक्षणम् | -डॉ. अलका राव | ३ |
| १. वेदेषु निरूपितजलभेदानां वैज्ञानिकं स्वरूपम् | -प्रो. कमला भारद्वाजः | ६ |
| २. वेदेषु चिकित्साविज्ञानम् | -डॉ. हनुमान मिश्रः | १४ |
| ३. संस्कृतवाङ्मये शैक्षिकचिन्तनम् | -डॉ. बृहस्पति मिश्रः | २१ |
| ४. संस्कृतसाहित्यम् एवं सामाजिकदर्शनम् | -ममि महान्त | ३३ |
| ५. भारतीयज्योतिषशास्त्रे (प्रथमो भागः) | -दिनेश मोहन जोशी | ४५ |
| ६. रामायणे श्रेष्ठजीवनमूल्यानि विचाराश्च | -रमनदीप | ५४ |
| ७. श्रीमद्भगवद्गीतायां जीवनोपयोगिसूत्राणि | -डॉ. विशम्बरदासः | ६० |
| ८. दार्शनिकतत्त्वसंस्थापने स्तोत्रसाहित्यानामवदानम् | -मोनू देवी | ६५ |
| ९. षड्दर्शनेषु सांख्यदर्शनस्य उपादेयता | -डॉ. नवीन कुमारी | ७० |
| १०. अष्टाध्यायीप्रयोगदीपिकायां प्रदत्तानां संज्ञानां विशिष्टोदाहरणानि | -जयश्री ठक्करः | ७६ |
| ११. व्याकरणाध्ययनस्योपादेयता | -ज्ञानप्रकाशमिश्रः | ८८ |

१२. व्याकरणशास्त्रस्य परम्परा-विचारः
-शिवदेव आर्यः १४
१३. अद्वैतमतानुसारेण ब्रह्मणः स्वरूपं मुक्तिस्तथा मुक्तिसाधनम्
-डॉ. आलोककुमारसेमवालः १०३
१४. पर्यावरणेन साकं सांख्यदर्शनस्य प्रकृतितत्त्वस्य सम्बन्धः-अध्ययनमेकम्
-सूरज रॉय १०८
१५. दिनकर्यनुगुणं जातिशक्तिवादः -राज्यगुरु जयदेव धीरुभाई ११५
१६. मूलाविद्या भगवत्पादसम्मता -वाचस्पतिशास्त्री जोशी १२५
१७. कालविषयिका नागेशभट्टस्य मान्यता
-डॉ. सुषमा अलंकार १३०
१८. पूर्वत्रासिद्धमिति शास्त्रतत्त्वविमर्शः -डॉ. श्रीमन्तचटर्जी १३५
१९. जैनोक्ततत्त्वेषु मोक्षविमर्शः -डॉ. रवि १४७
२० सम्राडशोकाधारितसंस्कृतकाव्यानां विवेचनम्
-सुखबीर सिंह १५४
२१. भारतीयसंविधाने मानवाधिकारशिक्षायाः उपादेयता
डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः १६४
२२. वेदार्थप्रक्रियायां महर्षियास्कप्रणीतस्य आवश्यकता महर्षिदयानन्दस्वामिनां
वेदार्थे निरुक्तस्य सम्प्रभावः नैरुक्तिकी दृष्टिश्च १६९
-कारिया राजेशकुमार वासुदेवः

*****

 ISSN 2278-0416

# भारतीयसंविधाने मानवाधिकारशिक्षायाः उपादेयता

डा. प्रेमसिंहसिकरवार

मानवानां समूहः समाजः। अतः मानवस्य विकासेन समाजस्य उन्नतिः भवति। मानवस्य विकासाय अपेक्षितानि सौविध्यानि सहयोगाश्च एव अधिकारपदवाच्याः सन्ति। मानवसमाजेषु ये मौलिकाधिकाराः सहजेन हस्तान्तरिताः न भवन्ति, ते एव अधिकाराः मानवाधिकारत्वेन ज्ञायन्ते। मानवाधिकारः मानवसमाजस्य मानवजातेश्च कृते कश्चन जन्मजाताधिकारः वर्तते। किञ्च प्रत्येक मानवेन जाति-धर्म-वर्णादिभेदेन अपि स्वभावेन प्राप्तः अधिकारः मानवाधिकारः इत्युच्यते। एते अधिकाराः प्रत्येक व्यक्तेः शारीरिक-मानसिक-सामाजिक-आध्यात्मिक-आर्थिकोन्नत्यै स्वार्थोन्नतायाः मर्यादायाश्च संरक्षणाय अत्यावश्यकाः भवन्ति।

जगति सर्वेषां कृते समानाधिकारः भवेत्। न कश्चन ज्येष्ठः न वा कनिष्ठः सर्वे अप्यत्र भ्रातरः इति समानतायाः मूल्यं बोधयन् प्रोच्यते। यत्-

**अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते।**
**सं भ्रातरो वावृधुः सौभाय॥**[१]

अपि च समानतायाः प्रचारः प्रसारः यथा सर्वत्र भवेत्, सर्वेषां कृते समानाधिकारः लभ्येत तदर्थं प्रोच्यते। यथा-

**समानी प्रपा सह वो अन्नभागः।**
**समानेयोक्त्रे सह वो युनज्मि।**
**सयंचोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः॥**[२]

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः इति नियममनुसृत्य मनसः बहुत्वं स्वीकृतम्। जगत्सृष्टेः सुरक्षायाः, विध्वंसस्य च मूलकारणं मन एव भवति। मनसः चिन्तनानुकूलं मानवः प्रकृष्टे अप्रकृष्टे वा कर्मणि प्रवर्तते। तस्मात् मानवस्य चिन्तनं

---

१. संज्ञानसूक्तम्, ऋग्वेदः, ५/६ ०/५
२. अथर्ववेदः, ३/३०/६

सर्वदा सकारात्मकं भवेत्।

मानवाधिकारस्य स्वरूपनिर्णयः कश्चन कष्टकरः विषयः वर्तते। यतः प्रत्येक राष्ट्रस्य नियमप्रणाली-आर्थिकव्यवस्था-सामाजिकव्यवस्था-राजनैतिकव्यवस्था-सांस्कृतिकव्यवस्थाः भिन्नाः सन्ति। तस्मादुच्यते ये अधिकाराः मानवसमाजस्य मर्यादायाश्च संरक्षणे सहायकाः भवन्ति। ते एव अधिकाराः मानवाधिकाराः इति कथ्यन्ते।

शिक्षा काचित् प्रक्रिया वर्तते यया पदार्थस्य प्रकृतस्वरूपः ज्ञायते। मानवीय विशिष्टगुणानां च विकासः सम्भवः भवति। सैव शिक्षा या प्रकृतज्ञानस्य प्रतिष्ठां कृत्वा आत्मकल्याणाय परमकल्याणाय च प्रवर्तेत इति स्वामिदयानन्दस्य अनुसारं शिक्षायाः अर्थः। अपि च तेनोक्तं यत्-'' **शिक्षां विना मनुष्यः केवलं नाम्ना कश्चन मनुष्यः भवति। शिक्षाप्राप्तिः सद्गुणानां विकासः ईर्ष्यातः मुक्तिः धार्मिकतायाः समुत्थानं च कुर्वन् व्यक्तीनां कल्याणाय उपदेशप्रदानमेव शिक्षितमनुष्यस्य परमकर्तव्यम्।**''[१]

सैव सर्वोत्तमा शिक्षा या अस्माकं जीवनजगत्योः मध्ये सामंजस्यं स्थापयति। शिक्षा विकासस्य काचित् प्रक्रिया भवति या मानवस्य शारीरिक-बौद्धिक-आर्थिक-व्यावसायिक-धार्मिक-आध्यात्मिकं च विकासं सम्पादयति। सा विद्या या विमुक्तये इति वचनानुसारं शिक्षा मानवाय आध्यात्मिकज्ञानं प्रदाय मुक्तिमार्गं प्रदर्शयति।

वस्तुतः समाजस्य कल्याणसाधनमेव प्रत्येक राष्ट्रस्य परमकर्तव्यम् अस्ति। अतः प्रत्येक राष्ट्रेण संविधानस्य प्रणयनं कृत्वा तत्र अधिकाराणामुल्लेखः कृतः वर्तते। यस्मिन् राष्ट्रे यावद् अधिकाः अधिकाराः भवन्ति, तावत् सः राष्ट्रः प्रगतिशीलः भवति। एतान् अधिकारान् न कोऽपि कदापि वा नाशयितुं शक्नोति। अपि च जनाः एतस्मिन् विषये सचेतनाः सन्तः अधिकाराणां संरक्षणाय उद्यताः भवन्ति। अतः भारतस्य स्वाधीनतायाः अनन्तरं संविधानविधेयकसभाद्वारा भारतीयसंविधानं प्रणीतम्। डा. भीमराव आम्बेडकरमहोदयानाम् आध्यक्षेन संविधाननिर्मात्री समित्या १९४९ तमे वर्षे नवम्बरमासस्य २६ तमे दिनांके संविधाननिर्माणकार्यं समाप्तमभवत्। अस्माकं भारतीयसंविधाने मुख्यतः षट् मौलिकाधिकाराः प्रदत्ताः सन्ति। ते यथा-

१. समानतायाः अधिकारः
२. स्वाधीनतायाः अधिकारः
३. शोषणविरूद्धाधिकारः

---

१. मानवाधिकारोपेतमूल्यशिक्षा पृष्ठ-७६

**निष्कर्षः** -

देशस्य स्वाधीनतायाः समनन्तरं प्रणीतं संविधानं भारतात् साम्प्रदायिकतायाः जातिगतभेदस्य भाषाभिन्नतायाश्च दूरीकरणं कृत्वा देशे जातीयसंहतेः सुरक्षां करोति। साम्प्रतिकसमाजस्य दायित्वहीनाः विश्रृंखलिताः नागरिकाः नीतिहीनाः दुर्नीतियुक्ताश्च राजनीतिकनेतारः भारतस्य गौरवं नाशयन्ति। अतः शिक्षिताः नागरिकाः युवकाः एतस्य महतः देशस्य संविधानस्य महत्वं महनीयतां च संरक्षितुं संकल्पबद्धाः स्युः। यदि प्रत्येकः नागरिकः इमं देशं मदीयमिति मन्यमानः स्वकीयं कार्यं सुष्ठु सम्पादयेत् तर्हि अस्य देशस्य महानता चिरस्थायी स्यात्। प्रत्येकः छात्रः निष्ठया श्रृंखलया सह च स्वकीयं कार्यं साधयेत् तर्हि अस्य देशस्य स्वकीयं हृत्गौरवं पुनः प्रतिष्ठापितं भवेत्।

**सन्दर्भग्रन्थसूची-**


१. सच्चिदानन्दः ए.पी., २००४, शिक्षायाः सामाजिक आधारः, गौरीशप्रकाशनम्, श्रृंगेरी।

२. पाण्डेयः, ब्रजेशकुमारः, २००२, भारतीय आधुनिक शिक्षा, राष्ट्रियशैक्षिकानुसंधानपरिषद्, नवदेहली।

३. भारतीयसंविधानम्, १९८५ विधायीविभागस्य राजभाषाखण्डः, भारतशासनम्।

४. गुप्ता, एस. पी.,गुप्ता, अलका, २०१२, भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याऐं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।

५. पाण्डेय, प्रो. ए. पी.,१९९९ वैदिककालीन शिक्षा में मूल्य एवं आदर्श, महर्षि संदीपिनी राष्ट्रिय वेदविद्या प्रतिष्ठान, उज्जैन, मध्यप्रदेश।

६. सेवानी, अशोक, २००८ शिक्षा दर्शन तथा उभरता भारतीय समाज, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।

७. चौबे, एस. बी.,२००८, भारतीय शिक्षा इतिहास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

८. पण्डा, डॉ. लक्ष्मीधर,२०१२, मानवाधिकारोपेतमूल्यशिक्षा, तीरतारंगा पब्लिकेशन, भुवनेश्वर, पुरी।



*-सहायकाचार्यः, शिक्षापीठम्,*
*श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृत-*
*विश्वविद्यालयः, नवदेहली-११००१६*


*****

यू.जी.सी. संरक्षणसूचीबद्धा ( UGC Care-Listed )
ISSN : 2349-6452

# शिक्षामृतम्

## शिक्षाविभागीयवार्षिकी शोधपत्रिका

अङ्कः-12

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
( संसदः अधिनियमेन स्थापितः )
श्रीरणवीरपरिसरः, कोट-भलवालः, जम्मूः - 181122 ( जम्मूकाश्मीरः )
ई मेल : director-jammu@csu.co.in वेबसाईट : www.csu-jammu.edu.in
2021

ISSN : 2349-6452

# शिक्षामृतम्

( शिक्षाविभागीयवार्षिकी शोधपत्रिका )

[ अङ्कः - 12 ]

संरक्षकः

**प्रो. श्रीनिवासवरखेडी**

कुलपतिः

प्रधानसम्पादकः

**प्रो. मदनमोहनझाः**

निदेशकः

सम्पादकौ

**प्रो. कुलदीपशर्मा ● डॉ. मदनकुमारझाः**

**केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः**

**( संसदः अधिनियमेन स्थापितः )**

**श्रीरणवीरपरिसरः, कोट-भलवालः, जम्मूः - 181122**

**2021**

प्रकाशकः
निदेशकः
**केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः**
(भारतसर्वकारस्य शिक्षामन्त्रालयाधीनः)
श्रीरणवीरपरिसरः, कोट-भलवालः, जम्मूः-181122 (जम्मू-कश्मीरः)
दूरभाषः 0191-2623090
ई मेल : director-jammu@csu.co.in
वेबसाईट : www.csu-jammu.edu.in

---

**समीक्षासमितिः**
**प्रो. प्रह्लाद आर्. जोशी**
(कुलपतिः, भास्करवर्मसंस्कृत-पुरातनाध्ययनविश्वविद्यालयः, आसमः)
**प्रो. आर्.पी. पाठकः** (आचार्यः शिक्षाशास्त्रविभागः, रा.सं.वि. नवदेहली)
**प्रो. प्रभादेवीचौधरी** (पूर्वविभागाध्यक्षा, शिक्षाशास्त्रविभागः, भोपालपरिसरः)
**प्रो. के. भरतभूषणः** (आचार्यः शिक्षाशास्त्रविभागः, रा.सं.वि. नवदेहली)
**श्रीशरतचन्द्रशर्मा** (सङ्कायाध्यक्षः, आधुनिकविभागः, के.सं.वि.वि. नवदेहली)

**परामर्शदात्रीसमितिः**
**प्रो. पी.एन्. शास्त्री** (कुलपतिचरः, के.सं.वि.वि. देहली)
**प्रो. गोपीनाथशर्मा** (विभागाध्यक्षचरः, ज.रा.रा.सं.वि.वि., जयपुरम्)
**प्रो. नगेन्द्रझाः** (शिक्षासंकायचरः, ला.ब.रा.सं.वि.वि. देहली)
**प्रो. राधागोविन्दत्रिपाठी** (परीक्षानियंत्रकचरः, रा.सं.वि.वि. तिरुपतिः)
**प्रो. पवनकुमारः** (परीक्षानियंत्रकः, के.सं.वि.वि. देहली)

सहसम्पादकाः
- **डॉ. देवेन्द्रकुमारमिश्रः**
- **डॉ. शुभश्रीदाशः**
- **डॉ. मदनसिंहः**
- **डॉ. प्रमोदकुमारशुक्लः**
- **डॉ. हरिओम**

---

© सर्वाधिकारः जम्मूस्थकेन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य श्रीरणवीरपरिसराधीनः

प्रथमसंस्करणम् : 500 (पञ्चशतम्)

ISSN : 7552-2779

मूल्यम् : ₹ 150.00

मुद्रकः
**डी.वी. प्रिंटर्स**
97-यू.बी., जवाहर नगर, दिल्ली-110007

प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी
कुलपतिः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
संसदः अधिनियमेन स्थापितः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,
भारतसर्वकारस्य शिक्षामन्त्रालयाधीनम्)

Prof. Shrinivasa Varakhedi
Vice-Chancellor
Central Sanskrit University
Established by an Act of Parliament
(Formerly Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Under Ministry of Education, Govt. of India)

आज़ादी का अमृत महोत्सव

के.सं.वि./कुलपति/101/2022-23/350 दिनांक:- 03.10.2022

## शुभाशंसनम्

**विद्या: समस्तास्तव देवि भेदा: स्त्रिय: समस्ता: सकला जगत्सु।**
**त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुति: स्तव्यपरा परोक्ति :॥**

मातुः पराम्बायाः श्रीवैष्णव्याः पावनधाम्नि सुप्रतिष्ठितः परम्पराप्रदत्तप्राच्यविद्या-प्रचारप्रसारकः विद्वत्कुलसंसेवितः केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य श्रीरणवीरपरिसरः अतीव प्रसिद्धो वर्तते। तत्राध्ययनाध्यापनकौशलभरितोऽयं शिक्षाशास्त्रविभागःशास्त्राणां संरक्षणाय-प्रयतते, अनुदिनंनैकानि उद्देश्यानि सम्पादयति। **तस्मिन्नेव क्रमे प्रतिवर्षमिवास्मिन् शैक्षिकसत्रे'शिक्षामृतम्' इत्यन्वर्थाभिधायिनीं** यूजीसीकेयरमानितां शोधपत्रिकांप्रकाशयति, पत्रिकायामस्यां नैकशास्त्रनिष्णातां विद्वत्तलज्जानां विपश्चितां विचाराः प्रकाशयन्ते। विविधविद्याविषयकाः एते विचाराः संस्कृतसमाराधकेभ्यः अतीव रुचिकराः तोषकराः च भविष्यन्तीति विश्वसिमि, अपि चाद्यतनसमाजे संस्कृतशास्त्रे निहितानां विचाराणां प्रसारः समाजे विद्यमानान् नैकान् दोषान् अपाकर्तुं उन्नतिपथं चानेतुं प्रभवति। एवऽञ्चाध्यापकशिक्षायामपि गुणवत्तापूर्णकार्यसम्पादने महद् योगदानं करिष्यति । एतदर्थं शोधपत्रिकायाः सफलसम्पादनाय समेभ्यः सम्पादकमण्डलसदस्येभ्यः सहयोगिजनेभ्यश्च भूरिशः साधुवादवचांसि वितनोमि।

**।। सर्वमङ्गलप्रदायिनी माता वैष्णवी सर्वेषां मङ्गलं कलयतु इति शम् ।।**

Srivara

**(प्रो.श्रीनिवासवरखेडी)**
कुलपतिः

56-57, सांस्थानिकक्षेत्रम्, जनकपुरी, नवदेहली - 110058
56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi - 110058 (INDIA)
**Ph. No.: (O)** 011-28523949, **EPABX** : 28524993, 28521994, 28524995
**EMAIL** : vicechancellorcsu@gmail.com / vc@csu.co.in, **WEBSITE** : www.sanskrit.nic.in

प्रो. रणजित कुमार बर्मन
कुलसचिव (प्र.)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित
(पूर्व में राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार के अधीन)

Prof. Ranjit Kumar Barman
Registrar (I/c)
Central Sanskrit University
Established by an Act of Parliament
(Formerly Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Under Ministry of Education, Govt. of India)

आज़ादी का अमृत महोत्सव

## शुभाशंसा

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नोयथा सदमिद् वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥

महतोऽयं हर्षस्य विषयः यत् केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य जम्मूस्थश्रीरणवीर परिसरस्य शिक्षाविद्याशाखायाः प्रतिवर्षमिव ऐषमः शिक्षामृतम् इत्याख्या यूजीसीकेयरमानिता शोधपत्रिका प्रकाश्यमाना वर्तते । पत्रिकायामस्यां संस्कृत-हिन्दी-आङ्ग्लादिभाषाभिः शिक्षाशास्त्रविषयकलेखाः, इतरशास्त्रसम्बन्धिनः लेखाश्च, प्रकाश्यन्ते। किञ्च पत्रिकेयं लेखकानां लेखनप्रवृत्तिं प्रोत्साहयितुं, पठनकौशलञ्चाभिवर्धयितुं भृशमुपकरिष्यन्तीति आशासे ।

एवञ्च पत्रिकायाः अस्याः सफलसम्पादनाय प्रकाशनमण्डलसदस्येभ्यः विहितोऽयं प्रयासः सदाभिनन्दनीयः ।

इत्थं भगवतीभारत्यशेषकृपया समेषापि प्रतिभावतां प्रतिभाः निरन्तरं भान्त्विति श्रीवैष्णव्याः चरणयोः मङ्गलकामनां कामयता विरम्यते ।

R. K. Barman.

(प्रो.रणजितकुमारबर्मनः)
कुलसचिवःप्रभारी

56-57, सांस्थानिक क्षेत्र, जनकपुरी, नई दिल्ली - 110058
56-57, Institutional Area, Janakpuri, New Delhi - 110058 (INDIA)
**Ph. No.: (O)** 011-28520979, **EPABX** : 28524993, 28521994, 28524995
**EMAIL** : registrar@csu.co.in / pa2registrar@csu.co.in, **WEBSITE** : www.sanskrit.nic.in

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
श्रीरणवीरपरिसरः,
कोट-भलवालः, जम्मू 181122
संसदः अधिनियमेन स्थापितः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, मानितविश्वविद्यालयः)
भारतसर्वकारशिक्षामन्त्रालयाधीनः

CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY
Shri Ranbir Campus,
Kot-Bhalwal, Jammu- 181122
Established by an Act of Parliament
(Formerly Rashtriya Sanskrit Sansthan
Deemed to be University)
Under Ministry of Education, Govt. of India

क्रमांक / No. केःसं विः|पत्रिका|2022-23/1399 दिनांक / Date 29-09-2022

# शुभाशंसा

**न वि विद्यते यद्यपि पूर्व वासना गुणानुवन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।**
**श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥**

भारतदेशः संस्कृतं संस्कृतिश्चाधिकृत्य विश्वगुरु इति गौरवपदं समलङ्करोति। अन्ये समुन्नताः समुन्नतिपथे प्रवर्तमानाः विश्वविख्याताः देशाः आर्थिकदृष्ट्या यावदुन्नताः भवन्तु, परन्तु मानवीयता,विश्वबन्धुता,विश्वैकता, विश्वशान्तिः भारतस्यामूल्यनिधिश्च संस्कृतेन सम्प्राप्तुं शक्यते। अत एवास्मिन् काले संस्कृतभाषायाः उपादेयता समनुभूयते। अपि च व्यावहारिकज्ञानस्यापि ह्रासत्वमनुभूयते तदर्थं भारतीयसंस्कृतेः परमावश्यकता वर्तते इति।

श्रीरणवीरपरिसरः, एतादृशविशिष्टकार्यं सम्पादयितुं संस्कृतज्ञानसम्वर्धनाय संस्कृते नूतनप्रविधीनामनुप्रयोगाय च तत्परो वर्तते। **शिक्षामृतम्** इत्याख्या यूजीसीकेयरमानिताशोधपत्रिका प्रकाश्यते। पत्रिका स्वलक्ष्यसम्पादने समर्था भविष्यतीति विश्वसिमः। महत अस्य कार्यस्य सिद्ध्यर्थं सर्वेभ्यः सम्पादकमण्डलसदस्येभ्यः सहयोगिजनेभ्यश्च साधुवादान् वितनोमि।

(प्रो. मदनमोहनझाः)
निदेशकः

# सम्पादकीयम्

**महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना।**
**धियो विश्वा विराजति॥**

सर्वमङ्गलप्रदायिन्याः श्रीवैष्णव्याः देव्याः चरणपादयुगले केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य श्रीरणवीरपरिसराख्यं शिक्षाकेन्द्रं राराज्यते। परिसरेऽस्मिन् देववाण्याः परिपोषितायां पावनभूमौचिरकालात् सेवां कुर्वन् देदीप्यते शिक्षाविभागोऽयम्। अस्य परिसरस्य शिक्षाविद्याशाखापक्षतो भारतीयशिक्षाभूयिष्ठा ज्ञानविज्ञानसंवाहिनी प्रतिवर्षमिव प्रकाश्यमानेयं **शिक्षामृतम्** इत्याख्या यूजीसीकेयरमानिताशोधपत्रिका प्राचीनभारतीयशिक्षायाः भारतीयसंस्कृतेश्च आधारभूतं सत् विश्वस्मिन् ज्ञानं प्रसारयति। किञ्च शिक्षा हि ज्ञानसाधनीभूता सती बाह्यान्तरिकरूपेण विराजते इति शिक्षा एव प्रेयः श्रेयश्च इत्युभे लभ्येते। अतः शिक्षायाः द्विविधं प्रयोजनं प्रसिद्धमस्ति। यथोक्तमुपनिषदि-

**श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।**
**श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥**

(कठोपनिषद् 1.2.2)

शिक्षायाः प्रयोजनं तदा एव सेत्सति यदा शिक्षकः छात्रान् पाठयेत् छात्राश्च शिक्षां मनसा गृह्णीयात्। सैषा ज्ञानपरम्परा सर्वजनं प्रति गच्छेयुः तदर्थं **शिक्षामृतम्** इति वार्षिकशोधपत्रिकायाम् आचार्याणाम् शोधच्छात्राणां विदुषाञ्च शोधलेखाः सुनिबद्धाः सन्ति। समेषां शैक्षिकलेखानां मौलिकविशेषता वर्तते। पत्रिकायामस्यां संस्कृत-हिन्दी-आङ्ग्लभाषाभिः शिक्षाशास्त्रविषयकलेखाः, इतरशास्त्रसम्बन्धिनः लेखाश्च, प्रकाश्यन्ते। पत्रिकायाम् अस्यां शुभाशंसां विलिख्य अनुगृहीतवद्भ्यः विविधविद्याविद्योतितान्तः करणेभ्यः छात्रवत्सलेभ्यः यशस्विकुलपतिवर्येभ्यः, कुलसचिवमहोदयेभ्यः, परिसरनिदेशकेभ्यः सर्वेभ्यः प्रेष्ठेभ्यः, विभागीयप्राध्यापकेभ्यः प्रकाशकेभ्यश्च साधुवादाः वितीर्यन्ते । 'न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम्' इति कालिदासवचनं स्मारं स्मारं गुणैकपक्षपातिनो विपश्चितः अस्माकं मार्गदर्शनं विधास्यन्ति इति आशासे। विद्वद्भिः लिखिताः लेखाः सर्वथा विद्वद्समाजे सुप्रतिष्ठापिता भवतु इति भगवतीं वैष्णवीं प्रार्थ्यन् सम्पादकीयवचनादुपसंहरामि।

**इत्थम् -सम्पादकौ**

# विषयानुक्रमणिका


शुभाशंसनम् –प्रो. श्रीनिवासवरखेड़ी, कुलपतिः *iii*

शुभाशंसा – प्रो. रणजितकुमारबर्मन्, कुलसचिवः *iv*

शुभाशंसा –प्रो. मदनमोहनझाः, निदेशकः *v*

सम्पादकीयम् *vi*

**संस्कृतखण्डः**

| | **लेख** | **नाम** | **पृ.सं.** |
|---|---|---|---|
| 1. | षोडशश्लोकीशिक्षायाः वैशिष्ट्यम् | प्रो. सुनीलकात्यायनः | 1 |
| 2. | चरकदृशा आरोग्यशिक्षा | डॉ. विजयलक्ष्मी | 7 |
| 3. | प्राचीनशिक्षायाः आधुनिकशिक्षायाः च स्वरूपम् | डॉ. धनेशकुमारपाण्डेयः | 15 |
| 4. | विशिष्टच्छात्राणां समस्याः आावश्यकताश्च | डॉ. हरिओम | 19 |
| 5. | जनसङ्ख्याविमर्शः | डॉ. प्रमोदशुक्लः | 27 |
| 6. | टालेमी–केप्लर्महोदयाभ्यां प्रतिपादिताः ग्रहाणां गतिविषयकाः सिद्धान्ताः | गिरिशभभट्टः बि. दिनेशमोहनजोशी | 33 |
| 7. | ऋग्वेदसंहितायां स्त्रीशिक्षायाः महत्त्वम् | पवनकुमारपाण्डेयः | 49 |
| 8. | भट्टिकाव्यशिक्षणे सङ्गणकस्य उपयोगिता | नितिनशर्मा | 54 |
| 9. | काश्मीरमण्डलीयशैवागमे योगस्य षडङ्गतायाः स्वरूपम् | अभिषेककुमारउपाध्यायः | 65 |

**हिन्दी खण्ड**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 10. | आचार्य रजनीश के विचारों में "स्त्री–शिक्षा" विश्व–शांति और स्मृद्धि का आधार | प्रो. रमेश प्रसाद पाठक राजीव कुमार रंजन | 72 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 11. | कौटिल्य अर्थशास्त्र में औद्योगिकीकरण के सूत्र | डॉ. अरुणिमा रानी | 81 |
| 12. | भारतीय ज्योतिष में काल विभाजन सिद्धान्त | डॉ. रामदास शर्मा | 91 |
| 13. | प्राथमिक स्तर पर संस्कृत भाषा के शिक्षण हेतु संरचनावादी प्रयोग | डॉ. नितिन कुमार जैन | 94 |
| 14. | वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता | डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार | 105 |
| 15. | वर्तमन संदर्भ में विद्यालय में नैतिक शिक्षा का क्रियान्वयन | डॉ. तृप्ता अरोड़ा | 113 |
| 16. | कक्षा में प्रभावी सामाजिक वातावरण निर्माण में अध्यापक की भूमिका | डॉ. विवेक कुमार | 120 |
| 17. | पर्यावरण संरक्षण व हिंदी साहित्य (अमृतलाल मदान के सन्दर्भ में) | सोनिया | 127 |
| 18. | अचार्य प्रवर श्री सांवरमल शास्त्री विरचित एकांकी संग्रह 'कालिदाससौरभम्' पर एक दृष्टि | मेधा शर्मा | 133 |
| 19. | मानव जीवन की सफलता के साधन रूप 'चित्तप्रसादन' का योग दर्शन के संदर्भ में अनुशीलन | डॉ. पङ्कजाघईकौशिक | 142 |


**आंग्ल खण्ड**


| | | | |
|---|---|---|---|
| 20. | Status of India in World Happiness Rankings and its Linkages with Physical Activities | Dr. Pratyush Vatsala<br>Dr. Seema Sharma | 150 |
| 21. | The meaning of Moksa in Jaina Philosophy with special refrence to Tattvarthasutra | Dr. Anil Pratap Giri | 159 |
| 22. | Authentic Search in Fasting, Feasting and A Thousand Splendid Suns | Aiswara B.<br>Dr. R.S. Ramesh | 171 |
| 23. | An Ecocentric Approach Todavid Malouf's Fly Away Peter | Suriya R.<br>Dr. T.S. Ramesh | 177 |


✦✦✦

# षोडशश्लोकीशिक्षायाः वैशिष्ट्यम्

डॉ० सुनीलकात्यायनः*

**"अहरहः स्वाध्यायमधीते"**[1] **"अहरहः स्वाध्यायमधियीत"**[2] इत्यादिवाक्यैर् वेद एव स्वशाखासहितः केन्द्रीभूतो राजते। तादृगेषो वेदो प्रधानतया चतुर्षु भागेषु तेषां च चतुर्णाम् अन्तर्निहितैकत्रिंशदुत्तरैकशतसहस्रैकशाखासु[3] च विभक्तोस्ति। अस्यां भारतभूमावत्रत्यां च राजितायां सनातनसंस्कृतौ वेदानेवाधारीकृत्य समस्तानामार्याणां सभ्यता संस्कृतिश्च राजते। प्रायः समस्तास्तीकधर्मा शास्त्राणि वा वेदस्यैवाश्रयंप्राप्नुवन्ति। अत एते वेदा न केवलंभारतीयविपश्चिद्भिरपितु पाश्चात्यविद्वद्भिरपि श्रद्धयावलोकिता भवन्ति।

**"स्वाध्यायोऽध्येतव्यः"**[4] इतिस्वाध्यायविध्यनुपालने **"ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडंगो वेदो ध्येयो ज्ञेयश्चे"**[5] त्यनुसारं वेदाध्ययनस्य षडंगसहितं ज्ञानं परमावश्यकम्। तानि चांगानि-1. छन्दः- पादरूपम्, 2. कल्पो-हस्तरूपः, 3. ज्यौतिषम्-चक्षुरूपम्, 4. निरुक्तं-श्रोत्ररूपम्, 5. शिक्षा-घ्राणरूपा, 6. व्याकरणं च मुखरूपतां भजते।[6] एषां षडंगानां ज्ञानमृते वेदार्थं न सम्यगवबोद्धुं शक्येत। अतो वेदमन्त्राणां निस्सन्दिग्धं निर्भ्रान्तं चोच्चारणाय घ्राणरूपशिक्षाया, यज्ञयागादीनामनुष्ठानस्य सिद्धौ हस्तरूपकल्पस्य, वेदगतशब्दानां सामान्यतयार्थावबोधाय तद्रूपज्ञाने च मुखरूपव्याकरणस्य, तथैव विशिष्टपदानां यथार्थज्ञानाय निर्वचनाय च श्रोत्ररूपनिरुक्तशास्त्रस्य गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्प्रभृतीनां पादरूपच्छन्दसांज्ञानलाभाय

---

* वेदविभागः, सं.वि.ध.वि. संकायः, काशीहिन्दूविश्वविद्यालयः, वाराणसी

1. अहरहः स्वाध्यायमधीते (शत० ब्रा० 11/5/6/3)
2. आश्वलायनगृह्यसूत्रम् 3.3.1
3. पातंजलमहाभाष्ये
4. शतब्रा० 11.5.6.3
5. पस्पशाह्निके, पातंजलमहाभाष्ये
6. छन्दः पादौतुवेदस्य हस्तौकल्पोथपठ्यते
   ज्योतिषामयनं चक्षुः निरुक्तंश्रोत्रमुच्यते।
   शिक्षा घ्राणंतुवेदस्य मुखंव्याकरणंस्मृतम्।।
   तस्मात्सांगमधीत्यैवब्रह्मलोकेमहीयते।। पा०शि०

छन्दश्शास्त्रस्य, मुहूर्तादिद्वारा कर्मकाण्डोचितकालज्ञानाय ज्योतिषशास्त्रस्य प्रयोजनं वर्तते। अतो वेदैस्सह षडंगानामपि पाठः श्रुतौ श्रूयते-

**तस्मै स होवाच-द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति पराचैवापरा च। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमभिगम्यते।**[1] मन्त्रेऽस्मिन् अथर्ववेदानन्तरं शिक्षायाः क्रमः पतति येन ज्ञायते यत् वेदाध्ययनस्य स्वाध्यायवेलायामुच्चारणसन्दर्भेऽक्षरबोधो ह्रस्वदीर्घप्लुतबोध उदात्तादिस्वरबोधो ऽनुस्वारविसर्गादिषु च शाखागतविशिष्टसंकेतादयोऽपि प्राथमिकदिवसादेवआवश्यका, यच्च शिक्षाशास्त्रस्य मुख्यप्रतिपाद्यविषयाः। अतः कथयितुं शक्यते यत् शब्दब्रह्मरूपस्य वेदस्याध्ययने शिक्षेतिशास्त्रस्य यत् प्रथमं पातः उपर्युक्तौपनिषदेमन्त्रे तच्चोपन्नमेव। यथावेदाध्ययनारम्भात्पूर्वं (उदाहरणरूपेण माध्यन्दिनशाखाया) आरम्भे **"हरिः ऊँ"** इत्यस्योच्चारणमावश्यकं वर्तते। उक्तमपि अमरनाथदीक्षित- टीकायाम्-

**वेदेरामायणेचैवपुराणेषु च भारते।**
**आदिमध्यावसानेषुहरिः सर्वत्र गीयते।।**[2] इति

यतोहि वेदस्वाध्यायसमये प्रारम्भ एव प्रणवं व्याहृतीः सावित्रीं चोच्चार्यैव वेदपाठो विहितः-

**प्रणवंप्राक्प्रयञ्जीतव्याहृतीस्तदनन्तरम्।**
**सावित्रीं चानुपूर्व्येणततोवेदान् समारभेत्।।**[3] इति

स्मृतावपि-

**ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।**
**स्त्रवत्यनोङ्कृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति।।**[4] इति।

एतच्चोंकाररूपप्रणवाक्षरं "हरिः" इतिपुरस्सरं आदावेव यदाभ्यस्यते तदा 'हरि'रित्यत्र विसर्गे ऽगुलिविक्षेपो विसर्गोच्चारणं च क्रियते, तथैव ऊँकारेऽपि प्लुतदृष्ट्योच्चारणमवसाने च **( मुष्ट्याकृतिर्म्मकारेतुनकारेतु नखग्रहः। अनुस्वारेंगुलिक्षेप**

---

1. मुण्डकोपनिषद् 1.1.4.5
2. याज्ञवल्क्यशिक्षा- पं० अमरनाथदीक्षितकृतटीकायां पृ० 18
3. याज्ञ० शिक्षायाम्, पूर्वभागे 22
4. मनुस्मृतौ 2.74

**ऊष्मान्तेंऽगुलिमोक्षणम्।।**[1] इति कृत्वा ) मुष्टिकरणं सम्पाद्यते। अनयोः केवलं द्वयोः पदयो(हरिः ऊँ३)रेव सम्यक् पाठकरणाय याज्ञवल्क्यादिशिक्षाशास्त्रे समाम्नातं विधानं विना बोधो न संभवति। यच्च प्राय आचार्यसन्निधौ वेदाभ्यासी दिवसमेकं द्वयं वा पर्यन्तं पदद्वयमेवाभ्यस्यति येन उच्चारणविकृति दूरं भवति विसर्गादौ चांगुलिप्रक्षेपप्रकारमुद्रायाः न सम्यक् स्वरूपं दार्ढ्येन जानाति। तात्पर्यमस्ति यत् वेदपाठस्य प्रथमे पदे एव शिक्षाग्रन्थानामावश्यकता वर्तते अत उपर्युक्ते मन्त्रे शिक्षायाः प्रथमं पातं तत्सम्यगेवप्रतिभाति। यद्यपि चतुर्षु वेदेषु तदन्तर्भूतासु शाखासु च विभिन्नरीत्या पाठो भवति यस्य विधानं निर्देशनं च तत्तच्छाखीयैश् शिक्षादिग्रन्थैः तदन्तर्भूतैः प्रातिशाख्यादिभिः विहितं वर्तते। यथा ऋग्वेदे- सामान्यरूपेण पाणिनीयशिक्षा, स्वरव्यंजनादिशिक्षा, ऋक्प्रातिशाख्यादिग्रन्थाः निश्चिताः। शुक्लयजुर्वेदे-याज्ञवल्क्यमाध्यन्दिन्यादिशिक्षा वाजसनेयिप्रातिशाख्यं च निश्चिताः। कृष्णयजुर्वेदे व्यासादिशिक्षा तैत्तिरीयप्रातिशाख्यं चेति निश्चिताः। सामवेदे नारदीयप्रभृतिशिक्षाः पुष्पसूत्रसामतन्त्रादिप्रातिशाख्यग्रन्था निश्चिताः, तथैव चाथर्ववेदेऽपि माण्डूकिशिक्षा शौनकीयाचतुरध्यायिकाथर्ववेदप्रातिशाख्यादिग्रन्था निश्चिताः।। एतेषु शिक्षादिग्रन्थेषु विविधप्रकारेण विविध-दृष्ट्या च वर्णसंख्या तदुच्चारणं तत्सम्बद्ध संकेतमुद्राश्च क्वचिदुदाहरणसहितं क्वचिच्चोदाहरणरहितं ख्यापिताः भणिताश्चेति। तत्रास्मिन्नेव क्रमे **"षोडशश्लोकी"** इतिनामशिक्षाऽपि मिलति। अस्यां शिक्षायां नामानुसारं षोडश एव श्लोका मिलन्ति। प्रथमे श्लोके- "स्वयम्भु-ब्रह्मणा यथा व्यवहारजगति शिक्षोक्ता तथैव लेखकोऽपि उच्चारणविधिरूपशिक्षाया उपदेशवाचनं प्रतिजानाति-

**अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि वाच उच्चारणे विधिम्।**
**यथा संव्यवहारेषु स्वयं प्रोक्ता स्वयंभुवा।।**[2] इति

अत्र **द्वितीय**श्लोकतः **पञ्चम**श्लोकपर्यन्तं वर्णानां संख्या उदीरिता, एवं च तेषां वर्णानां स्वरूपप्रकारोऽपि दर्शितोस्ति, यथाचात्र **"त्रयस्त्रिंशद्धलावर्णाः स्वरा द्वाविंशतिर्यमाः। चत्वारश्च विसर्गोऽनुस्वारः क पस्त्रिषष्टिकाः।।"**[3] अत्र त्रयस्त्रिंशद् हला (व्यंजनवर्णाः)

---

1. या० शिक्षा 61
2. षोडशश्लोकीशिक्षा 01
3. तत्रैव - समास्तेदिदुतोज्ञेया ऋच्चादीर्घलृपंचमः।
   एदैदोदौतुचत्वारोह्रस्वाः सन्ध्यक्षराणिच।।3।।
   ह्रस्वदीर्घप्लुताभेदास्तदुदात्तोऽनुदात्तकाः।
   स्वरितश्चापिते सानुनासिकानुनासिकाः।।4।।
   इत्यष्टधाभेदाव्यवर्णा नामिनः स्वराः।
   कुचुतुटुपुवर्गास्तद् उत् पञ्चवर्णसंग्रहः।।5।।

द्वाविंशतिस्वराः चत्वारो यमाः, विसर्गानुस्वारप्रभृतयः सर्वेऽपि मिलित्वा त्रिषष्टिवर्णाः प्रतिपादिताः। वाजसनेयिप्रातिशाख्येऽपि "कुं खुं गुं घुं यमा" इति भणन् यमा दर्शिताः।[1] अत्र स्वरप्रबोधने लृकारस्य दीर्घाभावोक्तः तथैव एचां (ए ओ ऐ औ) ह्रस्वाभावोऽपि स्पष्टितः सहैव तेषामेचां सन्ध्यक्षरसंज्ञापि कीर्तितास्ति। स्वराणाञ्च अष्टादशभेदान् उक्त्वा पंचवर्णसंग्राहकाः पंचवर्गा (कु चु टु तु पुवर्गा) अपि प्रदर्शितास्ति। षष्ठश्लोकतः दशमश्लोकपर्यन्तं व्यंजनवर्णानां स्पर्शादिसंज्ञा, प्रत्याहारश्च चर्चिताऽस्ति। यथा सिद्धान्तकौमुद्याम् अच्-अक्-अट्-प्रत्याहारो बोधितस्तथैवात्रापि बोधितोस्ति। काञ्चन प्रत्याहारानुक्त्वा तेषां प्रत्याहाराणां संख्या असंख्यत्वेन कथिता। "... **प्रत्याहारस्त्व-संख्यका**"[2] इति एकादशश्लोकतः त्रयोदशश्लोकपर्यन्तम् "अकुहविसर्जनीयानां स्यात् कण्ठ्यम्[3]..." इति पादयन् वर्णानां स्थानानि प्रतिपादितानि। एतावत् पर्यन्तं वर्णानां प्रकृतिः संज्ञा स्थानादीनि च प्रोक्तान्यस्यां शिक्षायाम्। शिक्षाकारेणेयं लघ्व्याकारा शिक्षा "सद्योबोधकरा मणिभूता" चेति विशेषणेनालंकृता- **"सद्यो बोधकरा शिक्षा मणिभूता प्रकाशितेति"**[4] ततः चतुर्दशश्लोकात् षोडशश्लोकपर्यन्तं वर्णोच्चारण उच्चारणदृष्ट्या

---

1. 8.24
2. कुप्वन्त्यच्चवादिवर्गाणां व्युत्क्रमात् पंचमादिता।
   खफाघाश्छठथाज्ञेयारलान्त्याहयवाः स्मृताः।।6।।
   अतस्येतः स्वराः पूर्वाहलौ मोझयोजबः।
   खथश्चपः शसश्चैतेप्रत्याहारास्त्वसंख्यकाः।।7।।
   कादयोमान्तिकास्पर्शाः यमापंचमान्तरे।
   शषसहाः स्युरुष्माणोऽन्तस्था यरलवाः स्मृताः।।8।।
   कखतफतपूर्वः क्रमाद् अर्हविसर्गकः।
   जिह्वामूलीयको ज्ञेय उपध्मानीयसंज्ञकः।।9।।
   विसर्गार्द्धविसर्गानुस्वारव्यंगंपराश्रयम्।
   एतत्परापरौह्रस्वौग्लौदीर्घश्चगुरुस्तथा।।10।।
3. अकुहविसर्जनीयानांस्यात् कण्ठ्यं यिश्चुतालुकम्।
   ऋटुर्षस्लृतुलादन्तम्पूपध्मानीयमोष्ठजम्।।11।।
   वोदन्तोष्ठंञ्मस्यापिनासिकायामयुग्घुरः।
   ओदौतोरपिकण्ठोष्ठंत्वेदैतौः कण्ठतालुकम्।।12।।
4. जिह्वामूलीयमात्रस्य जिह्वामूलंहिचाष्टमम्।
   सघौबोधकराशिक्षा मणिभूताप्रकाशिता।।13।।

निषिद्धाध्येतृणां[1], व्याघ्र्यु[2] दाहरणव्याजेन वर्णानां सम्यक्तयोच्चारणप्रकाराणां, शिक्षापाठफलस्य[3] च निदर्शनं सम्पादितं वर्तते। निषिद्धाध्येतृणां कृते चतुर्दशे विहितार्थोऽस्ति यत् दन्तुरश्छात्रो वेदशब्दान् उच्चारयितुंसमर्थो न भवति प्रलम्बदशनच्छदोपि न तत्कर्तुं क्षमः। सर्वेषु स्वरेषु अनुनासिकत्वोत्पादयितु र्विद्यार्थिनोपि अनर्हता प्रोक्तास्ति, एवं च गद्गदोऽर्थात् पदादौ अक्षरेऽक्षरे वाऽक्षरस्य द्वित्वं त्रित्वं वा कृत्वा यो वदति सगद्गदश्छात्रोपि सम्यगुच्चारणेऽक्षमः, तथैव वाक्स्तम्भवान् विद्यार्थिरपि वेदशब्दान् वक्तुं योग्यो न भवति। अत्रैतादृग्विद्यार्थिनम् अनर्हम् मत्वा तन्निषिध्य पुनः तद्वेदशब्दानामुच्चारणाय पंचदशे श्लोके व्याघ्र्युदाहरणव्याजेन शावकानामुपमाऽक्षरादिवर्णैः सह कृतस्य तावत्प्रयासस्य विधानं पादितमेव, अर्थात् शावको यथा मुखतो न पतेत् न चैतस्य चर्म दन्तैश्छिद्रितं भवेदिति भीता व्याघ्री स्वपुत्रं दशनैर्गृहीत्वा स्थानान्तरं प्रापयति तथैव वेदाध्येतृभिः समुचितकरणादिसहितेन यत्नेन वर्णानुच्चारयेत्, यत्नस्य शैथिल्येन वर्णास्पष्टता वर्णाभावो वा न भवतु नैव च अतिदृढेन यत्नेन वर्णेषु रुक्षता द्वित्वतापि उत्पादनीयेति पादितमेव। एतौ द्वौ श्लोकौ प्राय अन्यास्वपि याज्ञवल्क्यनारदीयादिशिक्षासु पठितौ, तत्र च बह्व्योऽप्यन्याः कारिका एतस्मिन् सन्दर्भे पठितास्सन्ति[4]। संग्रहेणकथयितुं शक्यते यदस्यां शिक्षायां श्रीमतारामकृष्णेन वेदपाठस्य सम्यगुच्चारणाय तत्र च छात्राणां सारल्येनप्रवेशायाक्षराणां प्रकृतिरध्येतुश्चप्रकृतिः प्रकटिता कृता, येन समस्तेऽपि ब्रह्माण्डे व्याप्तेषु शब्देषु क्वचित् कथंचिदपि स्खलनं नस्यात् नैव च तज्जन्यं वाग्वज्रविनशनं स्यादिति तच्च वाग्वज्रत्वं यथा–

**मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।**
**स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।**[5] इति

अन्तिमे षोडशे श्लोके शिवेतिनामव्याजेन शिक्षायाः कल्याणकारित्वं पादितम्। तेनैव षोडशेनेयं समाप्तास्ति।

---

1. करालो न च लम्बोष्ठोनाव्यक्तोनानुनासिकः।
   गद्गदोबद्धजिह्वश्चप्रयोगान् वक्तुमर्हति।।14।।
2. व्याघ्री यथाहरेत् पुत्रान् भीतापाताच्चपीडनात्।
   तद्वत् प्रयोजयेद् वर्णांस्तेनलोकेमहीयते।।15।।
3. शिवां यान्निःसृतांशिक्षांप्रयतो यः पठेदिह।
   पुत्रकीर्तिधनायुष्मान्त्स्वर्गेऽतिसुखमश्नुते।।16।।
4. याज्ञवल्क्यशिक्षायाम् 28–30
5. पा०शि० 52

सारोऽस्ति यद् वेदाऽध्येतृणां कृते मन्त्रारम्भकाले शिक्षेयम् अनिवार्यज्ञानपुरस्सरं अत्यन्ताल्पतया सामान्यपरिचयं ददातीति प्रतिभाति।

**अनुशीलित-ग्रन्थाश्च**


1. आचार्य जगदीशचन्द्रमिश्र, वैदिकवाङ्मयस्येतिहासः, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, 1998
2. पं० बलदेव उपाध्याय, चतुर्वेदभाष्यभूमिकासंग्रहः,
3. डॉ० राममूर्तिचतुर्वेदी, वैदिक शिक्षास्वरूपविमर्शः, सम्पूर्णानन्द सं०वि०वि०, वाराणसी, 2003
4. डॉ० जमुनापाठक, सम्पादक, आश्वलायनगृह्यसूत्रम्, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, 2018
5. शिवराज आचार्य कौंडिन्यायनः, व्याख्याकार, नारदीया शिक्षा, चौखम्बा विद्या भवन, 2008
6. कातीयचरणव्यूहः, चौखम्बा विद्या भवन, 2001
7. श्रीअमरनाथदीक्षितः, व्याख्याकारः, याज्ञवल्क्यशिक्षा (प्राचीन प्रति) विक्रम संवत् 1993
8. डॉ० वाचस्पति उपाध्यायः, व्याख्याकारः, अर्थसंग्रहः, चौखम्भा पब्लिशर्स, 2005
9. डॉ० विश्वनाथ राम वर्मा, शुक्लयजुर्वेदीय शिक्षा ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन, वाणी मन्दिर, 1996
10. आचार्य श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी, सम्पादक, शिक्षासंग्रह, 1989 ई०
11. डॉ० वी०के० वर्मा, सम्पादक, वाजसनेयि प्रातिशाख्यम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, 1987


✦✦✦

# चरकदृशा आरोग्यशिक्षा

**डॉ. विजयलक्ष्मीः***

आदौ तावत् विचारयामः किमारोग्यमिति? न रोगः अरोगः, क अरोगी इति प्रतिपादयता सर्वथा समीचीनमलेखिचरकसंहिताकारेण- **नरो हिताहारविहारसेवी समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्तः। दाता समः सत्यपरः क्षमावानाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः। मतिर्वचः कर्म सुखानुबन्धं सत्त्वं विधेयं विशदा च शुद्धिः। ज्ञानं तपस्तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः।**[1] साक्षात् अध्यात्मविषय एव वर्णितः आचार्येण श्लोकद्वयमाध्यमेन। **अरोगस्य भावः (ष्यञ्) आरोग्यम्।**[2] रोगःअर्थात् वपुषो मनसो भङ्गकारकः, विघ्नोत्पादकश्च। दैनन्दिनकार्यजातेषु देहभृतां देहस्य या स्वाभाविकी, निर्दोषा, स्वस्था, उत्साहपूर्णा स्थितिः, कार्यशैली वा तत्र विघ्नप्रदायकः, व्यग्रतादायकः, कष्टकारकः रोगः, आमयः, अस्वास्थ्यमिति ज्ञेयम् आरोग्यमहत्त्वमुररीकृता अवादि आचार्येण-**धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्।**[3] आरोग्यस्य किमुद्देश्यमाचार-प्रवणानामाचार्याणां दृशेति विचारयामश्चेत् स्फुटीभवति यत् तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायुषां शरीरिणां कष्टदायकाः, विघ्नकारकाः रोगाः न स्युरिति।[4] परमत्रावधेयं यत् साम्प्रतिके समाजे स्वास्थ्यसंरक्षणस्य प्रधानानि कारणानि तपोपवासाध्ययनादीनि न, तत्र हेतुभूतानि कारकाणि अन्यानि खलु, यथा- रोगनिवारणम्, शारीरं सौष्ठवम्। तत्रापि शरीरसौन्दर्याधारिताः विविधा आजीविकाः अस्य महत्तामितोऽपि वर्धयन्ति। समाजे शारीरं सौष्ठवं तादृशं स्थानमादधाति अद्यत्वे यदिदं मानवस्य प्रायशः अन्यान् सर्वानपि गुणान् अतिशेते। रोगनिवारणञ्चापि महत्त्वपूर्णं कारकं आरोग्योपलब्धये लोके। अनामयं, शरीररक्षासदृशानि अपि कारणानि कल्याणपराणि एव सन्ति इत्यत्र नास्ति काचिदपि विप्रतिपत्तिः। महत्सौभाग्यमुन्नतिञ्च लभेत लोके यदि अनामयं स्यात् सर्वत्र। यतोहि अनामयावाप्तये

---

* एसो. प्रो. संस्कृतविभागः, सनातनधर्ममहाविद्यालयः, मुजफ्फरनगरम्।

1. चरकसंहिता, शारीरस्थानम् 46,47।
2. अष्टाध्यायी 5.1.124 (ख) चरकसूत्रस्थानम् 9.4 सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च।
3. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम् 1.15
4. तदेव 1.6 विघ्नभूता यदा रोगाः प्रादुर्भूताः शरीरिणाम्। तपोपवासाध्ययनब्रह्मचर्यव्रतायुषाम्।

अनन्तानि संसाधनानि, अपरिमिता ऊर्जा, समयः, धनञ्च प्रयुक्तं भवति समाजस्य। कोरोना इत्याख्यरोगेण महती हानिर्जाता जगति। अत्रापि अवधेयं यत् क्रीडकाः, कृषकाः तथा अन्ये येऽपि श्रमजीविनः सन्ति ते कोविडप्रभावेण तथा दुष्प्रभाविताः न जाताः यथा बुद्धिजीविनः। अस्तु, भवेन्नाम क्रीडकाः, व्यायामप्रशिक्षकाः, योगशिक्षकाः, शरीरसौष्ठवप्रतिभागिनः, अभिनेतारः, अभिनेत्र्यो वा सर्वे केवलं देहं यावदेव स्वास्थ्यसीमानं गणयन्ति, मनोरोगचिकित्सका अपि शरीराधारितं मनसः चिकित्सां कुर्वन्ति। आचार्यचरकानुसारमपि तापसाः, उपवासपराः, अध्ययननिरताः, ब्रह्मचर्ये वर्तमानाः, व्रतशालिनः जनाः अपि रोगपीडिताः जायन्ते यदि तैः आरोग्यनियमाः सम्यक् नानुष्ठीयन्ते। अतएव आचार्येण ग्रन्थास्यास्य निर्माणं कृतम्[1], यतोहि न केवलमाध्यात्मनिरतेन नापि च शरीरसंरक्षणतत्परेण जनेन आरोग्यमवाप्तुं शक्यम्। अनेनैव आयुर्वेदे **आयुष्यम्** इत्यपि पदं प्रयुज्यते, अर्थात् आयुष्यम् आयुष् यत् = आयुर्हितकारकम्। कः स्वस्थ इति जिज्ञायायाम् उक्तञ्चाचार्यसुश्रुतेन- **समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।**[2] गीतायां तु स्वस्थ इति पदमतीव महनीये अर्थे प्रयुक्तम्। तत्र तु भगवता कृष्णेन **गुणातीतस्य**[3] आचारमुपवर्णयता स्वस्थ अर्थात् स्वे आत्मनि स्थित[4] इति अभिहितम्। वस्तुतस्तु अध्यात्मनि, दर्शनग्रन्थेषु, आर्षकाव्येषु च स्वस्थपदेन आत्मनः स्वाभाविकी स्थितिरभिप्रेता वर्तते। आचार्यचरकानुसारं आयुर्वेदस्योद्देश्यं केवलं शरीरस्य रक्षणमेव न अपितु आत्मनः, मनसः, शरीरस्य सर्वेषां स्वास्थ्यसंरक्षणम्आयुर्वेदस्य लक्ष्यम्। तद्यथा- **सत्त्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत्। लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्। स पुमांश्चेतनं तच्च तच्चाधिकरणं स्मृतम्। वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं सम्प्रकाशितः।**[5] अपि च- **शरीरं सत्त्वसंज्ञं च व्याधीनामाश्रयो मतः।**[6] श्लोकस्यास्य वक्तव्ये लिखितम्- यहां सत्त्वसंज्ञक कहने से आत्मशरीरसम्बद्ध मन का बोध होता है, क्योंकि (चेतन) आत्मसंयुक्त मन रोग का आश्रय होता है और शरीर भी आत्मसंयुक्त होने पर ही रोगाधिष्ठान होता है।[7]

---

1. तदेव सू. 30.26 प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च।
2. सुश्रुतसूत्रस्थानम्-15.44
3. गीता 14.24
4. तदेव, आचार्यशङ्करभाष्यम्
5. चरकसंहिता, सूत्रस्थानम् 1.46,47
6. तदेव 1.55
7. चरकसंहिता, व्याख्याकार आचार्य विद्याधर शुक्ल, प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, पृ. 29, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली। संस्करण 2006।

आरोग्यविषये सम्यगुदीरितमाचार्येण- **सुखसंज्ञकमारोग्यम्।**[1] सर्वाणि इन्द्रियाणि यस्यामवस्थायां सुखमनुभवन्ति तदारोग्यम्। अस्मिन् ग्रन्थे अरोगिणं जनं **सुखमायुः** नाम्नापि परिभाषितम्। ज्ञापितञ्च आचार्येण- **शारीरमानसाभ्यां रोगाभ्यामनभिद्रुतस्य विशेषेण यौवनवतः समर्थानुगतबलवीर्ययशः पौरुषपराक्रमस्य ज्ञानविज्ञानेन्द्रियेन्द्रियार्थबलसमुदाये वर्त्तमानस्य परमर्द्धिरुचिरविविधोपभोगस्य समृद्धसमारम्भस्य यथेष्टविचारिणः सुखमायुरुच्यते।**[2] संहिताकारस्य दृढं मतं यत् तत्सुखसंज्ञकमारोग्यं सद्वृत्तपालनेनसमाप्नोति सज्जनः। समादिष्टं च तेन- **आत्महितं चिकीर्षिता सर्वेण सर्वं सर्वदा स्मृतिमास्थाय सद्वृत्तमनुष्ठेयम्। तद्ध्यनुतिष्ठन् युगपत् सम्पादयत्यर्थद्वयमारोग्यमिन्द्रियविजयं चेति।**[3] किं सद्वृत्तमिति ज्ञापयता कथितं आयुर्वेदविदुष्मता अग्निवेशेन- **देवगोब्राह्मणगुरुवृद्धसिद्धाचार्यानर्चयेत्, अग्निमुपचरेत्, ओषधीः प्रशस्ता धारयेत्, द्वौ कालावुपस्पृशेत्, मलायनेष्वभीक्ष्णं पादयोश्च वैमल्मादध्यात्, त्रिः पक्षस्य केशस्मश्रु- लोमनखान् संहारयेत्, नित्यमनुपहतवासाः सुमनाः सुगन्धिः स्यात्।**[4] अत्र ओषधीः प्रशस्ता.. इति पठितम्, अद्यत्वे ओषधी इति पदं व्याधिनिवारणाय प्रयुक्तं द्रव्यविशिष्टार्थे रूढम्, किन्तु अमरकोशकारानुसारम्- ओषधीः **फलपाकान्तवृक्षः। स च धान्यादिः।** उपन्यस्तं च मनुना- **उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः। ओषध्यः फलपाकान्ताः बहुपुष्पफलोपगाः।**[5] **फलपाकान्ता ओषधय** आचार्यवरस्य सुश्रुतस्यापि इदमेवाभिमतम्। एवं ओषधीः प्रशस्ता धारयेदस्याभिप्रायो यत् ऋत्वनुकूलं प्राकृतिकरूपेण पक्वं फलमश्नीयात्। अर्थात् स्वास्थ्यसंवर्धनाय जनेन सहजभावेन, स्वाभाविकरूपेण पक्वानि फलानि सेव्यानि। अद्यत्वे फलानि तु उपलब्धानि परं प्राकृतिकविधिना पक्वानि फलानि तु प्रायशः अलभ्यानि एव। अस्माभिः कृत्रिमविधिना पक्वानि फलानि सेव्यन्ते, इदमपि अन्यतमं कारणमस्वास्थ्यस्य। अपि चारोग्यमभिवाञ्छता निर्मलानि पुष्टानि च वस्त्राणि धारणीयानि- वाक्यमिदमपि अवधेयं वर्तते, यतो हि सर्वे प्रायशःस्वच्छानि वस्त्राण्येव धारयन्ति। किमत्र विचारणीयम्? अस्ति विशिष्टम्। साम्प्रतिके काले वस्त्राणां प्रयोजनं वर्तते- **सामाजिकानां ध्यानाकर्षणम्, कस्यापि मानकस्यास्य प्रचारः, वस्त्रनिर्माणस्य नूतनविधेः प्रसारः, मम वस्त्राणि अन्येभ्यो** विशिष्टानि प्रभृतीनि प्रयोजनानि वस्त्रधारणाधारभूतानि किन्तु आचार्यवरेण स्वास्थ्यदृशा कालानुसारं

1. तदेव सू.9.4
2. तदेव सू. 30.24
3. तदेव च.सू. 8.17
4. तदेव च.सू. 8.18
5. मनुः 1.46

ऋत्वनुकूलं वसनानां सेवनं निर्दिष्टम्। अतः उद्देश्ये महान् भेदः प्रतिभाति। भावनाभेदेन प्रत्यक्षतः न किञ्चिदपि कुर्वाणो जनः पापपुण्यभाक् भवति, अपरतश्च परमेश्वरं प्रणम्य पदार्थप्रयोक्ता न कस्यापि कष्टाय कल्पते। आरोग्योपलब्धये आवश्यकं यल्लोके करणीयानि कार्याणि प्रमुदितेन मनसा सम्पादनीयानीत्यप्युपदिशति आचार्यप्रवरः।

कथं वर्तितव्यमारोग्यवाञ्छता मानवेन इति प्रतिपादयतोक्तमाचार्येण- **मङ्गलाचार-शीलः.....सर्वप्राणिषु बन्धुभूतः स्यात् ...भीतानामाश्वासयिता, दीनानामभ्युपपत्ता, सत्यसङ्गः, सामप्रधानः ..... रागद्वेषहेतूनां हन्ता च।**[1] आरोग्योपलब्धये मानवेन उत्तमाचारयुक्तेन भाव्यम्, जनो भ्रातृत्वभावनया भावितो भवेत्, रागद्वेषादीनां विकाराणां न केवलं शमयितैवापितु यानि अपि कारणानि एतासां विकृतीनां तान्येव समूलानि विनाशयेदिति आदेशः। आधुनिकैरपि अङ्गीक्रियते यत् अपमानचिन्ताभय- शोकादिविकारैरपि मानवस्य मनःक्लेशमाप्नोति इति सुस्पष्टम्, किन्तु इमे सर्वे सम्मिल्यापि मनोदेहयोः न तावतीं पीडामुत्पादयन्ति यादृशः विनाशः द्वेषेन क्रियते। कीटाः, पशवः अपि द्वेषप्रवृत्तेन क्रोधावेशेन तथा आवेशिता अवलोक्यन्ते यत् नैजं प्रतिपक्षिणं सर्वथा व्यापादयन्ति, घ्नन्ति च। द्रौपद्याः व्यंग्येन पीडितः, द्वेषाभिभूतः दुर्योधनः महाभारताभिधेयं महाविनाशमजनयत। द्वेषाविष्टैः परिवाराः, लोकाः निर्दयतया विदीर्यन्ते इति तु प्रतिदिनं प्रत्यक्षीक्रियत एव सर्वैः। बहूनां दुर्दान्तानां दस्यूनां जीवनवृत्तेन सूचितम्भवति यत्तैः द्वेषाविष्टैः चित्तैः, प्रतिक्रियाभिभूतैश्च स्वान्तैः अतीवकठोराणि कर्माणि कृतानि। अपरतश्च रागद्वेषादिभिः वियुक्तो भूय यदा लोके प्रवर्तते जनः, तत्फलं प्रतिबोधयता गीतं गीताकारेण-**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसाद-मधिगच्छति। प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।**[2]

कामक्रोधलोभमोहभयेर्ष्याद्वेषादयः विकाराः कथं प्रादुर्भूताः भवन्ति, अनारोग्यं च जनयन्ति, चरकसंहितानुसारमस्य कारणं वर्तते-**प्रज्ञापराधः** (Derangement of wisdom)। आचार्यचरकेण वैदग्ध्येनविस्तृतवर्णनेन च विव्रियते विषयोऽयम्। तद्यथा-

**धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म यत् कुरुते अशुभम्।**
**प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोषप्रकोपणम्॥**

**उदीरणंगतिमतामुदीर्णानां च निग्रहः।**
**सेवनं साहसानां चनारीणां चातिसेवनम्॥**

---

1. चरकसंहिता, च.सू. 8.18
2. गीता 2.64,65

**कर्मकालातिपातश्चमिथ्यारम्भश्च कर्मणाम्।**
**विनयाचारलोपश्च पूज्यानां चाभिधर्षणम्॥**
**ज्ञातानां स्वयमर्थानामहितानां निषेवणम्।**
**परमौन्मादिकानां च प्रत्ययानां निषेवणम्॥**
**अकालादेशसञ्चारो मैत्री सङ्क्लिष्टकर्मभिः।**
**इन्द्रियोपक्रमोक्तस्य सद्वृत्तस्य च वर्जनम्॥**
**ईर्ष्यामानभयक्रोधलोभमोहमदभ्रमाः।**
**तज्जं वा कर्म यत् क्लिष्टं क्लिष्टं यद्देहकर्म च॥**
**यच्चान्यदीदृशं कर्म रजोमोहसमुत्थितम्।**
**प्रज्ञापराधं तं शिष्टा ब्रुवते व्याधिकारणम्॥**[1]

अथ च-

**ये भूतविषवाय्वग्निसम्प्रहारादिसम्भवाः।**
**नृणामागन्तवो रोगाः प्रज्ञा तेष्वपराध्यति॥**
**ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।**
**मनोविकारास्तेप्युक्ताः सर्वेप्रज्ञापराधजाः॥**[2]

एवं द्विविधः स्पर्शः, तृष्णा चापि दुःखानां हेतुभूतानि।[3]

वर्णनममुमादाय कथयितुं शक्यते यत् कर्म शारीरिको भवेन्मानसिको वा सर्वदैव जनेन जागरूकेण भाव्यम्। **उत्तिष्ठत जाग्रत....** कठोपनिषदि नचिकेतसे यमेन यदुपदिष्टं तद् सावधानतया निदिध्यासितव्यम्मनीषिणा। स्वकीयाः विचाराः, नैजं मननं, चिन्तनं, कार्यजातञ्च सूक्ष्मेक्षिकया अवलोकनीयं कल्याणाभीप्सुना मानवेन।

आचार्यवरेण आयुष्यविवर्धनाय, आरोग्याधिगमाय अनेकाः अनुपमाः अमृतोपमाः सरलाः हृद्याश्च उपाया ग्रन्थेऽस्मिन् ग्रथिताः ये बहुकालातीतेऽपि उपयोगिनः उदीर्यन्ते, प्रासङ्गिकाः प्रतीयन्ते, आचरणीयाः अनुभूयन्ते, ग्राह्यत्वेन गृह्यन्ते। स्वास्थ्याभिधेयं साध्यं साधयितुं श्रेष्ठा सृतिरियं संहिता। उत्कृष्टजीवनाय कियत् हृद्यं सूत्रितम्, निभालयन्तु- **अहिंसा प्राणिनां प्राणवर्धनानामुकृष्टतमं, वीर्यं बलवर्धनानां, विद्या बृंहणानाम्, इन्द्रियजयो नन्दनानां, तत्त्वावबोधो हर्षणानां, ब्रह्मचर्यमयनानामिति एवमायुर्वेदविदो**

---

1. च.सं. शारीरस्थानम् 1.102- 108
2. तदेव सू. 7.51,52
3. तदेव च.शा.1.133, 134

**मन्यन्ते।**[1] जीवानां जीवनाय अहिंसा अतीव उपादेया, सुखकरी च। पूर्वं तावत् विचारयामः का नाम अहिंसेति, भणितं भगवता भाष्यकारेण व्यासमहाभागेन-**तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वभूतामनभिद्रोहः।**[2] अर्थात्सर्वान् जीवान् प्रति, समस्तं चराचरं प्रति सर्वकालेषु सर्वभावेन हितचिन्तनम्, अहंकारं परिहृत्य व्यवहरण**महिंसा**। द्रुह- जिघांसायाम् अनेन धातुना भावे घञि कृते **द्रोह** इति पदस्य निष्पत्तिर्जायते। न द्रोह अद्रोह अर्थात् परापकारभावानामभावः। अहिंसासाधनमतीव महत्त्वपूर्ण मतमाचार्येण पतञ्जलिना। भाष्यकारेण व्यासेनापि पतञ्जलेः अहिंसाविषयकं मतं सर्वथा अनुमतम्, भाष्यमुखेन समर्थितञ्च। तद्यथा- **उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतया तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते, तदवदातरूपकरणायैवोपादीयन्ते।**[3] **वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता**[4]..... सूत्रं स्पष्टीकुर्वता अलेखि व्यासेन- **तत्र हिंसा तावत् कृता कारितानुमोदितेति त्रिधा। एकैका पुनस्त्रिधा, लोभेनमांसचर्मार्थेन, क्रोधेन-अपकृतमनेनेति, मोहेन-धर्मो मे भविष्यतीति। लोभक्रोधमोहाः पुनस्त्रिधा मृदिमध्याधिमात्रा इति। एवं सप्तविंशतिर्भेदा भवन्ति हिंसायाः। मृदुमध्याधिमात्रा पुनस्त्रिधा.... एवमेकाशीतिभेदा हिंसा भवति। सा पुनर्नियमविकल्पसमुच्चयभेदादसंख्येया प्राणभृद्भेदस्या-परिसंख्येत्वादिति।**[5] हिंसाया अशीतिभेदान् परिगणय्य अपि आचार्येण लिखितं यत् हिंसाभेदानां परिगणनमसंभवं खलु यतोहि तत्र नैकाः नियमाः, विविधा विकल्पाः, विस्तृतं चराचरमयं जगत्, तत्र संख्यातीताः प्राणिनः, प्राणिनां प्रकृतयोपि बह्वयः, अतस्तेनाङ्गीकृतं यत् हिंसाया भेदानां संख्या अपरिसंख्येया खलु।

अहिंसायाः शक्तिः अप्रतिमा अप्रतिहता चास्ति। मानवमाध्यमेन परमात्मनः प्रवाह इव विद्यते शक्तिरियम्। हिंसकः सर्वदैव दुःखेन जीवति, दुःखं प्रसारयति, विस्तारयति। जीवनस्य सामान्यः सिद्धान्तो यत् किञ्चिदपि कार्यजातं, या काचिदपि क्रिया क्रियते, तत्कर्मणः प्रथमः प्रभावः कर्त्तारं गच्छति ततोऽन्यत्र यातीति। जीवनस्य समस्तेषु कर्मसु, भावेषु अयमेव राद्धान्तः कार्यं करोति। यथा अविद्या अखिलानां क्लेशानां जननीत्वेन मता मतिमद्भिः तथैव हिंसापि समेषां विकाराणां मूलं कारणत्वेनाङ्गीकृता विपश्चिद्भिः। भवेन्नाम क्रोधो, लोभो, मोहो वेति सर्वे हिंसाप्रभवाः, अथ च सर्वत्र आदौ आत्मानं हिंसति जनः, तदुत्तरमितरान्। एभिः विविधहिंसाकर्मभिः अन्यस्य कियती,

1. तदेव च.सू. 30.15
2. योगदर्शनम् 2.30 सूत्रस्य व्यासभाष्यम्।
3. तदेव, अस्यैव सूत्रस्य भाष्यम्
4. तदेव 2.34
5. तदेव, अस्य सूत्रस्य भाष्यं द्रष्टव्यम्।

कीदृशी वा हानिर्जायते, आहोस्वित् सर्वथा न जायत इति तु न निश्चितं परं कर्तुः हानिरवश्यं भवति, इत्यत्र नास्ति संशीतिलेशोपि। अथ च यथा यथा अहिंसा सम्पादने समर्थो भवति मानवः तथा तथा हर्षितो भवति, प्रसन्नतां प्रसारयति, अहिंसकस्य भावाः, वीचयो वातावरणे व्याप्य विस्तारयन्ति विशिष्टं विभातं विभाकर इव।

विश्वोऽपि विश्वं वृद्धिमयं भवेत्, वर्तते चेदीदृशी आकाङ्क्षा, वाञ्छा वेति समस्तं चराचरं प्रति सौहार्दभावनया भावितं भाव्यम्। यदि कोऽपि जनः अकारणमेव हिंसति, निन्दति, जल्पति, परिवदति, अपराध्यति, पीडयति ईदृक्षेण मानवेन कथं व्यवहरणीयम्। एतादृश्यामवस्थायां गीता अनुसरणीया। तथाहि–

**मयि सर्वाणि कर्माणि सन्न्यस्याध्यात्मचेतसा।**
**निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः।**[1]

मोहेर्ष्याभयादीन् विकारान् परिहृत्य, ईश्वरप्रणिधानं विधाय विधानं विधेयम्, करणीयं कर्त्तव्यम्। एवं विद्यायाः, इन्द्रियजयस्य, तत्त्वाबोधस्य, ब्रह्मचर्यस्यापि श्रेष्ठता प्रतिपादिता ग्रन्थकारेण। को हितायुरिति प्रतिपादयता उदीरितमाचार्येण–**हितैषिणः पुनर्भूतानां, परत्वादुपरतस्य, सत्यवादिनः, शमस्य, परीक्ष्यकारिणः, अप्रमत्तस्य, त्रिवर्गं परस्परेणानु- पहतमुप-सेवमानस्य, पूजार्हसम्पूजकस्य, ज्ञानविज्ञानोपशमशीलस्य, वृद्धोपसेविनः, सुनियतरागरोषेर्ष्यामदमानवेगस्य, सततं विधिप्रदानपरस्य, तपोज्ञानप्रशमनित्यस्याध्यात्मविदस्तत्परस्य, लोकमिमं चामुं चावेक्षमाणस्य, स्मृतिमतिमतो हितमायुरुच्यते।**[2] कथयितुं शक्यते यत् परहितेरतः, अप्रमत्तः, धर्मार्थकामाख्यं त्रिवर्गं सम्यक्सेवमानः, उत्तमैः गुणगणैरुपपन्नः आध्यात्मवित् मानवः प्रशस्यते प्रज्ञापूर्णैः प्राज्ञैराचार्यैः।

सद्वृत्तपालनेन, स्वस्थवृत्तानुष्ठानेन जनः शतमव्याधिरायुषा संयुज्यते परिणामरूपेण **आरोग्य**मश्नुते, आयुष्यमवाप्नोति। सद्वृत्तमुपसंहरता अवितथैः विस्पष्टैश्च वचोभिरुद्बोधिताः जनाः आचार्यवरेण चरकेण–

**स्वस्थवृत्तं यथोद्दिष्टं यः सम्यगनुतिष्ठति।**
**स समाः शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते॥**
**नृलोकमापूरयते यशसा साधुसम्मतः।**
**धर्मार्थावेति भूतानां बन्धुतामुपगच्छति॥**
**परान् सुकृतिनो लोकान् पुण्यकर्मा प्रपद्यते।**

---

1. गीता 3.30
2. च.सं.सू. 30.24

**तस्माद्वृत्तमनुष्ठेयमिदं सर्वेण सर्वदा॥**

एवमध्ययनेनानेन वक्तुं शक्यते यत् सम्यक् आहारविहारपालनेन, अहिंसासत्यसेवनेन, रागद्वेषभयाहङ्कारविसर्जनेन आरोग्यमवाप्यजनः समस्तैः कल्मषैः निर्मलीभूय स्वस्थ अर्थात् स्वरूपे स्थितो भवति, आत्मना अन्तःकरणेन सर्वथा सर्वत्र सुखं संवर्धयति, स्वास्थ्यं समुत्पादयति।

**सन्दर्भग्रन्थसूची**-

1. गीतारहस्य, गीताप्रेस गोरखपुर।
2. योगदर्शनम्, चौखम्बा प्रकाशन।
3. चरकसंहिता, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।
4. पातञ्जल योगदर्शनम्, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली।

✦✦✦

# प्राचीनशिक्षायाः आधुनिकशिक्षायाः च स्वरूपम्

डॉ. धनेशकुमारपाण्डेयः*

## वैदिककालिकी शिक्षा

पाठ्यक्रमस्य अन्तर्गते सम्मिलितानि ज्ञानस्य स्वरूपाणि विस्तारश्च शैक्षिकोद्देश्येषु आश्रिताः भवन्ति। तानि शैक्षिकोद्देश्यानि समाजेन सम्मतानि भवन्ति। अतः देशकालानुसारेण शिक्षाव्यवस्थायामपि भिन्नताः आयान्ति। वैदिकजीवनं धर्मप्रधानं आसीत्। यज्ञेषु देवा आहूयन्ते, घृतान्नसोमक्षीरादिकं हूयते स्म। इन्द्र-अग्नि-वरुण-मरुत्-सोम-अश्विनौ उपास्यदेवेषु मुख्याः भवन्ति स्म। चिन्तनं मननं दर्शनादिकं च सर्वं धर्माश्रितम् इव समवलोक्यते स्म। काव्यकृतिः अपि धर्ममूलैव आसीत्। शिक्षायाः उद्देश्यानि आसन्- ईश्वरभक्तिः धार्मिकभावनायाश्च दृढीकरणम्, बालकानां चरित्रनिर्माणं तेषां व्यक्तित्वविकासश्च। अपि च सामाजिककुशलतायां वृद्धिः। अतः तदानीन्तनस्य पाठ्यक्रमः विस्तृतः आसीत्। तस्मिन् पाठ्यक्रमे पराविद्यायाः अपराविद्यायाश्च पाठाः अपि पाठ्यन्ते स्म। पराविद्या नाम धार्मिकसाहित्यानि। अपराविद्या नाम लौकिकं सांसारिकं च ज्ञानम्।

वेदकालिकः समाजः पितृप्रधानः आसीत्। पिता एव सर्वेषां गृहाणां नेता पुरस्कर्त्ता चासीत्। स्त्री-पुत्र-पुत्री-वध्वादीनां जीवनं तस्यैव छत्रच्छायायां सुखेन व्यतीतं भवति स्म। वैदिके काले सर्वेऽप्याश्रमाः समृद्धाः सुखिनश्चासन्। पुत्राः पुत्र्यश्च उच्चशिक्षां प्राप्नुवन्ति स्म। ललितकलानाञ्च तदा प्रसारः आसीत्। विवाहस्तदा सुव्यवस्थितप्रथां वहन् दृग्गोचरो भवति स्म। वैदिकाः आर्याः सङ्ग्रामप्रियाः जातयः आासन्। अतो मन्त्रेषु वीरपुत्राणां प्रसूतये देवतानां भव्या प्रार्थना कृताऽस्ति -

**यथाहं शत्रुहोऽसान्यसपत्नः सपत्नहा।।**[1]

---

* सहायकाचार्यः, वेदकर्मकाण्डयोः विभागः
हिमाचलादर्शसंस्कृतस्नातकोत्तर-महाविद्यालयः,
जाङ्गला, शिमला, हि.प्र. 171214

1. अथर्व 1/29/9

तदानीं शिक्षायाः कार्याणि गुरुकुलेषु भवन्ति स्म। शिक्षार्थी च शिक्षाकाले गुरुकुलस्य गुरुपरिवारस्य वा सदस्यरूपेण निवसति स्म। सः गुरोः ज्ञानग्रहणेन सह गुरोः गुरुपत्न्याश्च सेवां करोति स्म। आश्रमस्य स्वच्छतां करोति स्म। पशूनां संरक्षणं निरीक्षणं च करोति स्म। अपि च सः भिक्षाटनमाध्यमेन कर्त्तव्यपालनं, सेवाभावः, विनयशीलता, चारित्रिकगुणश्चेत्यादीनां शिक्षामपि गृह्णाति स्म। अनेन प्रकारेण वैदिककालीनपाठ्यक्रमे विद्यार्थिनां कृते पठनपाठनाभ्यां सह व्यावहारिकानुभवस्य समुचितः अवसरः भवति स्म। अपि च व्यावहारिकज्ञानसम्पादनमपि अध्ययनकक्षेषु होरासु च सीमितं नासीत्।

अस्माकं प्राचीनशिक्षाप्रणाल्याः विशेषताः तादृश्यः आसन् याः तदानीन्तने समाजे कस्मिन्नपि राष्ट्रे नासीत्। अस्माकं सा शिक्षाप्रणाली सर्वेषु युगेषु सर्वथा अनुकरणीया अस्ति। अद्य संसारस्य सर्वेषु राष्ट्रेषु याः काः अपि शिक्षाप्रणाल्यः प्रचलिताः सन्ति ताः अस्माकं प्राचीनशिक्षाप्रणाल्याः अपेक्षया अत्यन्तमेव लघुतराः प्रतीयन्ते।

**प्राचीनशिक्षायाः अथवा वैदिकशिक्षायाः मानदण्डाः**

1. वर्णाश्रमव्यवस्था।
2. षोडशसंस्काराः।
3. भारतीयवाङ्मयम्।
4. धार्मिकभावनाः।
5. राष्ट्रभावनाः।
6. अन्वेषणपद्धतिः।
7. जीवनस्तरः।
8. विज्ञानपरम्परा।

**विद्यालयस्य सम्प्रत्ययः**

विद्यालयः तत् स्थानम् अस्ति यत्र शिक्षाग्रहणं क्रियते। अथवा विद्यालयः सा संस्था अस्ति यत्र बालकानां शारीरिकविकासः, मानसिकविकासः, बौद्धिकविकासः, नैतिकविकासश्च भवति। स्कूल इति शब्दः ग्रीक्भाषायाः Skohla इति शब्दात् निष्पन्नः। तस्य तात्पर्यमस्ति अवकाशस्थलम् इति। प्राचीनयूनानदेशे एतत् स्थलमेव विद्यालयः कथ्यते। अस्मिन् स्थले एव आत्मविकासस्य गतिविधीनाम् अभ्यासः क्रियते। शनैः शनैः एतत् अवकाशस्थलं निश्चितोद्देश्यस्य पाठ्यक्रमस्य च ज्ञानप्रदायकसंस्थारूपेण परिवर्तितम्।

## भारते विद्यालयस्य इतिहासः

प्राचीनभारते विद्यालयाः गुरुकुलरूपेण भवन्ति स्म। अर्थात् विद्यालयस्य स्थाने गुरुकुलानि एव भवन्ति स्म। एतानि गुरुकुलानि प्रायः गुरुगृहे अथवा मठेषु मन्दिरेषु वनेषु वा भवन्ति स्म। मुगलानां काले बालकानां शिक्षाग्रहणाय मदरसा इति संस्थानानाम् आरम्भः अभवत्। 18 शताब्दिं यावत् भारते गुरुकुलानां व्यवस्था आसीत्। समस्ते देशे मन्दिराणि सामान्यानि आसन्। प्रतिग्रामम् एकं गुरुकुलं सामान्यतया भवति स्म। पठनम्, लेखनम्, धर्मशास्त्रम्, विधिशास्त्रम्, खगोलम्, भूगोलम्, आचारविचाराः, जीवविज्ञानम्, चिकित्साविज्ञानं धर्मश्चेत्यादीनां विषये शिक्षा दीयते स्म।

ब्रिटिशसाम्राज्ये इङ्ग्लैण्ड-अमेरिकादिदेशेषु क्रिश्चियनमिशनरी नामसंस्थाः उद्घाटिताः, सहैव आवासीयविद्यालयाश्चापि उद्घाटिताः। यदा एते प्रचलिताः जाताः तदा केचन विद्यालयाः उद्घाटिताः। ततः तादृशाः केचन विद्यालयाः सम्मानिताः। बहुषु विद्यालयेषु पठनेन लेखनेन च सह अनुशासनम् आङ्ग्लनियमाः च पाठ्यन्ते। तत्र अध्ययनाध्यापनयोः माध्यमः आङ्ग्लम्। परिणामतः अद्य भारते बहूनि शिक्षामण्डलानि सन्ति। यथा केन्द्रीयमाध्यमिकशिक्षामण्डलम्, केन्द्रसर्वकारस्य राज्यसर्वकारस्य च शिक्षामण्डलानि। एतेषु विद्यालयेषु सामान्यतया – भाषा, गणितम्, विज्ञानम्, भूगोलम्, खगोलम्, रसायनम्, जीवविज्ञानम्, भौतिकी, सामान्यज्ञानम्, सङ्गणकविज्ञानं च पाठ्यन्ते। एतदतिरिक्तं खेलनम्, कूर्दनम्, गायनम्, चित्रकरणम्, नाटकादिकं च पाठ्यन्ते।

## आधुनिकशिक्षायाः स्वरूपम्

आधुनिकी शिक्षा मैकालेशिक्षाप्रणाल्याः अस्ति। कान्वेंटपरम्परायाः विद्यालयाः भारततीयतायाः ह्रासं कुर्वन्तः सन्ति। अस्माकं समाजे धनलोलुपता अधिका अस्ति। शिक्षा धनार्जनोन्मुखी जाता अस्ति। बालकानाम् अभिभावकाः तु इच्छन्ति यत् अस्माकं बालकस्य गुणाः रामसदृशाः स्युः। यथा रामस्य शास्त्रे शस्त्रे व्यवहारे च बुद्धिः आसीत् तथैव ममापि पुत्रे सम्भवेत्। यथा श्रवणकुमारस्य श्रद्धा कर्त्तव्यपरायता च पित्रोः आसीत् तथैव ममापि पुत्रे आगच्छेत्। परन्तु ते पितरः अभिभावकाः वा तादृशीं शिक्षां संस्कारं च दातुं न शक्नुवन्ति।

आधुनिकशिक्षायाः स्वरूपं प्रौद्योगिकीयं अङ्गीयं चास्ति। मानवमहत्त्वाकाङ्क्षायाः सर्वेऽपि मानदण्डाः अद्य सुदृढाः सन्ति। शिक्षाप्रणाल्यां विज्ञानम्, न्यायः, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी, वैमानकी, वास्तु, कला, सङ्गीतम्, शस्त्रास्त्रविद्या, गृहादिनिर्माणम्, सौन्दर्यम्, व्यवसायः, निर्माणशालाः चेत्यादिषु विद्यासु भारतीयसंस्कृतेः प्रवेशः अत्यल्पः एवास्ति।

आधुनिकविद्यालयेषु पठित्वा अधिकतराः छात्राः वृत्तेः याचकाः जायन्ते। वृत्तिहीनतायाः समस्या अस्याः एव आधुनिकशिक्षाप्रणाल्याः दोषः अस्ति। शीलसदाचारादिगुणानां प्रतिष्ठापनाय आधुनिकविद्यालयेषु कोलाहलः निषेधध्वनयः च श्रूयन्ते।

**अनुशीलितग्रन्थाः** -

1. आर्य ऋग्वेद एवं भारतीय सभ्यता, कृपाशंकर सिंह।
2. संस्कृतवाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय।
3. वैदिकशिक्षा पद्धति, डॉ. भास्कर मिश्र।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, बलदेव उपाध्याय।
5. आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्याएँ एवं समाधान, रविन्द्र अग्निहोत्री।
6. संस्कृतनिबन्धाञ्जलिः, डॉ. अरविन्दकुमारतिवारी।

✦✦✦

# विशिष्टच्छात्राणां समस्याः आवश्यकताश्च

डॉ. हरिओम*

**प्रस्तावना-**

प्राचीनभारते शिक्षायाः व्यवस्थायै गुरुकुलशिक्षाप्रणाल्याः विकासोऽभूत। तस्मिन् काले छात्राः गुरुकुलेषु निवसन्तः सम्भूय ज्ञानमर्जयन्ति स्म। तदा गुरुभिः सम्पूर्णशिक्षा छात्रेभ्यः मौखिकरूपेण व्यावहारिकरूपेण च प्रदीयते स्म। छात्राणामन्तः-करणचतुष्ट्यं यदा प्रभावितं भवति स्म तदा गुरुणा तेषां व्यवहारे परिवर्तनं क्रियते स्म। व्यवहार-परिवर्तनमिदमेवाधुनिकशिक्षायां क्रोगेट्समहोदयैः अधिगमः उक्तः। अनया शिक्षया एव छात्राणाम् अन्तर्निहितशक्तीनां समुचितविकासः, अध्ययने आगतानां समस्यानां निराकरणम्, आवश्यकतानां पूर्तिश्च क्रियते स्म। सर्वे छात्राः एकत्र सम्भूय शिक्षामर्जयन्ति स्म। कृष्णयजुर्वेदस्य तैत्तिरीयोपनिषदि प्रमाणमिदं लभ्यते। यथा-

**ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।**
**तेजस्विनावधीतमस्तु माविद्विषावहै॥**[1]

विश्वगुरौः भारते एव नापितु सम्पूर्णे विश्वे आधुनिकशिक्षाव्यवस्थायां समयानुसारेण आवश्यकतानुसारेण च विशिष्टशिक्षायै महत्त्वपूर्णं स्थानं शिक्षाविद्भिः प्रदत्तम्। अत्र इयं जिज्ञासा समुत्पन्ना भवति यत् किन्नाम विशिष्टशिक्षा? किमर्थम् अस्याः शिक्षायाः आवश्यकता अस्माभिः अनुभूता? शिक्षायामस्याम् अध्ययनाय कीदृशां छात्राणां व्यवस्था भवेत्?

सम्प्रत्यत्र ज्ञातव्यमस्ति यत् विशिष्टशिक्षा शिक्षाशास्त्रस्य एका एतादृशी शाखा वर्त्तते यस्याः सम्बन्धः प्रत्यक्षरूपेण विशिष्टच्छात्राणां शिक्षा-समस्या-आवश्यकताभिः सह वर्त्तते। विकलाङ्गशिक्षाऽधिनियमे स्पष्टः उल्लेखः लभ्यते यत् **"विशिष्टशिक्षा**

---

* सहायकाचार्यः (अ) (शिक्षाशास्त्रविभागः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, श्रीरणवीरपरिसरः कोट-भलवालः, जम्मूः

1. तैत्तिरीय-आरण्यके, नवमप्रपाठके, प्रथमानुवाके

**विशिष्टरूपेण निर्मितमेकमनुदेशनमस्ति यदक्षमछात्राणाम् अतुलनीयानाम् आवश्यकतानां पूर्तिं करोति।"**[1] अस्यां विशिष्टशिक्षायां तादृग्भ्यः छात्रेभ्यः शिक्षा प्रदीयते ये सामान्यच्छात्रेभ्यः शारीरिक-मानसिक-सामाजिकक्षेत्रेषु भिन्नाः भवन्ति। एतेषां छात्राणां शैक्षिकावश्यकताः समस्याश्चापि सामान्यच्छात्रेभ्यः विशिष्टाः भवन्ति। अत्र विषयं स्पष्टीकर्तुं **हैरी.जे.बाकरमहोदयस्य** एका परिभाषा प्रस्तूयते **"विशिष्टबालकाः ते भवन्ति ये शारीरिक-मानसिक-संवेगात्मक-सामाजिकदृष्ट्यादिभिः गुणैः अधिकाः अक्षमाः विचलिताः वा भवन्ति। ते स्वकीयाधिकाक्षमतायाः कारणेन स्वविकासाय विशिष्टशिक्षां प्राप्नुवन्ति।"**[2] एतदर्थमेते विशिष्टावश्यकतायुताः बालाः (Children With Special Needs) अप्युच्यन्ते। येषामावश्यकताः समस्याश्च भिन्नाः-भिन्नाः भवन्ति तेषां विशिष्टच्छात्राणां प्रकाराः वर्गीकरणञ्चात्र प्रस्तूयन्ते-

- **बौद्धिकरूपेण भिन्नाः छात्राः-**
  1. मानसिकरूपेण मन्दाधिगन्तारः छात्राः।
  2. शैक्षिकरूपेण मन्दाधिगन्तारः छात्राः।
  3. प्रतिभाशालिच्छात्राः।
  4. सर्जनात्मकच्छात्राः।

- **शारीरिकरूपेण भिन्नाः छात्राः-**
  1. शारीरिकाक्षमाः छात्राः।
  2. श्रवणबाधितच्छात्राः।
  3. दृष्टिक्षतियुक्तच्छात्राः।
  4. बहुदिव्याङ्गता।

- **मौखिकसञ्चारेण भिन्नाः छात्राः-**
  1. वाक्क्षतियुक्तता।
  2. भाषादोषेणग्रसितच्छात्राः।

---

1. शिक्षा के नूतन आयाम, पृष्ठ सं. 03, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।
2. विशिष्ट शिक्षा, पृष्ठ सं. 30. लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटि।

- **मनसामाजिकरूपेण भिन्नाः छात्राः-**

1. संवेगात्मकरूपेण उद्विग्नाः छात्राः।
2. सामाजिकरूपेण कुसमायोजिताः छात्राः।
3. समस्यात्मकच्छात्राः।
4. अपराधिनः छात्राः।

- **वञ्चनाधारेण भिन्नाः छात्राः-**

1. वञ्चितच्छात्राः।

अत्रः छात्राणाम् अक्षमतां प्रकृतिं चावलोक्य तेषां वर्गीकरणं सौकर्यदृष्ट्या विभिन्नवर्गेषु कृतम्।

**सीमाङ्कनम्-**

शोधलेखेऽस्मिन् दृष्टिबाधितच्छात्राणामेव समस्यानाम् आवश्यकतानाञ्च वर्णनं विधास्यते।

प्रतिभाशालिच्छात्रान् विहाय अन्याक्षमताभिः ग्रसिताः छात्राः स्वकीयां क्रियां कर्तुमसमर्थाः भवन्ति। तदर्थं तेषाम् आवश्यकतां प्रकृतिं विशिष्टतां च दृष्ट्वा विशिष्टशिक्षां प्रत्यस्माकं प्रवृत्तिः समभवम्। अत्रापि विशिष्टमेतदस्ति यत् तेषाम् अक्षमतायाः अक्षमतास्तरस्य वा ज्ञानं विधाय एव एते विशिष्टच्छात्राः विशिष्टविद्यालयेषु विशिष्टसाधनैः विशिष्टप्रशिक्षणप्राप्तशिक्षकैः च पाठ्यन्ते, पाठने आगतानां समस्यानां निराकरणं क्रियते, एतादृशीनाम् आवश्यकतानां पूर्तिः च क्रियते। विशिष्टच्छात्राः कदाचिद् सामान्यच्छात्रेभ्यः ताभिः सम्पादितक्रियाभिः च आहताः भवन्ति, याभिः तेषां शिक्षायां नैकाः समस्याः आगच्छन्ति। एताभिः समस्याभिः विशिष्टच्छात्राणां शिक्षा समायोजनञ्च प्रभावितं भवति। यदा एते आहताः भवन्ति तदा एतेषु अवधानक्षमता-स्मृति-भाषाविकास-समायोजनक्षमता-व्यवहारकुशलता चेत्याद्याः समस्या अपि आगच्छन्ति। कदाचिद्दृष्टिपथि आगच्छति यत् विशिष्टच्छात्रेषु समस्याः अपि विविधाः भवन्ति। अनभिज्ञतायाः कारणेन बहवः जनाः एतेषां विषये ज्ञातुमसमर्थाः भवन्ति। एतेषां यदा आवश्यकतानां पूर्तिः न भवति तदा परिस्थितिभिस्सह एतेषां समायोजनम् अपि न भवति। असमायोजनेन एतेषां पुरस्तात् नैकाः समस्याः आगच्छन्ति। एतेषां समस्यानाम् आवश्यकतानाञ्च वर्णनमग्रे प्रस्तूयते-

**दृष्टिबाधिता-**

दृष्टिः मानवस्य अमूल्यनिधिः निर्विवादेन स्वीक्रियते। अधिकाः सूचनाः मस्तिष्कः दृष्ट्या एव प्राप्नोति। अतः दृष्टेः लघ्व्यपि अक्षमता स्वकीयमधिकं महत्त्वं धारयति। दृष्टिदोषः छात्रस्य मानसिक-शारीरिक-संवेगात्मक-शैक्षिकं-व्यावसायिकक्षेत्रेषु स्वकीयप्रभावं प्रतिष्ठापयति। दृष्टिबाधिता एका एतादृशी शारीरिकदिव्याङ्गता वर्तते या सरलतया ज्ञातुं शक्यते। आयुर्विज्ञाने दृष्टिबाधितायाः तात्पर्यमस्ति किमपि द्रष्टुमक्षमता इति।[1]

दृष्टिबाधिता द्विधा विभक्तुं शक्यते गहनदृष्टिबाधिता अल्पदृष्टिबाधिता चेति। कस्यश्चित् छात्रस्य गणना गहनदृष्टिबाधितायां तदैव भवति यदा तस्य अध्ययनं ब्रेललिप्या श्रव्यन्त्रैः च भवति। अल्पदृष्टिबाधितायां ते छात्राः आगच्छन्ति ये उपनेत्रं धृत्वा मुद्रितविषयवस्तु दृश्यशैक्षिकसामग्रीणाञ्च प्रयोगं कर्तुं शक्नुवन्ति। दृष्टिबाधितच्छात्राणां जीवने नैकाः समस्याः भवन्ति। यथा- व्यावहारिकसमस्याः, अधिगमस्य समस्याः, स्थानापन्नस्य समस्याः, समाजे समायोजनस्य समस्याः, जीवकोपार्जनस्य समस्याश्च। परञ्चात्र एतादृशां छात्राणां प्रमुखसमस्यानामेव वर्णनं शोधलेखेऽस्मिन् क्रमशः क्रियते-

1. बुद्धिलब्धिस्तरे न्यूनता (Poor Intelligence)
2. शैक्षिकमन्दता (Educationally Retarddation)
3. मन्दवाण्याः विकासः (Slow Speech Development)
4. सामाजिकसमायोजनस्य समस्याः (Problems Of SocialAdjustment)
5. सम्प्रत्ययात्मकक्षमता (ConceptualAbility)
6. गतिशीलता (Mobility)

उपर्युक्तसमस्यासु प्रमुखसमस्यानां संक्षिप्तवर्णनमत्र क्रमेण क्रियते-

**1. बुद्धिलब्धिस्तरे न्यूनता-**

विहिताध्ययनानामाधारेणात्र वक्तुं शक्यते यत् दृष्टिबाधितच्छात्राणां बुद्धिलब्धिः सामान्या उतो वा सामान्याद् न्यूना दृश्यते ज्ञायते च। एतदर्थं समुचितमवसरं प्राप्तुं वातावरणे समायोजनं च कर्तुमेते असमर्थाः भवन्ति। बुद्धिपरीक्षणे अपि एते उत्तमाङ्कान् नैव प्राप्नुवन्ति, यतोहि परीक्षायामस्यां ज्ञान-अनुभव-सूचनाधारिताः च प्रश्नाः भवन्ति। अतः एतेषां बुद्धिलब्धिस्तरे न्यूनता आगच्छति। व्यावहारिकदृष्ट्या अपि एतेषां कार्यशैली सामन्याद् न्यूना भवति।

---

1. विशिष्ट शिक्षा, पृष्ठ सं. 53. लवली प्रोफेशनल युनिवर्सिटि।

**2. शैक्षिकमन्दता-**

दृष्टिबाधितच्छात्राः यदा ब्रेललिप्याः प्रयोगं कुर्वन्ति तदापि एतेषां सामान्यच्छात्रेभ्यः शैक्षिकोपलब्धिः शैक्षिकनिष्पत्तिश्चापि न्यूना भवति। एतादृशाः छात्राः मन्दगत्या तथ्यानि सूचनाश्च प्राप्नुवन्ति। अस्य प्रमुखं कारणमिदं वर्तते यदेते दृष्टिबाधितायाः कारणेन अवलोकनम् अनुसरणञ्च नैव कर्तुं शक्नुवन्ति। अनुदेशनात्मकप्रक्रियायामपि एते सर्वैः सह सम्बन्धस्थापनाय असमर्थाः भवन्ति।

**3. मन्दवाण्याः विकासः-**

पूर्णरूपेण दृष्टिबाधितच्छात्राः वाण्याः कलाकौशलयोः अनुसरणं नैव कर्तुं शक्नुवन्ति। यत्तैः श्रुतं तेनाधारेण वाण्याः विकासः नैव सम्भवति। एतेषां भाषायाः विकासे मुख्याधारः सम्प्रेषणमेव भवति। दृष्टिबाधितच्छात्राणां भाषायाः अधिगमस्य विधिरपि भिन्नः भवति। विहितशोधाधारेणात्र स्पष्टः उल्लेखः पुस्तकेषु अन्तर्जालसामग्रीषुः च लभ्यते।

**4. सामाजिकसमायोजनस्य समस्याः-**

दृष्टिबाधितच्छात्राणां समायोजनं सामान्यच्छात्रेभ्यः अल्पमात्रमेव भवति। समाजस्य एका अवधारणा यत् विशिष्टच्छात्राः समाजे कुसमायोजिताः भवन्ति। दृष्टिबाधितच्छात्रेषु व्यक्तित्त्वसम्बन्धिताः समस्याः समाजस्य दृष्टिकोणेन व्यवहारेण च समुत्पन्नाः भवन्ति, येन एतेषु छात्रेषु सामाजिककौशलानां सम्पादने न्यूनता आगच्छति। समाजस्य दृष्टिबाधितच्छात्रान् प्रति उत्तमा दृष्टिः न भवति यतोहि ते समाजात् सहायतां वाञ्छन्ति। एतेषां व्यक्तिगताः सामाजिकश्च समस्याः भवन्ति। एतेन कारणेन एतेषु हीनभावनापि समुत्पन्ना भवति, समुत्पन्नायाः हीनभावनायाः कारणेन समाजे एते समायोजनं नैव कुर्वन्ति।

**5. सम्प्रत्ययात्मकक्षमता-**

दृष्टिबाधितच्छात्राणां सामान्यच्छात्राणाम् अपेक्षया सम्प्रत्ययात्मकक्षमताः दुर्बलाः भवन्ति। स्टेफेनग्रूबमहोदयाभ्यामियं परिभाषा उक्तविषये प्रस्तुता **"दृष्टिबाधितच्छात्राणां सामान्यच्छात्राणाञ्च सम्प्रत्ययात्मकक्षमतायां यदन्तरं दृश्यते तदन्तरं तेषां स्पर्शदृश्यानुभवानां कारणेनेव वर्त्तते।"** सामान्यच्छात्राः दृश्यानुभवानामाधारेणैव विभिन्नानां सम्प्रत्ययानां ग्रहणं कुर्वन्ति, अस्यापेक्षया दृष्टिबाधितच्छात्राः स्पर्शीयानुभवानामाधारेण विभिन्नसम्प्रत्ययान् गृह्णन्ति। स्पर्शे निर्भरता विश्वसनीयता च बालकस्य दृष्टिबाधितायाः मात्रायां निर्भरौ भवतः।

**6. गतिशीलता-**

गतिशीलता विशिष्टच्छात्रस्य स्वकीये वातावरणे समायोजनस्य एका महत्त्वपूर्णा क्षमता भवति। दृष्टिबाधितायाः कारणेन एतेषां गतिशीलता अधिका प्रभाविता भवति, अस्य फलस्वरूपमेव दृष्टिबाधितानां वातावरणे अन्तःक्रिया अपि प्रभाविता भवति। दृष्टिबाधितच्छात्राः एकस्मात् स्थानादपरं स्थानं गन्तुं स्मृतौ इन्द्रियेषु च आश्रिताः भवन्ति।

दृष्टिबाधितच्छात्राणाम् अध्ययने उतो जीवने याः समस्याः आगच्छन्ति तासां प्रमुखसमस्यानां वर्णनमत्र विधाय तेषामावश्यकताविषयिणीं चर्चां कुर्मः-

**आवश्यकताः**

आवश्यकताऽधीनमेतज्जीवनमिति सर्वैः अङ्गीक्रियते। प्रत्येकं मानवः स्वीये जीवने आवश्यकताः अनुभवति, ताश्चावश्यकताः तस्य जीवनस्य केनापि क्षेत्रेण सह सम्बद्धाः भवेयुः। तथैव एतेषां दृष्टिबाधितानाम् अपि जीवनस्य अध्यनेन सह च सम्बन्धिताः आवश्यकताः भवन्ति। दृष्टिबाधितच्छात्राः स्ववातावरणस्य सूचनाः दृष्ट्या एव प्राप्नुवन्ति। दृष्टेः न्यूनता कारणेन एतेषाम् अनुभवेष्वपि न्यूनता आगच्छति। अल्पैः अनुभवैः एतेषां जीवने समस्याः समागच्छन्ति। एतेन कारणेन एव सामान्यच्छात्राणामपेक्षया दृष्टिबाधितच्छात्राणाम् आवश्यकताः अधिकाः भवन्ति। अत्र संक्षेपेण प्रमुखानाम् आवश्यकतानां वर्णनं कुर्मः[1]-

1. शैक्षिकसुविधाः।
2. शैक्षिकनिरीक्षणम्।
3. विशिष्टाध्यापकः।
4. व्यावसायिकनिर्देशनम्।
5. भौतिकसाधनानि।
6. प्रशासनिकव्यवस्था।

**1. शैक्षिकसुविधाः-**

एतेभ्यः छात्रेभ्यः सामान्यच्छात्राणाम् अपेक्षया शिक्षां प्राप्तुम् अधिकाः सुविधाः भवेयुः। यथा ब्रेललिप्याः प्रयोगः, श्रवणकौशलं सुदृढीकर्तुम् उत्तमविधीनां चयनञ्चेति। ब्रेललिप्याः प्रशिक्षणम् एतेभ्यः कठिनं श्रमसाध्यञ्चास्ति। स्मृतौ आश्रितं भवति प्रशिक्षणमेतत्।

---

1. समावेशी शिक्षा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय।

अनया लिप्या एव दृष्टिबाधितच्छात्राः स्वशैक्षिकावश्यकतानां पूर्तिं कुर्वन्ति। एतेषां शिक्षायां सुविधादृष्ट्या ब्रेललिप्या सह अन्येषामपि सहायकयन्त्राणां प्रयोगं शिक्षकः कुर्यात्। विदुषां मतमस्ति यत् दृष्टिबाधितेभ्यः श्रवणकौशलस्य महत्त्वपूर्णं स्थानमस्ति, यतोहि एते सर्वाः सूचनाः श्रवणेन्द्रियैः एव प्राप्नुवन्ति। अतः एते ध्यानेन विषयस्य श्रवणं कुर्युः। श्रवणकौशलमिदं तेषु स्वतः एव विकसितः भवति। बहुधा एतेभ्यः श्रवणकौशलस्य प्रशिक्षणमपि प्रदीयते। एतेषां पाठ्यक्रमे श्रवणकौशलस्य प्रशिक्षणे च अधिका विभिन्नता भवति। विभिन्नतानां निवारणाय एतेषां शिक्षायां ध्वनिमुद्रणयन्त्राणां प्रयोगः क्रियते।

**2. शैक्षिकनिरीक्षणम्**-

शैक्षिकनिरीक्षणं स्थानीयं राजकीयं वा भवितुमर्हति। निरीक्षकः अत्र विशिष्टं ध्यानं दद्यात् यत् एतेषां शिक्षाव्यवस्था उत्तमा कथं भवेत्? एतेभ्यः शैक्षिकसुविधाः वर्धयितुं निरीक्षकः प्रयत्नं कुर्यात्।

**3. विशिष्टाध्यापकः**-

एतेषां शिक्षायां विशिष्टाध्यापकस्य महत्त्वपूर्णं स्थानं भवति। सः अध्यापकः एतेभ्यः छात्रेभ्यः औषधि-प्रकाश-शारीरिकसामग्री-शैक्षिकसामग्रीणां च प्रबन्धं कुर्यात्। पाठनाय यथोचितविधीनां प्रयोगं कुर्यात्। सः अध्यापकः मनोवैज्ञानिक-शैक्षिक-संवेगात्मककठिनतानां च ज्ञाता भवेत्। छात्रस्य वर्तमानभविष्ययोः समस्याः तस्य अध्यापकस्य मनसि भवेयुः। छात्राणां शैक्षिकं सामाजिकं व्यावसायिकञ्च समायोजनं कारयितुं सफलः भवेत्। यथा काले छात्राणाम् अभिभावकैः सह अध्यापकः सम्पर्कं कुर्यात्।

**4. व्यावसायिकनिर्देशनम्**-

दृष्टिबाधितानां शैक्षिकनिर्देशनं व्यावसायिकनिर्देशनं च परस्परं सम्बन्धितं भवेत्। सफलशैक्षिकनिर्देशनाय एतत् परमम् आवश्यकमस्ति यत् अध्यापकः छात्राणां व्यक्तित्वं सुष्ठुरूपेण ज्ञायेत।

**5. भौतिकसाधनानि**-

एतेषां विद्यालये उत कक्षायां विद्यालये प्रशासकेन सर्वेषां भौतिकसाधनानां व्यवस्था करणीया भवति। विद्यालयीयसाधनानि तेषाम् आवश्यकतानुगुणं प्रोक्तव्यानि। विद्यालये आसनव्यवस्था उत्तमा स्यात्। प्रकाशस्य व्यवस्था उत्तमा भवेत्। कर्मचारिणश्चापि उत्तमं व्यवहारं एतैः सह कुर्युः।

**6. प्रशासनिकव्यवस्था-**

एतादृशानां छात्राणाम् उचितसमायोजनाय प्रशासकः स्वीकारात्मकप्रयासं कुर्यात्। अस्मिन् कर्मणि उपयुक्तसंस्थाः शिक्षणसहायकयन्त्राणि सामाजिकचेतनाः च जागरणम्- आवश्यकतानां च पूर्तये सहयोगं कुर्युः।

**निष्कर्षः**

परिवर्तशीलोऽयं संसारः इति मत्वा एतेषां शिक्षाव्यवस्थायामपि परिवर्तनानि अपेक्षितानि सन्ति। विशिष्टच्छात्रेभ्यः विशिष्टविद्यालयाः बहुवर्षेभ्यः अध्यापनं कार्यञ्च कुर्वाणाः सन्ति। परञ्च आधुनिकशिक्षायाम् एतेभ्यः शिक्षकप्रशासकाभ्यां नवाचाराः प्रयुज्यन्ते। तेन दृष्टिबाधितच्छात्राः शिक्षायां रुचिं प्रदर्शयन्ति ज्ञानं च अर्जयन्ति। सम्प्रति विद्यालयप्रशासकेन एतेभ्यः शिक्षया सम्बन्धिताः सर्वाः व्यवस्थाः प्रदीयन्ते। एतैः प्रयासैः एतेषां मनसि विद्यमाना कुण्ठा अपि निर्गता। वयं यदा एतेषु ध्यानं दास्यामः तदा एते अस्माभिः सह समाजे अपि समायोजनं विधाय मुख्यधारायाम् आगन्तुमर्हन्ति। समाजस्य नेतृत्वञ्च निश्चयेन कर्तुं शक्नुवन्ति।

**सन्दर्भग्रन्थः-**


1. सिंह डॉ. आज्ञा जीत- समावेशी शिक्षा के आधार, Twenty First Century Publication, Patiala, Punjab, First Edition - 2014.
2. सिंह मदन- समावेशी शिक्षा, आर.लाल.बुक डिपो, मेरठ, संस्करण- 2016.
3. शर्मा अल्का- समावेशी शिक्षा, अमित प्रकाशन, जालन्धर, संस्कर- 2012.
4. बिष्ट डॉ. आभा रानी- विशिष्ट बालक, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2, दशम संशोधित संस्करण- 2010.
5. यादव एच एस, यादव सुधा, समावेशी शिक्षा, टंडन पब्लिकेशन्स, 2015 नवीन संस्करण
6. Shodhganga.inflibnet.ac.in
7. Uprtou.ac.in
8. Uphwd.gov.in
9. Pib.gov.in


✦✦✦

# जनसङ्ख्याविमर्शः

डॉ. प्रमोदशुक्लः*

अधुना महान्तः विचारकाः अपि वदन्तः सन्ति यत् भारतसर्वकारेण राष्ट्रियशिक्षानीतेः पूर्वं राष्ट्रियजनसङ्ख्यानीतिः आनेतव्या। येन जनसङ्ख्यानियन्त्रणं सम्भवेत्। यावत् जनसङ्ख्यासमस्या नापगच्छति तावत् भारतस्य भाग्योदयः न भवितुमर्हति। भारतस्य अशीतिप्रतिशतं समस्यानां मूलं कारणमस्ति भ्रष्टाचारः जनसङ्ख्याविस्फोटश्च। एतयोः द्वयोः एव अन्तर्गताः अशिक्षा, वृत्तिहीनता, महार्घता, मतान्धता, राष्ट्रविरोधः, हिन्दुसंस्कृति-विरोधः चेत्यादिसमस्याः परिशीलनीयाः।

जुलैमासस्य 11 दिनाङ्के विश्वजनसङ्ख्यादिवसः परिपाल्यते। अस्य दिवसस्य घोषणा 11/7/1989 तमे बभूव। संयुक्तराष्ट्रविकासकार्यक्रमस्य राजकीयपरिषद्द्वारा एषः दिवसः निर्धारितः। अस्य दिवसस्य उद्देश्यमस्ति जनसङ्ख्यासम्बद्धसमस्यासु वैश्विक-चेतनायाः जागरणम्।

**जनसङ्ख्याशिक्षायाः सम्प्रत्ययः/अभिप्रायः।**[1]

1. जनसङ्ख्याशिक्षा नाम परिवारे समाजे देशे संसारे च मानवसङ्ख्यास्थितेः अध्ययनम्।
2. मानवीयशक्तिसम्बद्धा शिक्षा अथवा मानवीयसंसाधनसम्बद्धा शिक्षा जनसङ्ख्या-शिक्षा।
3. जनसङ्ख्याशिक्षया बालक-युवक-प्रौढानां जनसङ्ख्यावृद्धेः कारणानां दुष्प्रभावाणां च ज्ञानं भवति।
4. जनसङ्ख्याशिक्षायाः सम्बन्धः मानवसङ्ख्यायाः आकारः, वृद्धिह्रासौ, संरचना, लैङ्गिकानुपातः, वैवाहिकायुः चेत्यादीनां ज्ञानेन सहास्ति।

---

* अतिथिशिक्षकः, के.सं.वि.वि. श्रीरणवीरपरिसरः, जम्मूः

1. सम्प्रत्ययः, अवधारणा, संकल्पना, प्रत्ययः, प्रकृतिः, व्यापकार्थः च इत्यादीनि पदानि समानानि भवन्ति। अभिप्रायः, तात्पर्यम्, अर्थः, सङ्कुचितार्थः च इत्यादीनि पदानि समानानि भवन्ति। एतानि सम्प्रत्यये अन्तर्भवन्ति।

5. जनसङ्ख्याशिक्षायां परिवारनियोजनं, यौनशिक्षा, चेत्युभे न भवतः।

6. परिवारनियोजनं नाम सीमितपरिवाराय क्रियमाणः कार्यक्रमः। एषः कार्यक्रमः जनसङ्ख्याशिक्षायाः अनन्तरं भवति।

7. यौनशिक्षायां किशोरबालकबालिकाभ्यः यौनशक्तेः ज्ञानं प्रदीयते। तथा च यौनशक्तेः दुरुपयोगैः जायमानानां काठिन्यानां ज्ञानं प्रदीयते।

**परिभाषाः**

1. जनसङ्ख्याशिक्षा कश्चन शैक्षिककार्यक्रमः, यस्मिन् परिवारः, समुदायः, राष्ट्रम्, सर्वकारः चेत्यादीनां सन्दर्भे जनसङ्ख्यायाः स्थितिः स्पष्टीक्रियते। येन छात्रेषु तां स्थितिं प्रति तर्कसहितं दायित्वसहितं च अभिवृत्तेः व्यवहारस्य च विकासः भवति। – UNESCO (ऐक्य-राज्य-शैक्षिक-वैज्ञानिक-सांस्कृतिकसंस्था)[1]

2. जनसङ्ख्याशिक्षा काचित् प्रक्रिया अस्ति यया जनसङ्ख्यापरिस्थितौ समुचितज्ञानस्य, दृष्टिकोणस्य, व्यवहारस्य जागृतेः च विकासः करणीयः। येन व्यक्तेः, कुटुम्बस्य, समाजस्य, राष्ट्रस्य विश्वस्य च जीवनस्तरः उन्नतः स्यात्। – जनसङ्ख्या-शिक्षागोष्ठी, 1972 फिलीप्पींस्[2]

3. जनसङ्ख्याशिक्षा सर्वप्रथमं परिवारनियोजनाय प्रेरयति। पुनः जनसङ्ख्यासमस्याः, तस्याः सम्भावितपरिणामानां सम्भावितविकल्पानां च ज्ञानं प्रददाति। – टेलरः

4. जनसङ्ख्याशिक्षायाः प्रयोजनं केवलं जनसङ्ख्यायाः न्यूनीकरणं नास्ति अपितु जनसङ्ख्यायाः गुणात्मकदृष्ट्या सुदृढीकरणम् अस्ति। अनेन प्रकारेण एषः कार्यक्रमः मानवीयस्रोतसां विकासाय कार्यक्रमः अस्ति। जनसङ्ख्याशिक्षा अपेक्षितमूल्यस्य अभिवृत्तेः च विकासं करोति। – प्रो. वी. के. आर. वी. रावः

5. जनसङ्ख्याशिक्षा जनसङ्ख्यासम्बद्धज्ञानं प्रति बोधः जागरुकता वास्ति। –बर्लसनः

---

1. Population Education as defined by UNESCO is an educational programme which provides for a study of the population situation of the family, community, nation and the world, with the purpose of developing in the students rational and responsible attitudes and behaviour towards that situation.
2. Population Education is the process of developing population awareness as well as rational altitude and behavior towarods the situation for the attainment of quality of life, for the individual, the family, the community, the nation and the world.

**जनसङ्ख्याशिक्षायाः आवश्यकता**

1. विकासं प्रति गतिशीलं राष्ट्रं कर्तुं जनसङ्ख्याशिक्षायाः आवश्यकता अस्ति।
2. स्वस्थ-कर्मठ-ज्ञानशीलजनानां निर्माणाय अस्याः शिक्षायाः आवश्यकता अस्ति।
3. अद्यतनीये जनसङ्ख्याविस्फोटपरिप्रेक्ष्ये जीवनस्तरम् उन्नतं कर्तुं जनसङ्ख्या-शिक्षायाः आवश्यकता अस्ति।
4. जीवने गुणवत्तां वर्धनाय एषा शिक्षा आवश्यकी।
5. उचितावाससमस्यायाः मानसिकसामाजिकाशान्तेश्च कारणानि दूरीकर्तुं एषा शिक्षा परमावश्यकी।
6. जनसङ्ख्याविस्फोटं नियन्त्रयितुं मनोवृत्तिनां च नियन्त्रणाय।
7. भौतिकसंसाधन-जनसङ्ख्ययोः मध्ये असन्तोलनं न्यूनं कर्तुम्।
8. प्रचलितानां कुप्रथानां मान्यतानां च अपनयनाय।
9. सर्वेभ्यः भोजनवस्त्रावासान् प्रदातुम्।
10. निर्धनरेखायाः पारं गन्तुम्।
11. स्वराष्ट्रं सुन्दरं, स्वच्छं सुसज्जितं च कर्तुम्।
12. स्वप्रजननव्यवहारे उत्तरदायित्वभावनया निर्णयग्रहणाय अथवा परिवारनियोजनाय जनसङ्ख्याशिक्षा आवश्यकी अस्ति।
13. छात्राः राष्ट्रियाभिवृद्धिलक्ष्याणि जानीयुः, अपि च व्यक्तिगतान् अभिप्रायान् परित्यज्य सामाजिकपरिणामाय साहाय्यं कुर्युः।
14. अद्यतनाः छात्राः श्वस्तनपितरः भविष्यन्ति। अतः भविष्यत्कालिकानां पितॄणां मातॄणां च जनसङ्ख्यासमस्यायाः उपरि अवधानं भवेत्। तथा च ते आदर्शदाम्पत्यजीवने परिवारनियोजनस्य सूत्राणि पद्धतीः च आचरेयुः इति एतदर्थं एषा जनसङ्ख्याशिक्षा आवश्यकी।

जनसङ्ख्या न केवलं राष्ट्रियं विकासं प्रभावयति अपितु समाजस्य प्रत्येकं पक्षान् प्रभावयति। समाजस्य विविधानाम् आयुसमूहानां जनसङ्ख्यावृद्धिमूल्यं देशस्य आर्थिकविकासस्य प्रभावि साधनम् अस्ति। विश्वस्य अनेकानि राष्ट्राणि प्रमाणानि सन्ति येषां जनसङ्ख्या नियन्त्रितरूपेण समवर्धत। तेषां राष्ट्रियविकासधारायाम् अबाधगत्या परिष्कारः समभवत्। अथ अस्माकं राष्ट्रं तु जनसङ्ख्याविस्फोटस्य स्थितौ अस्ति। तीव्रगत्या वर्धमाना जनसङ्ख्या राष्ट्रिय-आयव्ययोः असन्तोलं प्रादुर्भावयत्। तथा च

अनेकाः सामाजिकाः समस्याः उत्पन्नाः सन्ति। अद्य जनसङ्ख्या काचित् उपहुतिः जाता अस्ति।

इत्थं जनसङ्ख्यावृद्धिः अनेकक्षेत्रेषु प्रगतेः मुख्यावरोधकरूपेण अस्ति। शिक्षा

**जनसङ्ख्याशिक्षायाः महत्त्वम्/लाभः**

1. जनसङ्ख्याशिक्षा प्रजानां कृते आहारः, आवासः, शिक्षा चेत्यादीनां विषये चिन्तनाय छात्रान् प्रेरयति।
2. प्रजाः स्थानान्तरं गच्छन्ति चेत् तस्य प्रभावस्य अध्ययनाय जनसङ्ख्याशिक्षा एव आधारः।
3. जनसङ्ख्याशिक्षा जनसङ्ख्यावृद्धेः प्रभावः व्यक्तौ, परिवारे समाजे, राष्ट्रे, संसारे च कथं भवति इति अध्ययनस्य अवसरं प्रददाति।
4. जनसङ्ख्याशिक्षया जनसङ्ख्यायाः वृद्धिह्रासयोः कारणानां तस्याः सामाजिक-आर्थिक-राजनैतिक-पर्यावरणस्थितिषु जायमानस्य प्रभावस्य ज्ञानं क्रियते।
5. जनसङ्ख्याशिक्षा बालकेषु जनसङ्ख्यावृद्धिं प्रति सजगतां समुचितदृष्टिकोणं च विकासयितुं प्रदीयते।
6. जनसङ्ख्याशिक्षा स्वस्य, परिवारस्य समाजस्य च उपकारं करोति।
7. जनसङ्ख्यावृद्धिकारणतः स्वजीवने समाजे च संभविष्यमाणानां समस्यानां ज्ञानस्य सामर्थ्यम् आयाति जनसङ्ख्याशिक्षया।
8. जनसङ्ख्याशिक्षा विवाहादिप्रसङ्गेषु समुचितायुषः चिन्तनाय प्रेरयति।
9. जनसङ्ख्याशिक्षया कुटुम्बसंक्षेपस्य विषये ज्ञानं भवति।
10. जनसङ्ख्याशिक्षया समयानुरूपः मानवसंसाधनानां विकासः भवति।
11. प्रभाविनागरिकतायाः सज्जतायै जनसङ्ख्याशिक्षायाः महत्त्वम् अस्ति।

**प्राचीनभारते जनसङ्ख्याचेतना**

भारते जनगणनायाः उल्लेखः कौटिल्यस्य अर्थशास्त्रे प्राप्यते। तत्र तत्कालीनराज्यस्य नीतीनां करग्रहणसिद्धान्तानां च निर्धारणाय जनगणनाप्रदत्तानां एकत्रीकरणस्य वर्णनं कृतमस्ति। जनगणनायां केवलं व्यक्तीनां गणना न भवति, प्रत्युत कस्यचित् क्षेत्रस्य राष्ट्रस्य वा नागरिकाणां सङ्ख्या, तेषां सामाजिकस्थित्या सह सम्बद्धानां सूचनानाम् एकत्रीकरणं भवति। तासां सूचनानां सम्पादनं प्रकाशनं चापि भवति।

भारते प्रथमा जनगणना 1881 तमे ख्रिष्टाब्दे अभवत्। ततः दशवर्षाणामनन्तरं जनगणना प्रारब्धा। स्वतन्त्रभारतस्य जनगणना 1951 तमे ख्रिष्टाब्दे अभवत्। ततः पूर्वं संसारे राजनीतेः केन्द्रस्थाने भारतम्, यूनानदेशः, रोमदेशश्चासन्। प्राचीनभारते आर्यजनाः विविधजातिव्यवस्थासु कुरुः, यदुः, चन्द्रादिवंशविभागेषु च विभक्ताः आसन्। राजा च तासां सर्वासां जातीनां विवरणं जानाति स्म। सहैव राज्ये कस्य समीपे कियत् पशुधनं गोगजाश्वधनानि च सन्तीति विवरणपञ्जिकां राजा स्थापयति स्म।

वैदिककाले अपि जनसङ्ख्यागणना भवति स्म। महाभारतकाले अपि कौरवाः पाण्डवाश्च स्वसैन्यदलानां गणनां कृत्वैव स्वबलाकलनं युद्धायोजनं च कुर्वन्ति स्म। तदानीं सेनायाः गणना अक्षौहिणीति परिमाणेन भवति स्म। सर्वेऽपि राजानः स्वराज्यस्य सीमाक्षेत्रस्य विवरणं अपि च जनतानां च विवरणं संरक्षन्ति स्म।

महतः शासकस्य विक्रमादितस्य शासनकाले राज्यस्य प्रत्येकं परिवारस्य सदस्यसङ्ख्यानां तेषां कार्याणां च संख्यानं संरक्ष्यते स्म। तत्र पशुधनस्य शस्यानाम् अन्यसम्पत्तीनां च विवरणं भवति स्म। विक्रमादित्यस्य शैलीं रोमनजनाः अपि अनुकुर्वन्ति स्म।

## अनुशीलितानि सूत्राणि ग्रन्थाः च


1. https://gurunitesh.blogspot.com/2021/05/Population. education.html
2. https://e-gyan-vigyan.com/janasankhya-shiksha-ka-arth/
3. https://www.youtube.com/watch?v=c1cBIuT7aWc
4. https://www.everyday41.com/2020/05/janasankhya -shiksha-arth.html
5. https://hindiamrit.com/jansankhya-shiksha-ka-arth-avm- paribhasha-uddeshya-mahatv/
6. http://hindi.webdunia.com/sanatan-dharma-history/ census-in-ancient-idia
7. https://www.dhyeyaias.com/population-policy-of-india
8. www.youtube/EconomicFriend/जनसंख्या वृद्धि को रोकने के उपाय

9. www.hindivyakran.com/jansankha-ki-gunvatta

10. श्रीवास्तव, डी. एन, जनसंख्या शिक्षा, अग्रवाल पब्लिकेशंस, आगरा 2013-14

11. सिडाना, अशोक कुमार-सम्पादन। सिडाना किरन, डॉ. सन्ध्या शर्मा, श्रीमती अल्का पारिक-लेखक। जनससंख्या शिक्षा शिक्षण, शिक्षा प्रकाशन, जयपुर

12. साम्बशिवमूर्तिः, कम्भम्पाटि जनसंख्याशिक्षा, महालक्ष्मीप्रकाशनम्, 2003

✦✦✦

# टालेमी-केप्लर्महोदयाभ्यां प्रतिपादिताः ग्रहाणां गतिविषयकाः सिद्धान्ताः

**गिरीशभट्टः बि***

**दिनेश मोहन जोशी****

**सारांशः**-पारम्परिकक्रमेण ये ज्यौतिषशास्त्रस्य अध्ययनं कुर्वन्ति तेषु अधिकानां छात्राणां कृते पाश्चात्त्यखगोलशास्त्रस्य ज्ञानं किञ्चित् न्यूनमस्ति। यतः तेषां गतिःपाश्चात्त्यखगोलशास्त्रे पाश्चात्त्यगणितशास्त्रे च किञ्चित् अल्पीयसी वर्तते इति वयं जानीमः। अतः पारम्परिकक्रमेण ये ज्यौतिषशास्त्रस्याध्ययनं कुर्वन्ति तेषु अधिकतमाः छात्राः प्राचीनार्वाचीनज्योतिर्विज्ञानयोः तुलनां कर्तुं समर्थाः न भवन्ति। अस्य शोधपत्रस्य मुख्योद्देश्यम् अस्ति पाश्चात्त्यखगोलशास्त्रस्य कतिपयानां महत्त्वपूर्णविषयाणां सङ्क्षेपेण प्रस्तुतीकरणम्। येन पारम्परिकक्रमेण ज्यौतिषशास्त्रस्य अध्ययनरतानां छात्राणां कृते पाश्चात्त्यखगोलशास्त्रस्य प्रमुखसिद्धान्तानां परिचयो भवति। अस्मिन् शोधपत्रे पाश्चात्त्यज्योतिर्विद्द्वयां टालेमी-केप्लर्महोदयाभ्यां प्रतिपादिताः ग्रहाणां गतिविषयकसिद्धान्ताः प्रतिपादिताः।

**टालेमीमहोदयस्य भूकेन्द्रिकसिद्धान्तः ( Geo-centric theory of Ptolemy )-**

यूरोपीयदेशेषु ग्रहाणां गतिविषये आधुनिकसिद्धान्तस्य आविष्कारतः पूर्वम् अनेके सिद्धान्ताः काले काले प्रचलिता आसन्। ग्रहाः खगोले निजगत्या चलन्ति। (नक्षत्राणि केवलं खगोलेन सह चलन्ति, खगोलश्च पूर्वतः पश्चिमं प्रति गच्छति।) एवं प्रत्यक्षेण यद् दृश्यते तदेव वास्तवमिति ते मन्यमाना आसन्। परं यदि भूकेन्द्रिकवृत्तेषु ग्रहाणां भ्रमणं स्वीकृतं स्यात्तर्हि तेषां वक्रगतिः अव्याख्याता भवेत्। अत एव विभिन्नज्योतिर्विद्भिः विभिन्नसिद्धान्तैः ग्रहाणां गतिः व्याख्याता। तेषु सर्वेष्वपि भूकेन्द्रिकसिद्धान्तेषु 'टालेमी' महोदयस्य भूकेन्द्रिकसिद्धान्तः अतिप्रसिद्धः आसीत्।

---

* सिद्धान्तज्यौतिषशास्त्रे विद्यावारिधि (Ph-D)-शोधच्छात्त्रः राष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, तिरुपतिः

** मानविकी एवं समाजविज्ञानविभागः, भारतीयप्रौद्योगिकीसंस्थानम्, मुम्बई

'क्लाडियस् टालेमी' महोदयस्य कालः द्वितीयक्रिस्तशताब्दः। सः कश्चन ग्रीको-ईजिप्षियन् गणितज्ञः, खगोलशास्त्रज्ञः, भूगोलशास्त्रज्ञः, फलितज्यौतिषिकः, कविश्च आसीत्। अस्य जीवितकालः क्रि.श. 100 तः 170 इत्यनुमितम्। सः आफ्रिकाखण्डस्य ईजिप्त् देशस्य अलेक्साण्ड्रिया नामके समुद्रतीरप्रदेशे स्वजीवनं यापितवान् इति विदुषां मतम्। तस्य जीवितस्य विषये अधिकानि विवरणानि नोपलभ्यन्ते। क्लाडियस् इति तस्य नामत एव सः रोमन् नृपाणां प्रशासनं यदा ईजिप्त् देशे आसीत् तदा तस्य कालः इति अवगम्यते। टालेमीयस् इतीदं ग्रीक् पौराणिकग्रन्थेषु दृश्यमानं नाम। तस्मादेव पर्षियन् खगोलशास्त्रज्ञः 'अबु मा षर्' टालेमी ईजिप्त् राजकुटुम्बीयः इत्यनुमानं कृतवान्। चतुर्दशक्रिस्तशताब्दस्य खगोलशास्त्रज्ञः 'थियोडर् मिलिटोयिटस्' टालेमीमहोदयस्य जन्मस्थलं थिबेड् प्रदेशस्य टालेमीयस् हेर्मोवो इति अनुमितवान्। टालेमीमहोदयस्य नैके ग्रन्थाः सन्ति-

1. 'अल्माजेस्ट्' 'हो मेगास् आस्ट्रोनोमस्' अथवा 'दि ग्रेट् अस्ट्रानोमर्' इति इति प्रसिद्धः 'म्याथमेटिक् सैन्ट्याक्सिस् (दि म्याथेम्याटिकल् सिन्थेटिक् ट्रियटैस्)' नामकः ग्रन्थः खगोलशास्त्रीयः ग्रन्थः।
2. जियाग्रफि' इति भूगोलशास्त्रसम्बद्धः ग्रन्थः।
3. 'अपोटोलेस्माटिका' इति फलितज्यौतिषग्रन्थः।

'अलेक्साण्ड्रिया' समीपस्थस्य 'क्यानोपेस्' इति ग्रामे टालेमीमहोदयस्य वेधशाला (Obsorvatory) आसीत्। तस्यां वेधशालायां सः खगोलवीक्षणं कृत्वा खगोलशास्त्रीय-संशोधनं कृतवान् इति ज्ञायते।

तस्य 'अल्मोजेस्ट्' इति भूकेन्द्रिकसौरव्यूहव्यवस्थाप्रतिपादकः ग्रन्थे प्रतिपादितः सिद्धान्तः खगोलशास्त्रे 1400 वर्षपर्यन्तं (कोपर्निकस् महोदयेन यदा सौरकेन्द्रसिद्धान्तः प्रतिपादितस्तावत्पर्यन्तं) सर्वैरपि उररीकृत आसीत्। अस्य पुस्तकस्य मूलनाम 'म्यामेटिकल् सिन्थेटिक् ट्रियटैस्' अथवा 'म्याथेम्याटिकल् सैन्ट्याक्सिस्' इति। सः ग्रन्थः यदा 1175 तमे क्रिस्ताब्दे जेराल्ड् महोदयेन अरेबिक् भाषां प्रति अनूदितः तदा सः ग्रन्थः 'अल्मोजेस्ट्' इति प्रसिद्धः जातः। 'अल्मोजेस्ट्' नाम 'दि ग्रेटेस्ट्' (श्रेष्ठः) इत्यर्थः ततः परं सः ग्रन्थः अल्मोजेस्ट् इत्येव प्रथितः सर्वैः। सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तप्रतिपादकः कोपर्निकस् महोदयोऽपि टालेमीमहोदयस्य अल्मोजेस्ट् ग्रन्थस्य बहून् अशान् पुरस्कृतवान्। टालेमीमहोदयस्य अल्मोजेस्ट् ग्रन्थः एव कोपर्निकस् महोदयस्य सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तप्रतिपादने हेतुः अभवत्। (यदि टालेमीमहोदयेन अल्मोजेस्ट् ग्रन्थे भूकेन्द्रसिद्धान्तः न प्रतिपादितस्तर्हि कोपर्निकस् महोदयेन सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तप्रतिपादने प्रेरणा न अभविष्यत्।) अस्मिन् अल्मोजेस्ट्

ग्रन्थे सन्ति त्रयोदश विभागाः। तान् त्रयोदशान् विभागान् क्रमेण 'बुक्1, बुक्2, बुक्3. .....' इत्येव कथयन्ति। ते त्रयोदश अध्यायाः इत्थं सन्ति-

1. भूकेन्द्रिकपरिकल्पनायाः अवलोकनम्।
2. गोलाः।
3. सूर्यस्य चलनम्।
4. चन्द्रस्य चलनम्।
5. चान्द्रमाननियमाः-चन्द्रलम्बनम्, चन्द्रोच्चस्य चलनम्, सूर्यात् चन्द्राच्च भूमेः दूरत्वम्, सूर्यचन्द्रपृथ्वीनां गात्राणामनुपातः।
6. ग्रहणानि।
7. स्थिरनक्षत्राणि, तेषां चलनञ्च।
8. स्थिरनक्षत्राणां सारिणी (पट्टिका)।
9. ग्रहाणां चलनम् : कुजः।
10. ग्रहाणां चलनम् : शुक्रकुजौ।
11. ग्रहाणां चलनम् : गुरुशनी।
12. ग्रहाणां वक्रगतिः।
13. ग्रहाणां रेखांशाः (Planatory Lattittude)

टालेमीमहोदयः अल्मोजेस्ट् ग्रन्थे, "सर्वेऽपि आकाशकायाः गोलाकाराः भवन्ति, भूरपि गोलाकारा एव भवति; विश्वस्य केन्द्रभागे इयं भूस्तिष्ठति। यदि तथा न भवति तर्हि भूः स्वकीयाक्षाद्बहिः ध्रुवाभ्यां समदूरे भवेदथवा ध्रुवाभ्यां समीपे भवेदथवा स्वकीयाक्षेऽपि न भवेत्, ध्रुवाभ्यां (दक्षिणोत्तरध्रुवाभ्यां) समान-दूरेऽपि न भवेत्। किञ्च भूमिः तथा न भवति। यतो हि एषु स्थानेषु भूमिं कल्प्य खगोलीयघटनानां समर्पकं विवरणं दातुं न शक्यते। अतः भूः अवश्यं विश्वस्य केन्द्रभागे एव भवति" इति भूकेन्द्रिकवादं दृढतया समर्थितवान्।

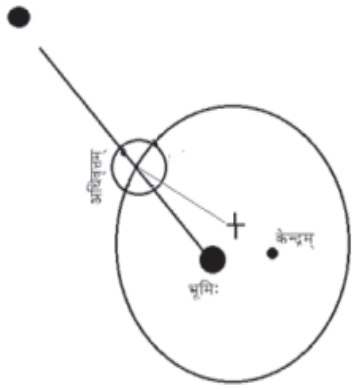

टालेमीमहोदयस्य ग्रहाणां चलनस्य सिद्धान्तः

विविधैः आधारैः भूमेः गोलाकारत्वं प्रतिपादितवान्।

भूमिः केन्द्रे भवति, तं परितः यथाक्रमं चन्द्रकक्षा, चन्द्रकक्षातः बहिः बुधकक्षा, तस्माद्बहिः शुक्रकक्षा, तस्माद्बहिः सूर्यकक्षा, तस्माद्बहिः कुजकक्षा (मङ्गलग्रहकक्षा), तस्माद्बहिः गुरुकक्षा, तस्माद् बहिः शनिकक्षा, तस्माद् बहिः नक्षत्रकक्षा च भवति। एषा टालेमीमहोदयेन कल्पिता सौरमण्डलव्यवस्था।

विश्वस्य केन्द्रभागे विद्यमाना भूः स्थिरा भवति, तं परितः ग्रहाः (ससूर्याः) वृत्ताकारमार्गेषु परिक्रमणं कुर्वन्ति। तथा मध्यवृत्ताख्येषु (अधिवृत्ताख्येषु) लघुवृत्तेष्वपि ग्रहाः परिक्रमणं कुर्वन्ति। भूः विश्वस्य स्थिरनक्षत्रेभ्यः निखरनिष्पत्तिदूरे भवति। भूमेः सर्वेभ्यः भागेभ्यः तेषां स्थिरनक्षत्राणां रैखिकदूरस्तथा कोणीयदूरः समान एव भवति। भूमेः यस्मिन् कस्मिन्नपि भागे स्थापितं सौरघटिकायन्त्रं तथा गोलानां केन्द्रं भूमेः यस्मिन् कस्मिन्नपि भागे स्थापितञ्चेदपि छायानिर्माणार्थं छायाभ्रमणस्यावलोकनार्थञ्च भूकेन्द्रवदेव वर्तयति। भूः विश्वस्य नक्षत्रेभ्यः स्थिरनिष्पन्नबिन्दौ भवति चेदेव एतत् सम्भवति। एषा भूः स्थिरा एव भवति। सा भूः अक्षभ्रमणं वा अन्यकायं परितः भ्रमणं वा न करोति। अत एव सर्वाण्यपि वस्तूनि भूमेः दिशि चलन्ति। यदि भूः चलनशीला भवति तर्हि अस्माभिः भूमौ स्थातुं तथा आकाशप्रक्षिप्तवस्तुनः भूमौ पतनं वा असम्भव एव आसीत्। यतो हि आकाशप्रक्षिप्तवस्तुनः पुनः भूमौ पतनात्पूर्वमेव भूः अन्यत्र चलित अभविष्यत्। अतः तद्वस्तु अन्यत्र पतेत् यदि भूः चलनशीला तर्हि। भूः स्थिरा इति हेतोरेव मेघाः भूमौ वृष्टिं पातयन्ति। यदि भूश्चला तर्हि चलनशीलभूमितः मेघाः दूरे प्रक्षिप्ता अभविष्यन्" इत्येतैरंशैः टालेमीमहोदयः भूस्थिरवादं भूकेन्द्रिकवादं च प्रतिपादितवान् स्वकीये अल्मोजेस्ट् ग्रन्थे।

टालेमीमहोदयस्य काले सूर्यः, चन्द्रः, भूमिः, शुक्रः, कुजः, शनिः, केवलनेत्राभ्यां दृश्यमानानि नक्षत्राणि एतावदेव विश्वस्य व्याप्तिर्ज्ञाता आसीत्। विश्वस्य केन्द्रे भूः स्थिरतया तिष्ठतीत्येव कल्पना आसीत्। ग्रहाणां चलनस्य निरूपणार्थं टालेमीमहोदयः विशेषतया अधिवृत्तान् (मध्यवृत्तान्) प्रकल्पितवान्। सूर्यचन्द्रयोः सापेक्षचलनं नक्षत्राणां चलनस्यापेक्षया बहुमन्दं भवति। ग्रहाणाम् अक्षाः खगोलीयाक्षात् नामिता भवन्तीत्यनेनांशेन टालेमीमहोदयः ग्रहाणां वार्षिकचलनं निरूपितवान्। ग्रहाणां चलनवृत्तस्योपरि अधिवृत्तं

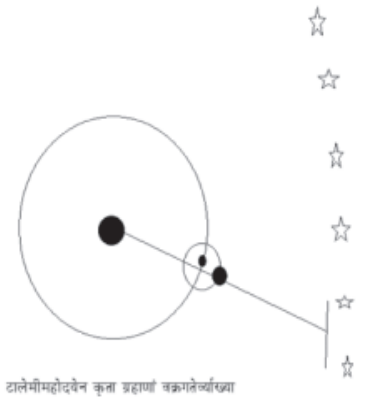

टालेमीमहोदयेन कृता ग्रहाणां वक्रगतेर्व्याख्या

प्रकल्प्य ग्रहाणां वक्रगतेः व्याख्यां दत्तवान् टालेमीमहोदयः। भूमि-सूर्ययोः संलग्नाया सरलरेखाया उपरि बुधशुक्रयोः अधिवृत्ते भवत इति हेतोः तौ बुधशुक्रौ प्रातःकाले सायङ्काले च दृश्येते इति प्रतिपादितवान्।

नक्षत्राणां भास्वरत्वकोटिमाधारीकृत्य तेषां वर्गीकरणं टालेमीमहोदयेन कृतम्। प्रथमस्तरीयनक्षत्रेभ्यः द्वितीयस्तरीयनक्षत्राणां 2.5 गुणितम् अधिकं भवतीति सः ऊहां कृतवान्। तथापि तेन क्रि.पू. 190 तः 120 पर्यन्तं जीवितेन हिपार्कस् महोदयेन निर्मितां नक्षत्रकान्तिमानपट्टिकाम् आधारीकृत्यैव नक्षत्राणां वर्गीकरणं कृतम्। आहत्य 1028 नक्षत्राणां पट्टिका टालेमीमहोदयेन दत्ता। तानि सर्वाणि नक्षत्राणि 1028 नक्षत्रपुञ्जेषु विकिर्णानि भवन्तीति प्रतिपादितवान्।

टालेमीमहोदयस्य मतं 140 तमे क्रिस्ताब्दे सर्वप्रथमं प्रचलितमभवत्। कोपर्निकस् महोदयेन सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तप्रतिपादनपर्यन्तं टालेमीमहोदयस्य भूकेन्द्रसिद्धान्त एव सर्वैरपि उररीकृता आसीत्। किन्तु यदा निकोलस् कोपर्निकस् महोदयः सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तः प्रतिपादितवान् तदा टालेमीसिद्धान्तः अधरीभूत अभवत्।

यद्यपि टालेमीमहोदयस्य भूकेन्द्रिकसिद्धान्तः दोषयुक्तस्तथापि तेन अल्मोजेस्ट् ग्रन्थे प्रतिपादिताः अन्ये खगोलशास्त्रसम्बद्धाः श्लाघनार्हा एव भवन्ति। स्वयं कोपर्निकस्महोदयः अपि टालेमीमहोदयस्य भूकेन्द्रसिद्धान्तं खण्डितवानपि टालेमीमहोदयस्य अल्मोजेस्ट् ग्रन्थे टालेमीमहोदयेन प्रतिपादितान् बहून् अशांन् स्वीकृतवान्।

## केप्लर् महोदयस्य ग्रहाणां गतिविषयकाः त्रयः सिद्धान्ताः[1]

टालेमीमहोदयस्य अनन्तरं पोलेण्ड्देशस्य खगोलशास्त्रज्ञः निकोलस् कोपर्निकस्महोदयः सूर्यकेन्द्रिकसिद्धान्तं प्रतिपादितवन्। निकोलस् कोपर्निकस् महोदयस्यानन्तरं टेलिस्कोप् यन्त्रस्य अन्वेषकः 'गोलिलियो गेललि' महोदयः (क्रि.श. 1564 तः 1642) कोपर्निकस् महोदयस्य सूर्यकेन्द्रिकसिद्धान्तं समर्थितवान्। तस्मिन् समये सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तस्य प्रचारस्य कारणात् तेन सम्प्रदायवादिभिः साकं वैरं सम्मुखीकृतमासीत्। यतो हि तस्मिन् समये भूः अचलेति सिद्धान्तः सम्प्रदायबद्धः

1. अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्; अध्यायः 6; पुटं 125, 126

आसीत्। क्रैस्तधर्माधिकारिभिः (पोप्) सैव सिद्धान्तः अङ्गीकृत आसीत्। अत एव सूर्यकेन्द्रिकसिद्धान्तस्य प्रचारात् गोलिलियो अपराधी इति परिगणित आसीत्। चर्च धर्माधिकारी (पोपः) तेन कारणेन गेलिलियोमहोदयम् आजीवनं कारागृहे निक्षिप्तवान् आसीत्। कारागृहे एव गेलिलियो चलनशास्त्रस्य विषये नूतनं पुस्तकं रचयामास। गेलिलियोमहोदयस्य काले एव द्वौ खगोलविज्ञानिनौ खगोलशास्त्रे महत्त्वपूर्णसंशोधनानि कृतवन्तौ आस्ताम्-

1. डेन्मार्कदेशीयः टाईखोब्राहे महोदयः (क्रि.श.1546 तः 1601)

2. जर्मनिदेशस्य प्राग् नगरस्थः जोहानास् केप्लर् (क्रि.श. 1571 तः 1630)

टालेमीमहोद्यस्य नक्षत्रसूच्यां दोषाः सन्तीति टाईखोब्राहे महोदयेन ज्ञातम्। तस्य परिष्कारं कृत्वा नूतनां नक्षत्रसूचिकां निर्मातुं सः निर्णीतवान्। डेन्मार्क् नगरस्य राजा तस्मै तदर्थम् आवश्यकानाम् उपकरणानां क्रयणार्थं साहाय्यं कृतवान्। समीपस्थे कस्मिंश्चिद्द्वीपे वेधशालामेकामपि स्थापितवान्। तस्यां वेधशालायां टाईखोब्राहे स्वकीयसहायकैः साकं केवलनेत्राभ्यां दृश्यमानानां नक्षत्राणां वेधं कृत्वा 770 नक्षत्राणां सूचिकां निर्मितवान्। टाईखोब्राहे महोदयस्य नक्षत्रसूचिका बहुसमीचीना अस्तीति प्राग् नगरस्थः खगोलविज्ञानी जोहानास् केप्लर् महोदयः ज्ञातवान्।[1]

केप्लर् महोदयः दरिद्रकुटुम्बे जातः आसीत्। वैज्ञानिकक्षेत्रे तस्य योगदानं महत्त्वपूर्णं चेदपि वैयक्तिकजीवने तस्य सुखं नासीत्। दारिद्र्यात् आर्थिकसमस्यया सः आजीवनं पीडितः आसीत्। जीवनोपायार्थं फलितज्यौतिषम् आश्रितवान् आसीत्। एतादृशानि कष्टानि आसन् चेदपि केप्लर् सर्वदा हसन्मुखः एव आसीत्। किन्तु टाईखोब्राहे कलहशीलः आसीत्। तथापि टाईखोब्राहे महोदयस्य समीपे बहुवर्षेभ्यः सङ्गृहीताः ग्रहविषयकाः दत्तांशा आसन्। तस्मादेव कारणात् केप्लर् टाईखोब्राहेमहोदयस्य समीपे उद्योगम् आरब्धवान्। तथापि केप्लर् महोदयेन साकं टाईखोब्राहे बहुवारं कलहं कृतवान् आसीत्। बहुसुलभेन टाईखोब्राहे स्वकीयं ग्रहविषयकज्ञानभण्डारं केप्लर् महोदयं प्रति न दत्तवान्। "यदि न दीयते तर्हि भवतः उद्योगं त्यजामि" इति यदा केप्लर् उक्तवान् तदा केवलं मङ्गलग्रहस्य दत्तांशान् एव केप्लर् कृते दत्तवान् आसीत् टाईखोब्राहे। क्रि. श. 1601 तमे वर्षे टाईखोब्राहेमहोदयः पञ्चतां गतः। तस्य ग्रहविषयकदत्तांशानां कोऽपि उत्तराधिकारी नासीदिति हेतोः केप्लरः स्वयमेव टाईखोब्राहे महोदयस्य सर्वानपि दत्तांशान् स्वायत्तीचकार। तेषां दत्तांशानामाधारेण ग्रहाणां चलनस्य नियमानाम् अन्वेषणार्थं केप्लर्

---

1. "प्राणेनैति कलां भूः"-आर्यभटीयम्-गीतिकापादः-श्लोकः 6

भूरि प्रयत्नं कृतवान्। कुजस्य दत्तांशानामाधारेण 70 प्रकारकाणि वृत्तानि प्रकल्प्य तस्य चलननियमानामन्वेषणे केप्लर् प्रयत्नं कृतवान् आसीत्। किन्तु तेन सफलता न जाता। तथापि पौनः पुन्येन टाईखोब्राहे महोदयस्य दत्तांशानां सूक्ष्मतया अध्ययनं कृतवान्। एवं तेषां दत्तांशानां गभीरतया अध्ययनसमये एकस्मिन् दिने केप्लरः स्वकीयदोषम् अवगतवान्। "ग्रहाणां मार्गाः वृत्ताकाराः नैव भवन्ति। दीर्घवृत्ताकाराः (अण्डाकाराः) भवन्तीति" टाईखोब्राहे महोदयस्य दत्तांशानामध्ययनेन सः ज्ञातवान्।

कोपर्निकस् महोदयः सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तं प्रतिपादितवानपि ग्रहाणां साञ्चारमार्गाः दीर्घवृत्ताकाराः इति तेन न प्रतिपादितमासीत्। ग्रहाः वृत्ताकारकक्षास्वेव भ्रमन्तीत्येव सः प्रतिपादितवानासीत्। किन्तु केप्लर् महोदयः ग्रहाणां सञ्चारकक्षाः दीर्घवृत्ताकाराः इति प्रतिपादितवान्। ग्रहाणां चलनविषये त्रीन् महत्त्वपूर्णान् नियमान् प्रतिपादितवान्। एवं ग्रहाणां सञ्चारपथाः दीर्घवृत्ताकाराः इति प्रथमवारं प्रतिपादस्य कीर्तिः केप्लर् महोदयस्य भवतिं।

केप्लर् महोदयः टाईखोब्राहेमहोदयस्य खगोलवीक्षणस्य दत्तांशानामाधारेण मया एते नियमाः प्रतिपादिताः इति ग्रहाणां चलनविषये स्वरचितपुस्तकस्य मुखपुटे एव टाईखोब्राहे महोदयस्य ऋणम् उल्लिखितवान् आसीत्। क्रि.श. 1507 तमे वर्षे केप्लर् महोदयः स्वकीयसंशोधनानि सर्वाण्यपि प्रसारितवान्। तत्कालीनखगोलशास्त्रज्ञेन गेलिलियोमहाभागेन साकं केप्लर् सम्पर्कं साधितवान्। किन्तु गेलिलियो महोदयस्य अहङ्कारप्रवृत्तिः आसीत्। (बहूनां विज्ञानिनाम् एतादृशाः व्यक्तित्वदोषा विज्ञानस्य इतिहासस्यावलोकनेनावगम्यते।) अतः सः यत्र यत्र आवश्यकता अस्ति तत्रैव केप्लर् महोदयेन साकं व्यवहारं कृतवान्। केप्लर् महोदयः गेलिलियो महोदयं प्रति बहूनि पत्त्राणि लिखितवान् चेदपि केषाञ्चन पत्त्राणामेव उत्तरं दत्तवानासीत् गेलिलियो। प्रान्तीयनृपानां कृते टेलिस्कोप् प्रेषितवानपि दरिद्रः केप्लर् महोदयः स्वकीयसंशोधननिमित्तं गेलिलोयोमहोदयं टेलिस्कोप् निमित्तं यदा याचितवान् तदा सः तस्मै टेलिस्कोप् न दत्तवान् आसीत्। गेलिलियो महोदयस्य मरणात् प्रागेव केप्लर् महोदयस्य मरणमभवत्।

एवं केप्लरेण स्वजीवने बहवः क्लेशाः अनुभूताः चेदपि खगोलशास्त्रे केप्लर् महोदयस्य योगदानं महत्त्वपूर्णं भवति। तेन निरूपितानां ग्रहाणां चलनविषयकानां नियमानां कृते खगोलशास्त्रे बहुमहत्त्वं स्थानं विद्यते। ते त्रयः नियमाः एवं भवति–

**केप्लरस्य प्रथमो नियमः-**

**सर्वेषामपि ग्रहाणां कक्षाः दीर्घवृत्ताकाराः भवन्ति। तेषां दीर्घवृत्ताकारकक्षाणां नाभिद्वयं भवति। तयोः नाभ्योः एकतरे सूर्यस्तिष्ठति; अपरा च रिक्ता नाभिः।**

केप्लरस्य प्रथमो नियमः

यः कोऽपि कायः स्थिरं कायं परितः पूर्णवृत्ताकारपथे (वृत्तीयगत्यां) परिक्रमणं करोति चेत् सर्वदा तयोः कायोः अन्तरं समानमेव भवति। यतो हि पूर्णवृत्तस्य सर्वाः अपि त्रिज्याः समाना एव भवन्ति। किन्तु स्थिरं कायं परितः दीर्घवृत्ताकारपथे अन्यः कायः परिक्रमणं करोति चेत् तयोः कायोरन्तरं सर्वदा समानं न भवति। कदाचित् तयोः कायोः अन्तरम् अतीव स्वल्पं भवति; कदाचिच्च अतीव अधिकं भवति। परिक्रमणकेन्द्रात् दीर्घवृत्ताकारकक्षायाः पर्यन्तं कृताः त्रिज्याः असमानाः भवन्तीति हेतोरेव तयोः कायोः अन्तरे न्यूनाधिक्यं जायते। दीर्घवृत्तक्षेत्रस्य त्रिज्यानामसमानत्वे उत्केन्द्रिता एव कारणम्। दीर्घवृत्ते केन्द्रद्वयस्य सद्भावात् उत्केन्द्रिताया प्रवृत्तिः। पूर्णवृत्तस्य एकमेव केन्द्रमिति हेतोः उत्केन्द्रिताया अभावः, तस्मात् कारणात् पूर्णवृत्तस्य सर्वाः त्रिज्याः समाः। किन्तु ग्रहाणां सञ्चारमार्गाः दीर्घवृत्ताः। अत एव तेषां त्रिज्याः असमाः। एवं दीर्घवृत्ताकारकक्षायां सञ्चरन् ग्रहः यत्र बिन्दौ सूर्यस्य समीपतमो भवति सः बिन्दुः नीचबिन्दुः इत्युच्यते। तथा यत्र बिन्दौ सूर्यात् दूरतमो भवति सः बिन्दुः उच्चबिन्दुः इत्युच्यते। ग्रहाणां दीर्घवृत्ताकारकक्षासु उच्चनीचबिन्दू स्थिरौ न भवतः, तयोरपि चलनमस्ति। ग्रहाः यथा सूर्यस्य परिक्रमणं कुर्वन्ति तथैव ग्रहकक्षास्थौ उच्चनीचबिन्दू अपि सूर्यं परितः परिक्रमणं कुरुतः। एवं ग्रहाणाम् उच्चनीचबिन्द्वोः परिकल्पनस्य कारणं ग्रहाणां सञ्चारपथानां दीर्घवृत्ताकारत्वमेव।

दीर्घवृत्ताकारग्रहकक्षायां द्वे नाभी भवतः। तयोः नाभ्योः एकतरनाभौ सूर्यस्तिष्ठति। अपरा च रिक्ता नाभिः। सूर्यस्थितनाभ्याः रिक्तनाभ्याश्च अन्तरमेव ग्रहकक्षाया उत्केन्द्रिता इत्युच्यते। (वृत्तभिन्नेषु कुटिलक्षेत्रेषु नाभिद्वयं भवति। तयोः नाभ्योरन्तरमेव उत्केन्द्रिता इत्युच्यते।) ग्रहकक्षायाः दीर्घवृत्ताकारत्वात् सा उत्केन्द्रिता ० तः अधिका, किञ्च 1 तः न्यूना भवति।

महामहोपाध्यायेन सुधाकरद्विवेदिमहोदयेन स्वकीये दीर्घवृत्तलक्षणाख्ये ग्रन्थे प्रथमे श्लोके दीर्घवृत्तस्य उत्केन्द्रिताया लक्षणं तथा उत्केन्द्रिताया आनयनक्रमः प्रतिपादितः। तद्यथा–

**नियतस्थितचिह्नाद्या रेखा यत्परिधिं गता**
**नियतस्थितरेखायां यश्च लम्बो वृतिस्थितात्।**
**तद्बिन्दोस्तुल्यसम्बन्धस्त्वनयोर्यदि जायते**
**रूपाल्पो दीर्घवृत्तं तत्क्षेत्रं नव्यैरुदाहृतम्**[1]॥ इति।

दीर्घवृत्तक्षेत्रे यत्र कुत्रापि चिह्नमेकं कृत्वा तच्चिह्नतः दीर्घवृत्तक्षेत्रपरिधिपर्यन्तम् एका रेखा कार्या। दीर्घवृत्तक्षेत्रस्य बहिः अपि एका रेखा कार्या। दीर्घवृत्तक्षेत्रान्तर्गतचिह्नात् परिधिपर्यन्तं कृता रेखा यत्र बिन्दौ परिधिं स्पृशति तस्माद् बिन्दोः वृत्तबहिस्थितरेखापर्यन्तम् एकः लम्बः कार्यः। अनयोः (दीर्घवृत्तान्तर्गतचिह्नात् परिधिपर्यन्तं कृतायाः रेखायाः, तद्रेखा–परिध्योः स्पर्शस्थानात् दीर्घवृत्तबहिः स्थितरेखापर्यन्तं कृतस्य लम्बस्य च) अनुपातेन लब्धं फलं रूपाल्पं भवति। तथा दीर्घवृत्तान्तर्गतात् तस्मादेव बिन्दोः दीर्घवृत्तपरिधिगतम्

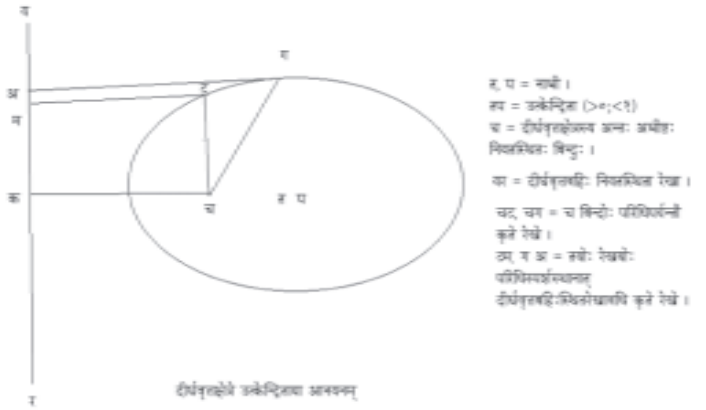


1. दीर्घवृत्तलक्षणम्–श्लोकः 1

अन्यबिन्दुपर्यन्तं रेखां कृत्वा, तद्रेखा-परिध्योः स्पर्शस्थानात् वृत्तबहिः स्थितां तामेव रेखां प्रति लम्बं कृत्वा अनयोः अनुपाते क्रियमाणे सति सैव फलमागच्छति। सैव अस्य दीर्घवृत्तस्य उत्केन्द्रितामानं भवति। एतादृशं क्षेत्रं नव्यैः गणकैः दीर्घवृत्तम् इति कथितम्। अर्थात् यस्य कुटिलक्षेत्रस्य उत्केन्द्रिता शून्याधिका, किञ्च रूपाल्पा भवति तदेव दीर्घवृत्तसंज्ञकं भवति।

उपरि निर्दिष्टे दीर्घवृत्तक्षेत्रे त, प नाभी। तयोरन्तरमेव (तप) अस्य दीर्घवृत्तक्षेत्रस्य उत्केन्द्रिता।

$$\frac{\text{चट}}{\text{टम}} < 1 = \frac{\text{चग}}{\text{ग अ}} < 1 = \text{तप} = \text{अस्य दीर्घवृत्तक्षेत्रस्य उत्केन्द्रिता।}$$

**दीर्घवृत्तक्षेत्रस्य रचनाक्रमः एवमस्ति-**

द्वे शलाके किञ्चिदन्तरे दृढे स्थाप्येते। एकं सूत्रञ्च गृहीत्वा तयोः शलाकयोः कोटी (अग्रे) ग्रन्थिना प्रतिबद्धव्ये। ततः यदि एकां शलाकां लेखनीं वा गृहीत्वा तया वक्रीकृतं सूत्रं तद् आततया समन्ताद् भ्राम्येत्तदा सूत्रभ्रमणेन कल्पितः आकारः दीर्घवृत्तं भवति। अत्र गृहीतयोः द्वयोः शलाकयोरग्रे अस्माभिः रचितस्य दीर्घवृत्तस्य द्वे नाभी।

सूत्रदीर्घत्वम् = बृहदक्षव्यासः = (1+उत्केन्द्रिता)

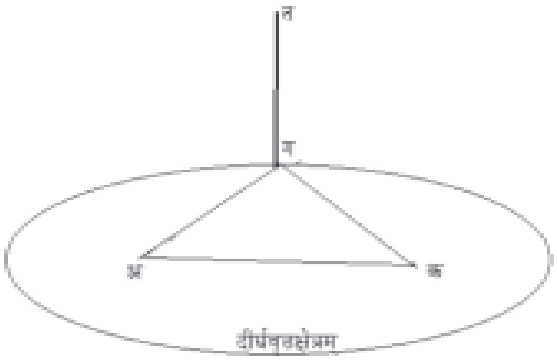


दीर्घवृत्तस्य रचना

अग, गक = द्वे शलाके।
अ, क = दीर्घवृत्तस्य द्वे नाभी (शलाकयोः अग्रे)
अक = शलाकाद्वयोः (नाभ्योः) मिलितं सूत्रम् = नाभ्योरन्तरम् = उत्केन्द्रिता।
ल = लेखनी।

**केप्लरस्य द्वितीयो नियमः-**

**सूर्यात् ग्रहावधि कृतः मन्दकर्णः समानकाले समानक्षेत्राणि यथा आक्रमन्ति तथा ग्रहाः सूर्यं परितः परिक्रमणं कुर्वन्ति।**

केप्लरस्य एनं नियमं स्वीकृत्य ग्रहाणां गतिभेदं समर्पकतया निरूपयितुं शक्यते। उच्चसमीपे (दीर्घवृत्ताकारकक्षायां सूर्याद् दूरतरस्थानेषु) ग्रहाणां गतिः मन्दं भवति। यतो हि तदा ग्रहस्य मन्दकर्णः (सूर्यात् ग्रहावधि कृता कल्पनारेखा) बृहद् भवति। नीचसमीपे (दीर्घवृत्ताकारकक्षायां सूर्याद् समीपतमस्थानेषु) ग्रहाणां मन्दकर्णस्याल्पत्वात् ग्रहाणां गतिः शीघ्रा भवति। अधोनिर्दिष्टेन क्षेत्रेण एतत् कथमिति स्पष्टीभविष्यति-

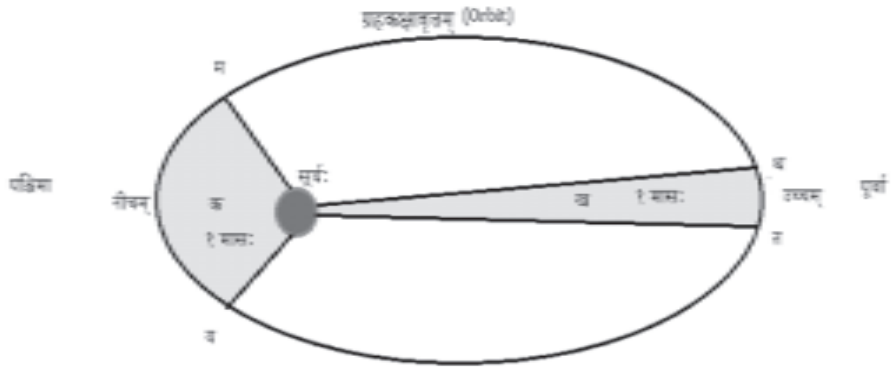


क्षेत्रेऽस्मिन् 'क' क्षेत्रं नीचसमीपे ग्रहसञ्चारसमये (दीर्घवृत्ताकारकक्षायां 'म' तः 'य' पर्यन्तं सञ्चारसमये) तस्य मन्दकर्णैरुत्पादितं क्षेत्रम्। 'ख' क्षेत्रं तु उच्चसमीपे ग्रहसञ्चारसमये (दीर्घवृत्ताकारकक्षायां 'त' तः 'थ' पर्यन्तं सञ्चारसमये) तस्य मन्दकर्णैरुत्पादितं क्षेत्रम्। उभयोः अपि क्षेत्रयोः सञ्चारार्थं ग्रहेण स्वीकृतः समयः समान एव (एक एव मासः)। यतो हि उभयोरपि क्षेत्रयोः क्षेत्रफले समाने। (क्षेत्रम् 'क' = क्षेत्रम् 'ख'।) किन्तु 'म' तः 'य' पर्यन्तं सञ्चारसमये ग्रहस्य सूर्यसमीपत्वात् मन्दकर्णस्याल्पत्वं भवति। मन्दकर्णस्यल्पत्वात् ग्रहः शीघ्रया गत्या तत्र चलति। अतः दीर्घवृत्ताकारपरिधौ 'म' तः 'य' पर्यन्तं ग्रहेण भुक्ताः अशांः अधिका भवन्ति। किन्तु 'त' तः 'थ' पर्यन्तं सञ्चारवेलायां ग्रहस्य मन्दकर्णस्य बृहत्त्वात् (सूर्याद्दूरे = उच्चे स्थितत्वात्) मन्दतया चलति। अतः तावद्भिरेव समयैः (1 मासेन) ग्रहेण भुक्ताः परिध्यंशाः अल्पाः। अर्थात् 'त' तः 'थ' पर्यन्तं विद्यमाना अशां अल्पाः भवन्ति।

केप्लरस्य एनं नियमं स्वीकृत्य मध्यम-स्पष्टसौरकालयोः भेदं प्रतिपादयितुं

शक्यते। एकमहोरात्रं नाम 24 होराः इति व्यवहारार्थं ज्योतिर्विद्भिः स्थूलतया अङ्गीकृतः। सैव मध्यमसौरकालः। किन्तु स्पष्टसौरकालः प्रतिदिवसभिन्ना भवति। अस्य कारणं तु इत्थं भवति–भूमेः सञ्चारमार्गः दीर्घवर्तुलाकारः भवति। अत एव भूमिः उच्चस्थाने यदा भवति तदा भूमेः मन्दकर्णः अधिकः भवति। यदा भूः नीचस्थाने भवति तदा भूमेः मन्दकर्णः अल्पः भवति। अतः केप्लरस्य द्वितीयनियमानुसारं उच्चसमीपवर्ती भूः निर्दिष्टसमये स्वकक्षायाः अल्पं भागं चलति। तथा नीचसमीपवर्ती भूः निर्दिष्टसमये स्वकक्षायाः अधिकं भागं चलति। तत्परिणामेन उच्चसमीपवर्तिप्रदेशेषु भूमेः गतिः मान्द्यं भजते; नीचसमीपवर्तिप्रदेशेषु भूमेः गतिः शैघ्र्यं भजते। एवं भूमेः गतेः असमानत्वात् मध्यम–स्पष्टसौरकालयोः भेदः सञ्जायते।

**केप्लरस्य तृतीयो नियमः–**

**सूर्यं परितः ग्रहाणां परिक्रमणकालस्य वर्गमानं सूर्याद् ग्रहावधि कृतस्य मध्यम–मन्दकर्णस्य (मध्यमदूरत्वस्य) घनमानस्य अनुपातीयो भवति।**

एषः केप्लरस्य ग्रहाणां चलनस्य तृतीयो नियमः। गणितसङ्केतेन इमं नियमं $r^3 \propto t^2$ इति सूचयितुं शक्यते।

$$\frac{\text{सूर्याद् ग्रहस्य मध्यमदूरत्वम्}^3}{\text{ग्रहस्य परिक्रमणकालः}^2} = \text{स्थिरः राशिः।}$$

केप्लरस्य त्रिषु नियमेषु एषः तृतीयः नियमः बहुप्रसिद्धः वर्तते। केप्लरस्य तृतीयनियमं स्वीकृत्य सूर्यस्य पिण्डमात्रां तथा सूर्यात् ग्रहावधि विद्यमानं दूरत्वमानं च आनेतुं शक्यते। भूमिः, अन्यग्रहाश्च सूर्यं परितः परिक्रमणं कुर्वन्तीति प्रतिपादयितुं केप्लरस्य अयं तृतीयः नियमः एव प्रधानं प्रमाणं भवति। यतो हि बुध–शुक्र–कुज–गुरु–शनि–युरेनस्–नेप्चून्–प्लूटोग्रहाणां परिक्रमणकालवर्गस्य, एतेषां ग्रहाणां सूर्यात् दूरत्वमानस्य घनस्य च अनुपातेन यत् समानं फलं लब्धं तदेव समानं फलं भूमेः परिक्रमणकालवर्गस्य, भूमि–सूर्ययोः दूरत्वघनस्य च अनुपातेनापि लब्धम्। भूमेः सूर्यं परितः परिक्रमणेनैव एतत् सम्भवं भवति। किन्तु चन्द्रस्य अनुपातलब्धराशिः अन्यग्रहाणाम् अनुपातलब्धराशितः भिन्नः सञ्जातः। अत एव चन्द्रः सूर्यं परितः परिक्रमणं न करोति, सः भूमेरुपग्रहत्वेन भूमिं परितः परिक्रमणं करोतीति सिद्ध्यति।

केप्लरस्य तृतीयनियमं स्वीकृत्य ग्रहाणां मध्यममन्दकर्णस्य, सूर्यं परितः परिक्रमणकालस्य चानयनक्रमः इत्थं भवति–

$$\frac{(\text{ग्रहस्य मध्यममन्दकर्णः})^3}{(\text{ग्रहस्य परिक्रमणकालः})^2} = \text{स्थिरो राशिः।}$$

अतः-

(ग्रहस्य मध्यममन्दकर्णः)$^3$ =(ग्रहस्य परिक्रमणकालः)$^2$ x स्थिरो राशिः

ग्रहस्य मध्यममन्दकर्णः= $^3$(ग्रहस्य परिक्रमणकालः)$^2$ x स्थिरो राशिः

एवमेव-

$$(\text{ग्रहस्य परिक्रमणकालः})^2 = \frac{(\text{ग्रहस्य मध्यममन्दकर्णः})^3}{(\text{स्थिरो राशिः})}$$

$$\text{ग्रहस्य परिक्रमणकालः} = \frac{(\text{ग्रहस्य मध्यममन्दकर्णः})^3}{(\text{स्थिरो राशिः})}$$

## स्फुटः सौरव्यूहः ( आधुनिकसौरव्यूहः )

कोपर्निकस् महोदयेन सूर्यकेन्द्रसिद्धान्तप्रतिपादनवेलायां शनिपर्यन्ताः ग्रहाः एव अन्विष्टाः आसन्। तथा तेन ग्रहाणां मार्गाः वृत्ताकाराः इत्येव प्रतिपादितमासीत्। कोपर्निकस् महोदयस्य अनन्तरकालीनः केप्लर् महोदयः ग्रहाणां सञ्चारमार्गाः दीर्घवृत्ताकाराः, न तु वृत्ताकाराः इति प्रतिपादितवान्। वेङ्कटेतकर् महोदयस्य काले नूतनौ वरुणेन्द्रौ ग्रहौ

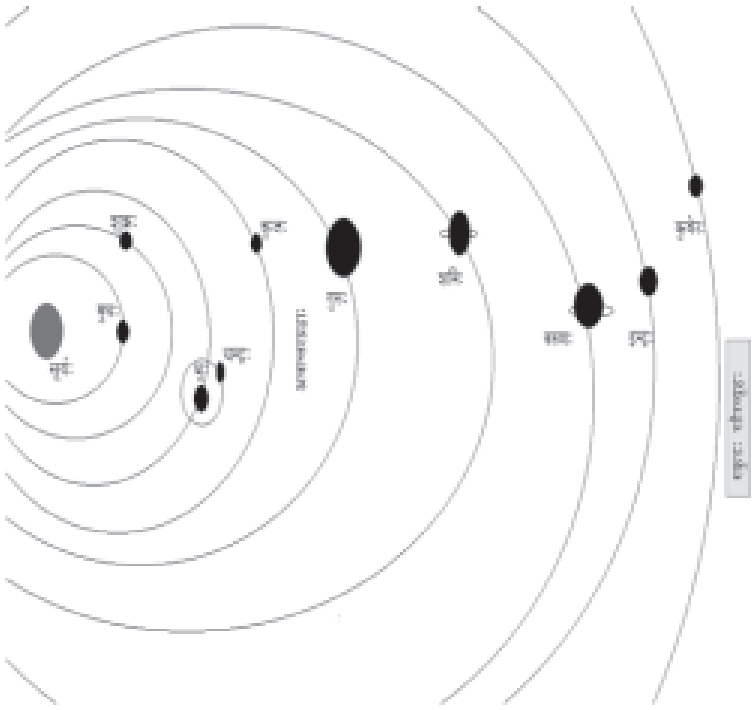

ज्ञातावास्ताम्। किन्तु कुबेरः (प्लूटो) ज्ञातः नासीत्। अतः एव केतकर् महोदयः स्वकीये केतकीग्रहगणिते परिशिष्टविभागे केवलं वरुणेन्द्रयोः परिचयं गणितं च प्रतिपादितवान्। कुबेरस्य परिचयं न कृतवान् आसीत्। किन्तु केतकरस्य कालस्यानन्तरं 1930 तमे वर्षे "ला वेल्" महोदयेन प्लूटो (कुबेरः) अन्विष्टः। तदाप्रभृति सौरमण्डलं नवग्रहात्मकं जातम्। इदं नवग्रहात्मकं तथा दीर्धवृत्ताकारग्रहकक्षाभिर्युक्तं सौरमण्डलमेव आधुनिकः स्फुटः सौरव्यूहः भवति। अस्य मानचित्रमधः प्रदत्तम्-

**निष्कर्षः**- अस्मिन् शोधपत्रे सङ्क्षेपेण टालेमी-केप्लर् महोदयाभ्यां प्रतिपादिताः ग्रहाणां गतिविषयकाः सिद्धान्ताः प्रतिपादिताः। शोधपत्रेऽस्मिन् गणितस्य प्रयोगः आधिक्येन न कृतः। यतो हि पाश्चात्यखगोलशास्त्रज्ञैः निरूपितानां ग्रहगतिविषयकसिद्धान्तानां सामान्यपरिचयार्थमेव शोधपत्रमिदं लिखितम्। अग्रिमेषु शोधपत्रेषु भारतीयगणितज्ञैः खगोलविद्भिश्च प्रतिपादितानां चापीयत्रिकोणमितिः, त्रिकोणमितिः, क्षेत्रव्यवहारः, ग्रहभ्रमणवृत्तानि इत्यादीनां सिद्धान्तानां पाश्चात्यमनीषिणां सिद्धान्तैः सह तुलना क्रियते। "Reduction to the ecliptic", "Newton Gauss interpolation formula", "Taylor Series for Sine and Cosine functions", "Newton's Power Series for the Sine and Cosine", "Infinite GP convergent formula", "Gregory and Leibnitz's Series for the Inverse tangent", "Approximations to the value of Pi", "Pythagoras theorem" इत्यादीनां तथाकथितपाश्चात्यसिद्धान्तानां के परवर्तकाः इति सम्यक् अवलोक्यते।

## सन्दर्भग्रन्थसूची [ BIBLIOGRAPHY ]


1. **अर्वाचीनं ज्योतिर्विज्ञानम्;** ग्रन्थकर्ता-श्रीरमानाथसहायः; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श.1996; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
2. **ज्योतिर्विज्ञानम्;** ग्रन्थकर्ता-धूलिपाल अर्कसोमयाजी; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श. 1964; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।
3. **"ज्या-सिद्धान्ताः" Formulas of Sine;** सम्पादकः-पं. शिवचरणशास्त्री; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श. 2014; प्रकाशनसंस्था-राष्ट्रियसंस्कृतसाहित्यकेन्द्रम्, जयपुरम्।
4. **म.म. बापूदेवशास्त्रिकृता सरलत्रिकोणमितिः;** सम्पादकः-पण्डितश्रीगोविन्द-पाठकः; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श. 2002; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्दसंस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी।

5. **म.म. बापूदेवशास्त्रिकृता सरलत्रिकोणमितिः ( संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम् );** व्याख्याकारः-पं. सत्यदेवशर्मा; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2012; प्रकाशनसंस्था-चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम्, वाराणसी।

6. **पं. बलदेवमिश्रकृता सरलत्रिकोणमितिः;** व्याख्याकारः सम्पादकश्च-डॉ. कमलाकान्तपाण्डेयः; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श. 2007; प्रकाशनसंस्था-शारदासंस्कृत-संस्थानम्, वाराणसी।

7. **चन्द्रगोल-विमर्शः;** ग्रन्थकर्ता-रामचन्द्रपाण्डेयः; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2010; प्रकाशनसंस्था-केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली।

8. **ज्योतिष-सिद्धान्त-मञ्जूषा;** ग्रन्थकर्ता-डॉ. विनयकुमारपाण्डेयः; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2020; प्रकाशनसंस्था-चौखम्बा सुरभारती प्रकाशनम्, वाराणसी।

9. **सिद्धान्तशिरोमणेर्गोलाध्यायस्योपपत्तिः**-लेखकः-डॉ. प्रेमकुमारशर्मा, संस्करणम् : क्रि.श. 2005, प्रकाशनसंस्था-नागप्रकाशनम्, नवदेहली।

10. **श्रीमद्भास्कराचार्यप्रणीतः सिद्धान्तशिरोमणिः- स्वोपज्ञवासनाभाष्यसंवलितो नृसिंह दैवज्ञकृतवार्त्तिकोपेतश्च**- सम्पादकः-डॉ. मुरलीधरचतुर्वेदः; तृतीयं संस्करणम्; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2010; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालयः, वाराणसी।

11. **मन्दशीघ्रफलसाधनसमीक्षा;** ग्रन्थकर्ता-विद्यावाचस्पतिः डॉ. रामजीवनमिश्रः; प्रथमसंस्करणम्-क्रि.श. 2005; प्रकाशनसंस्था-ठाकुरप्रकाशनम्।

12. **म.म.पं.सुधाकरद्विवेदिविरचितं दीर्घवृत्तलक्षणम्;** सम्पादको व्याख्याकारश्च-डॉ. चन्द्रमा पाण्डेयः; प्रथमसंस्करणम्-क्रि.श. 2006; प्रकाशनसंस्था-शारदासंस्कृत संस्थानम्, वाराणसी।

13. **ग्रहनक्षत्राणि;** ग्रन्थकर्ता-डॉ. सम्पूर्णानन्दः; अनुवादकः सम्पादकश्च-पण्डित-श्रीकमलापतिमिश्रः; प्रकाशनवर्षम्-क्रि.श. 2016; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्द-संस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

14. **सुराकान्तसङ्कलितः ज्योतिर्विज्ञानशब्दकोषः;** लेखनं सम्पादनञ्च-डॉ. सुराकान्तझा; प्रथमंसंस्करणम्; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2009; प्रकाशनसंस्था-चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

15. **सूर्यसिद्धान्तः ( आर्षग्रन्थः );** व्याख्याकारः-श्रीकपिलेश्वरशास्त्री; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2015; प्रकाशनसंस्था-चौखम्भा संस्कृतभवनम्, वाराणसी।

16. **म.म.सुधाकरद्विवेदिप्रणीतया 'सुधावर्षिणी'टीकया संवलितः सूर्यसिद्धान्तः;** सम्पादकः-विद्यावारिधिः श्रीकृष्णचन्द्रद्विवेदी; द्वितीयं संस्करणम्; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2016; प्रकाशनसंस्था-सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी।

17. **स्वकृतया अङ्कविवृतिव्याख्यासहितं सपरिशिष्टं 'केतकीग्रहगणितम्'-श्रीवेङ्कटेशतनयश्रीदत्तराजविरचितेन केतकीपरिमलेन वासनाभाष्येण समुल्लसितम्;** ग्रन्थकर्ता-श्रीवेङ्कटेशकेतर्क तृतीयं संस्करणम्; संस्करणवर्षम्-क्रि.श. 2014; प्रकाशनसंस्था-भारतीयविद्याप्रकाशनम्, नवदेहली।

18. **भारतीयज्यौतिषे संस्थानविद्या;** अन्वेषकः लेखकश्च-प्रो. सच्चिदानन्दमिश्रः; सम्पादकः-डॉ. शिवाकान्तमिश्रः; प्रथमसंस्करणम्-क्रि.श. 2017; प्रकाशनसंस्था-भारतीयविद्यासंस्थानम्, नवदेहली।

19. https://sa.wikipedia-org/

✦✦✦

# ऋग्वेदसंहितायां स्त्रीशिक्षायाः महत्त्वम्

**पवनकुमारपाण्डेयः***

शिक्षा मानवस्य सर्वाङ्गीणव्यक्तित्त्वविकासस्य हेतुर्भवति। समाजपुरोगमनार्थं सभ्यसमाजनिर्माणार्थञ्च शिक्षायाः महत्त्वं विद्यते। सुसंस्कृते समाजे यथा पुरुषाणां शिक्षा आवश्यकी तथा स्त्रीणामपि। स्त्रीपुरुषौ समाजरथस्य द्वे चक्रे स्तः। यथा एकेन चक्रेण रथस्य गतिः असम्भवा तथा संसारस्य गतिः नारीं विना। यदि माता सुशिक्षिता भवेत् तर्हि सा स्वपुत्राणां पालनं शिक्षणञ्च सुचारुरूपेण कर्तुं शक्नोति। यदि सा अशिक्षिता तर्हि तस्याः सन्ततिरपि विद्याहीना संस्कारहीना च भविष्यति। शिक्षिता नारी माता भगिनी दुहिता पत्नीरूपेण परिवारस्य महते कल्याणाय कल्पते।

स्त्रीशिक्षायाः महत्त्वम् ऋग्वेदे ऋषिभिरनेकेषु मन्त्रेषु प्रतिपादितम्। अत्र विद्याध्ययनं ऋषिभिः सर्वेषामेव कृते अनुमोदितम्। तस्मिन् काले यथा पुरुषा ब्रह्मचर्ये स्थित्वा विद्याध्ययनं कुर्वन्ति स्म, तथैव स्त्रियोऽपि विद्याध्ययनाय प्रवृत्ता दृश्यन्ते। ऋग्वेदीये समाजे स्त्रीशिक्षा प्रतिष्ठिता आसीत् इति ज्ञायते। ऋग्वेदे पुरुषाणाम् अध्ययनाध्यापनापेक्षया स्त्रीशिक्षाया महत्त्वं कथमपि न्यूनं नासीत्। ऋषयः मन्त्रेषु उद्घोषयन्ति यद् स्त्रीणां शिक्षा समाजस्य राष्ट्रस्य वा समग्रोन्नतये अत्यन्तमनिवार्या अस्ति। तासां कृते ब्रह्मचर्यस्य उपनयनसंस्कारस्यापि ऋषिभिः प्रावधानं विहितम्। तस्मिन् काले यज्ञकर्मणां सम्पादने स्त्रीणां महत्त्वं तथैव आसीत् यथा पुरुषाणाम्। पुरुषैः सह स्त्रियः ब्रह्मचर्ये स्थित्वा गुरोः सान्निध्यञ्च अवाप्य वेदाध्ययनं कुर्वन्ति स्म –

**आस्थापयन्त युवति युवानः शुभे निमिश्ला विदथेषु प्रजाम्।**[1]

ऋग्वेदे अनेकेषु मन्त्रेषु ऋषयः स्वीकुर्वन्ति यद् समाजसञ्चालने सन्ततीनाञ्च संरक्षणे स्त्रीणां अत्यन्तं महत्त्वपूर्णा भूमिका आसीत्। ऋषयो मन्यन्ते यत् शिक्षिताः

---

* सहायकाचार्यः, संस्कृतवेदाध्ययनविभागः
कुमारभास्करवर्मसंस्कृतपुरातनाध्ययनविश्वविद्यालयः
नलबारी, असमप्रदेशः

1. ऋग्वेदः- 1.167.6

स्त्रियो न केवलमात्मनः सन्ततीश्च शिक्षयन्ति, अपि तु ताः सम्पूर्णस्यापि समाजस्य अभ्युन्नतौ समर्था भवन्ति। मातरि सुप्रतिष्ठिता विद्या तस्याः सन्ततौ कालक्रमेण स्थानं लभते। वैदिके समाजे इयमेव सामाजिकी व्यवस्था ऋषिभिः परिकल्पिताऽऽसीत्।

ऋग्वेदे विंशत्यधिकानि उषःसूक्तानि प्राप्यन्ते। एतेषु भगवत्या उषसः स्तुतिमभिलक्ष्य ऋषयः स्त्रीणां कर्माणि प्रतिपादयन्ति। अत्र उषादेवी स्त्रीणां दृष्टान्तत्वेनोपस्थापितास्ति ऋषिभिः। यथा पृथिव्या संयुक्तेन सूर्येण जायमाना उषा सम्पूर्णमपि विश्वमात्मनः प्रकाशेन व्याप्नोति जनानां मनःसु चाह्लादं जनयति तथैव ब्रह्मचर्येण, विद्यया, योगाभ्यासेन च संयुक्ता स्त्री समाजस्य अभ्युन्नतये श्रेष्ठतां प्राप्नोति।[1] सर्वेषामेव कुटुम्बिनां मनःसु सुशिक्षिता वेदविद्यायां निष्णाता च युवतिः आनन्दं जनयति।[2] ऋषयः पुनरपि अन्यस्मिन् मन्त्रे कल्पन्ते यद् सूर्यश्चन्द्रश्चेत्यनयोः प्रभावेण सम्पूर्णमपि विश्वं प्रकाशमाना उषा यथा शोभते तथैव विद्यया समलङ्कृतया स्त्रिया पितृकुलं मातृकुलञ्चेत्युभयमपि शोभते। एतदुच्यते मन्त्रेणानेन –

**उष आ भाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः।**
**आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु॥**[3]

विद्ययैव लौकिकस्य व्यवहारस्य परमार्थस्य च सिद्धिः भवति। अत एव ऋषयः कथयन्ति यथा खलु विद्या सन्ततौ सुप्रतिष्ठिता भवेत् तथा समाजे जनाः यतेरन्।[4] ऋग्वेदस्य प्रथममण्डले ऋषिर्ब्रह्मचारिणीं स्त्रियं सम्बोध्य अग्नेर्महत्त्वम् प्रतिपादयति। तत्रैव असौ कामयते यदग्नाविव तास्वपि सामर्थ्यं सुप्रतिष्ठितं चतुर्विंशतिवर्षाणि ब्रह्मचर्यस्य परिपालनेन, जितेन्द्रियत्वेन, षण्णां वेदाङ्गानामुपाङ्गानां मीमांसादीनाञ्च अभ्यासेन भवेत्। एतादृश्यो युवतयो सम्पूर्णमनुष्यजातेः कल्याणसम्पादने समर्थाः भवन्ति। एवम्–

**सुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः।**[5]

एता विद्यार्जनेन सत्येन, सद्गुणैः, सत्कर्मभिश्च राष्ट्रम् अभ्युन्नतिमेव नयन्ति। पित्रोरपि विद्या प्रतिष्ठिता भवेद् इत्यभिलषन्ति ऋषयः ऋग्वेदस्य केषुचित् मन्त्रेषु। ऋषयो विश्वसन्ति यत् पितघ्णां विद्यार्जनेन सन्ततावपि विद्या प्रतिष्ठिता भवति। विद्यायाः प्रभावेण सन्ततयः सर्वेष्वपि क्षेत्रेषु अभ्युन्नतिं लभन्ते। तथा हि–

---

1. तत्रैव– 1.49.2
2. तत्रैव– 1.71.9
3. तत्रैव– 1.49.1
4. तत्रैव– 1.48.9
5. तत्रैव– 1.79.1

**अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।**
**अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः॥**[1]

विद्वांसो यथा विद्यया शोभन्ते तथैव मातापितरौ उभावपि परिवेष्टितौ सुलक्षण्या वेदविद्यायां निष्णातया कन्यया। तथा हि –

**भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।**[2]

उषादेवी मातेव विश्वस्य सर्वानपि जनान् परिपालयति। सम्पूर्णमपि विश्वं व्याप्य एषा समुद्धरति सम्पूर्णमपि विश्वमन्धकारात् सर्वानपि जनान् पुरुषार्थाणां सम्पादनाय प्रवर्तयति। तत एव जनाः सार्वत्रिकमैश्वर्यं लभन्ते।[3] ऋग्वेदे ऋषयो कथयन्ति यद् विद्वांस आत्मनः पुत्रान् पाठयेयुः, विदुष्यश्च आत्मनः कन्यकाः।[4] ऋषयो मन्यन्ते यद् याः कन्यका जन्मन्यस्मिन् ब्रह्मचर्यस्य परिपालनेन वेदविद्याया अभ्यासेन लोके प्रशंसां प्राप्नुवन्ति ता अवश्यमेव सुखम् अनुभवन्ति। एता अवश्यपमेव अन्यस्मिन्नपि जन्मनि सुखं समासादयन्ति।[5] अत एव स्त्रीणामपि पारलौकिकी अभ्युन्न तिः विद्योपार्जनेन सततञ्च विद्याभ्यासेन भवति।

ऋग्वेदे विभिन्नासु विद्यासु निष्णाता युवतयो न केवलं आत्मपनः समुन्नतये यतमाना दृश्यन्ते; अपि तु ताभिरभीक्ष्णं यत्नः सम्पूर्णस्यापि जगतः अभ्युन्नतेरात्मनः विद्यायाः प्रचारेण क्रियते।[6] ऋषयः कथयन्ति यद् विदुषी माता गौरिव भवति। यथा गौरात्मनो वत्संस दुग्धेुन पोषयति वर्धयति च, तथैव विदुषी माता आत्मनि प्रतिष्ठितया विद्यया आत्मसनः पुत्रम् परिपुष्णाति अवति च। एतदेव तासां कर्म आसीत्। तथा हि–

**आ धेनवो मामतेयमवन्तीर्ब्रह्मप्रियं पीपयन्त्सस्मिन्नूघन्।**[7]

एवञ्च–

**सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्त स्याम।**
**अद्धि तृणमध्ये विश्वदानी पिब शुद्धमुद्कमाचरन्ती॥**[8]

---

1. तत्रैव– 1.79.4
2. तत्रैव– 1.92.7; 5
3. तत्रैव– 1.113.4
4. तत्रैव– 1.164.16, 1.117.24
5. तत्रैव– 1.141.8
6. तत्रैव– 1.145.4
7. तत्रैव– 1.152.6
8. तत्रैव– 1.164.40

अत एव ऋग्वेदीये समाजे वेदविद्यायां निष्णाताः स्त्रियो गृहकर्मण्येव व्यावृता नासन्, ता आत्मनि प्रतिष्ठिताया विद्यायाः प्रचाराय यतन्ते स्म। विदुष्या मात्रा अध्यापितायां सन्तती बुद्धिबलस्य, आत्मबलस्य, शरीरबलस्य च वृद्धिः भवति स्म। शास्त्रेषु कृताभ्यासावेव पितरौ राष्ट्राय योग्यान् नागरिकान् प्रदातुं समर्थौ भवतः।[1] अत एव ते अनेकेषु मन्त्रेषु समुद्घोषयन्ति यद् उभयोरपि शास्त्राणि सुप्रतिष्ठितानि भवेयुः।

ऋषयः कथयन्ति ऋग्वेदे यद् एकस्मिन् वेदे, द्वयोर्वेदयोः, चतुर्षु वा वेदेषु चतुर्भिरुपवेदैः सह कृताभ्यासाः स्त्रियो परमात्मनः पदं प्राप्नुवन्ति –

**गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी।**
**अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्त्राक्षरा परमे व्योमन्।।**[2]

ऋषयः पुनरपि कथयन्ति यद् यथा घृतादीनां सेवनेन भौतिकं शरीरं पुष्टिमश्नुते, तथैव मातः सुशिक्षया सन्ततेः। यथा वात्सल्यपूर्णा माता स्तनपानं कारयित्वा आत्मनः शिशून् रक्षति, तथैव सुशिक्षिता स्त्री शुद्धान्तःकरणेन सम्पादितेन व्यवहारेण सर्वेषां परिजनानाम् अभ्युन्नतिमेव विदधाति। तथा हि –

**यस्ते स्तनः शशयो मयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वीर्याणि।**
**यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः।।**[3]

सुशिक्षितस्य पुरुषस्य सुशिक्षितया कन्यया सहैव विवाह भवेद् इत्यासीद् व्यवस्था वैदिकसमाजे। ऋषयः कथयन्ति यद् जगत्यस्मिन् निवसतां स्त्रीपुरुषाणां परस्परं विवाहस्तेषां विद्यां सामर्थ्यञ्च परीक्ष्य क्रियेत।[4] यथा दुर्भेद्यां नौकामारुह्य जनाः सागरं सन्तरन्ति तथैव विदुषीणां स्त्रीणां संसर्गमवाप्य जीवनम्।[5] ऋषयः पुनरपि कथयन्ति यद् विद्याविहीनाः स्त्रियो सुखं नानुभवन्ति। अशिक्षिता स्त्री आत्मनः सुशिक्षिताय भत्रे कष्टं प्रददाति। अतः सुशिक्षितस्य पुरुषस्य संसर्गः सुशिक्षितया कन्यया सह भवेत्। यथा सेनया संयुक्तो नृपः शत्रूनभिभूय विजयं प्राप्नोति, यथा च अन्तरिक्षे विचरन् वायुः दौत्यमवलम्ब्य प्रत्येकं गृहे अग्निं वर्धयति, तथैव सुशिक्षिता स्त्री पत्युः सुखाय कल्पते। तथा हि–

---

1. तत्रैव– 1.155.5
2. तत्रैव– 1.164.41
3. तत्रैव– 1.164.49
4. तत्रैव– 1.22.12, 1.79.2, 1.113.18, 1.123.1–5
5. तत्रैव– 1.48.3

**मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहे गृहे श्येतो जेन्यो भूत्।**
**आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं भृगवाणो विवाय॥**[1]

यथा सर्वगुणसम्पन्ना उषा सर्वेष्वपि पदार्थेषु आनन्दमेव जनयति, तथैव ब्रह्मचर्यं परिपाल्य वेदविद्याञ्चाधीत्य गृहस्थाश्रमे प्रविष्टा युवतिः समेषामेव कल्याणाय भवति।[2] प्रातःकाले जगतः सम्पूर्णमप्यन्धकारमुत्खानय उषः सूर्यस्य मार्गं विदधाति सम्पूर्णमपि जगत् प्रशस्तं द्योतयति च तस्य प्रकाशेन तथैव सूनृतया सुमङ्गलया च कन्यया सह उद्वाहेन अविद्यान्धकारस्य हानिः, विद्यायाश्च उदयः भवति। विद्यया भूषितानां स्त्रीणां सन्त,तयोऽपि तथैव कुलोत्कर्षाय भवन्ति। तथा हि-

**यावद् द्वेषा सुम्ना रीजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।**
**सुमङ्गलीर्बिभ्रती देवतीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमाः व्युच्छ॥**[3]

**विद्यया परिष्कृता युवतय आत्मनो भर्तुर्विद्यामेव प्रत्यहम् एधयन्ते।**[4]

एवं प्रकारेण ऋग्वेदे स्त्रीशिक्षां दृढतया अनुमोदमानाः नैके मन्त्राः समुपलभ्यन्ते। वैदिकयुगे स्त्रीशिक्षायाः महत्वं सर्वे जानन्ति स्म। वेदेषु यथा पुरुषाः मंत्रद्रष्टारः आसन् तथैव काश्चन् नार्यः अपि यथा ब्रह्मवादिन्यः मैत्रेयी गार्गी लोपामुद्रा समाः स्त्रियः। अतएव वैदिककाले स्त्रीशिक्षा पुरुषशिक्षा इव अनिवार्या आसीत्। कुलस्य तथा समाजस्य उन्नत्यर्थं स्त्रीशिक्षा अनिवार्या खलु। यतः शिक्षिता नारी न केवलं स्वजीवनं सफलीकरोति, किन्तु सा परिवारस्य राष्ट्रस्यापि अभ्युदयं करोति। सुशिक्षिता नारी सर्वत्र पूज्यते। शिक्षितया नार्या समाजः स्वस्थः पुष्टः विकासोन्मुखश्च जायते। समाजे सर्वेषु क्षेत्रेषु स्त्रीशिक्षायाः महत्त्वम् अधुना सर्वत्र स्वीक्रियते इति शम्।

✦✦✦

1. तत्रैव- 1.71.4
2. तत्रैव- 1.113.7-10
3. तत्रैव- 1.113.12
4. तत्रैव- 1.124.11

# भट्टिकाव्यशिक्षणे सङ्गणकस्य उपयोगिता

नितिन शर्मा*

**शास्त्रं काव्यं शास्त्रकाव्यं काव्यशास्त्रं च भेदतः।**
**चतुष्प्रकारः प्रसरः सतां सारस्वतो मतः॥**

भारतीयशास्त्रपरम्परायां एतादृशः ग्रन्थाः सन्ति ये केवलम् एकेन शास्त्रेण सम्बन्द्धाः न सन्ति। अर्थात् यत्र काव्येन सहैव गम्भीरशास्त्रीयम् अध्ययनं भवति तद् काव्यं काव्यशास्त्रमितिः उच्यते। एतदर्थमेव "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" इति प्रयोगः हितोपदेशे प्राप्यते।

अस्यामेव काव्यशास्त्रपरम्परायाम् इदं भट्टिकाव्यं व्याकरणशास्त्रस्य अध्यापनार्थं महाकविभट्टिः लिखितवान्। व्याकरणं स्वस्य नीरसक्लिष्टप्रकृत्याः कारणात् विकासकर्तु स्वयं बाधकं भूतं प्रतीयते। अतः एतस्य सरलीकरणस्य कार्यं महाकविभट्टिः कृतवान्। सः व्याकरणस्य शिक्षायै काव्यस्य आश्रयं स्वीकृतवान्। मन्यते यत् राजपुत्रेभ्यः व्याकरणस्य शिक्षां दातुं भट्टिना ग्रन्थस्यास्य रचना कृता।

काव्यमेतद् लक्ष्यलक्षणात्मकं वर्तते। रामकथाश्रयेण उपनिबद्धस्य एतस्य ग्रन्थस्य स्वरूपद्वयं वर्तते। अस्य ग्रन्थस्य उपविभागरूपेण चत्वारः काण्डाः विद्यन्ते।

- **प्रकीर्णकाण्डः (प्रथमतः पञ्चमसर्गपर्यन्तम्)**- प्रकीर्णशब्दस्य अर्थः अस्ति-मिश्रितः। अस्मिन् काण्डे व्याकरणस्य नियमानां काव्यात्मकस्वरूपस्य च मिश्रणं दृश्यते। व्याकरणात्मकनियमाः क्रमबद्धरूपेण न सन्ति अतः अस्य काण्डस्य नाम्नः सार्थकता सिद्धा भवति।
- **अधिकारकाण्डः (षष्ठसर्गतः नवमसर्गपर्यन्तम्)**- व्याकरणशास्त्रे अधिकारसूत्रं गृहस्य दीपकवत् सम्पूर्णशास्त्रं प्रकाशयति। दृष्टिविशेषेण अधिकारः त्रिविधः भवति। सिंहावलोकनम्, मण्डूकप्लुतिः, गङ्गाप्रवाहः भट्टिना अधिकारकाण्डे प्रमुखरूपेण क्रियाणां प्रयोगसम्बद्धनियमानां विवरणं प्रस्तुतम्।

---

* (शोधच्छात्रः), केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय, श्रीरणवीरपरिसरः कोटभलवालः, जम्मूः।

- **प्रसन्नकाण्डः (दशमसर्गतः त्रयोदशसर्गपर्यन्तम्)**- अस्मिन् काण्डे कविः कवित्वप्रतिभायाः परिचयेन सह भट्टिकाव्यस्य काव्यशास्त्रीयस्वरूपमपि सिद्धं करोति। अस्य चत्वारः उपविभागाः वर्तन्ते- अलङ्कारः (दशमसर्गः), माधुर्यम् (एकादशसर्गः), भाविकत्त्वम् (द्वादशसर्गः) भाषा-समः (त्रयोदशसर्गः)।
- **तिङन्तकाण्डः (चतुर्दशसर्गतः द्वाविंशतिसर्गपर्यन्तम्)**- अस्य काव्यस्य चतुर्दशसर्गतः द्वाविंशतिसर्गपर्यन्तं प्रतिसर्गम् एकैकस्य लकारस्य प्रायोगिकदिग्दर्शनम् अस्ति।

**वेदाङ्गेषु व्याकरणम्-**

षड् वेदाङ्गानि मन्यन्ते-

**शिक्षा व्याकरणं छन्दो निरूक्तं ज्योतिषं तथा।**
**कल्पश्चेति षडङ्गानि वेदस्याहुर्मनीषिणः॥**

तत्र व्याकरणस्य प्रमुखं स्थानमस्ति। उक्तञ्च- **'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च'** इति। **प्रधानं च षट्स्वङ्गेषु व्याकरणम्।** व्याकरणशिक्षायाः ज्ञानेन विना छात्राः शुद्धरूपेण भाषाज्ञानं न प्राप्तुं शक्नुवन्ति। व्याकरणेन भाषा व्यवस्थितं क्रियते। व्याकरणं लक्षणशास्त्रं न अपितु इदं लक्ष्यशास्त्रमस्ति। तथा च अस्य अध्ययनं भाषाशुद्धतायाः कृते क्रियते। भाषां व्यवस्थितकरणाय तस्य विश्लेषणम् आवश्यकं भवति। इदं विश्लेषणं व्याकरणेन एव भवति। व्याकरणेन एव भाषारचनाज्ञानं भवति। व्याकरणशिक्षणाभावे रचनायाः अनुवादस्य च शिक्षा अपूर्णा। वाक्यरचनायाः आधारः व्याकरणमेव अस्ति। शब्दरचना अपि व्याकरणेन एव सम्भवा। अतः व्याकरणस्य उपेक्षां न कर्तुं शक्नुमः। उक्तञ्च-

**यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम्।**
**स्वजनः श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृच्छकृत्॥**

ब्रह्मा संस्कृतस्य आदि ज्ञाता अस्तीति मन्यते। तदुक्तम्- **बृहस्पतिरिन्द्राय दिव्यं वर्षसहस्रं प्रतिपदोक्तानां शब्दानां शब्दपापायणं प्रोवाच नान्तं जगाम।**

संस्कृतभाषायां व्याकरणस्य विशेषमहत्त्वमस्ति। पाणिन्यष्टाध्यायी नामकः ग्रन्थः सर्वश्रेष्ठः व्याकरणग्रन्थोऽस्ति। महर्षिपतञ्जलिना महाभाष्यारम्भे लिखितम्- **'अथ शब्दानुशासनम्। केषां शब्दानां? लौकिकानां वैदिकानां च।'** अतः व्याकरणं न केवलं शब्दानां शासनं करोति अपितु तेषाम् अनुशासनं करोति। भाषायाः यः प्रवाहः जनेन व्यवह्रियते सः प्रवाहः व्याकरणेन व्यवस्थीयते। तेन प्रचलितानि भाषायाः निमानि

अन्वेषति। व्याकरणं केवलं व्याकरणनियमान् अन्वेषति न तु नूतनानि नियमानि निर्मीत। अतः व्याकरणं शब्दानुशासनं कथ्यते। अधुना जनाः व्याकरणं प्रपञ्चं अववोधयन्ति। केचन भाषाज्ञानार्थं व्याकरणस्य शिक्षा आवश्यकं न मन्यते। इदं मते अन्य भाषायाः कृते उपयुक्तः किन्तु संस्कृतस्य कृते घातको जायते। अतः शुद्धं परिष्कृतञ्च संस्कृतविधिगमनाय व्याकरणज्ञानम् अनिवार्यमस्ति।

प्राचीनकाले व्याकरणशिक्षायाः महत्ती प्रचलनम् आसीत्, यः जनः व्याकरणस्य ज्ञानं न जानाति स्मः, तं संस्कृतसमाजे आदरं न मिलति स्मः। अस्मिन् विषये एका किंवदती वर्तते यत्-

एकः पण्डितः स्वपुत्रीं एकं शिष्यञ्च एकेन सह व्याकरणं पाठयति स्मः। शिष्यः चरित्रवान् कुलीनञ्च आसीत्। अतः पण्डितः स्वसुतायाः विवाह तेन शिष्येन सह कर्तुमिच्छति। एकदा तेन स्वपुत्रीसमक्षं इदं प्रस्तावः स्थापितः तया इमं न स्वीकृतवत्ती, उक्तञ्च-

**यस्य षष्ठी चतुर्थी च विहस्य च विहाय च।**
**यस्याहं द्वितीयास्याद् द्वितीयास्याहं कथम्॥**

यदा वैदिकसंस्कृतस्य समाप्तिः लौकिकसंस्कृतस्य च प्रादुर्भावो अभवत्। तदा संस्कृतभाषायाः क्षेत्रे महत्ती अव्यवस्था प्रसरन्ति स्मः। ततः विद्वान्सः एकस्य नूतनस्य व्याकरणस्य आवश्यकता अनुभवति स्मः। एतस्मिन्नेव काले पाणिनेः प्रादुर्भावो अभवत्। पाणिनिना अष्टाध्यायीः नामकं ग्रन्थं रचयित्वा व्याकरणाभावं पूरितः। अष्टाध्यायीः एकः अद्भूतः ग्रन्थः अस्ति। अस्मिन् ग्रन्थे एतावत् सूक्ष्मेण विश्लेषणं कृतवान् तथा च सूक्ष्मातिसूक्ष्मनियमानां प्रतिपादनं एतावतमौलिकतया कृतवान् यत् भारतवर्षमेव न अपितु विश्वस्य विदुषः पाणिनीप्रतिभाषां आश्चर्यो भवति।

अयं ग्रन्थः न केवलं व्याकरणनियमानां सङ्कल्पमात्रो अपितु भाषाविज्ञानोपरि व्याकरणोपरि च सर्वोत्कृष्टा मौलिका रचना अस्ति। अस्य ग्रन्थस्य रचना सूत्रप्रणाल्या अभूत्। पाणिनिना एकमपि पदं व्यर्थं न प्रयुक्तम्। अधुनापि विद्वज्जनाः सूत्रप्रणालीं समादरन्ति। उक्तञ्च- **'अर्थमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यते वैयाकरणाः'**।

**व्याकरणशिक्षणस्य विधयः**- व्याकरणस्य शिक्षणं प्रायः सर्वे नीरसं शिक्षणं स्वीकुर्वन्ति। परञ्च व्याकरणस्य पाठः रूचिकरं भवेत् एतस्मात् कारणात् विभिन्नानां विधिनां प्रयोगं भवति। यदा परम्परागतरूपेण एकेन विधिना च व्याकरणस्य शिक्षणं भवति तदा सः विधिः छात्रेषु भाषां प्रति अरूचिम् उत्पन्नं करोति। संस्कृतव्याकरणं छात्राणां कृते रूचिकरं भवेत्। अतः नवीनानां विधीनां प्रविधीनां युक्तीनाञ्च प्रयोगम्

अपेक्षते। संस्कृतव्याकरणस्य शिक्षणस्य विधिषु अपि कालक्रमेण परिवर्तनम् अभवत्। तेषु केचन् विधयः सन्ति यत्-

**व्याख्यापद्धतिः**- व्याख्यापद्धतौ शिक्षकः प्रतिपदम् आदाय तस्य अर्थः स्पष्टं करोति। तत्र समास-विग्रहः सन्धिविच्छेदः व्युत्पत्तिः बोधयन् वाक्यम् अनुच्छेदञ्च स्पष्टयति। ततः पाठस्य सारांशः भावार्थश्च स्पष्टयति। व्याख्यानविधिः अस्यापरनाम। व्याख्यायाः षड् अङ्गानि सन्ति। उक्तञ्च-

**पदच्छेदः पदार्थोक्तिर्विग्रहो वाक्ययोजना।**
**आक्षेपोऽथ समाधानं व्याख्या षड्वधं स्मृतम्॥**

अधुनाऽपि अस्याः पद्धत्याः प्रयोगो केषुचित् विद्यालयेषु महाविद्यालयेषु च भवति।

**सूत्रविधिः**- अस्यां पद्धतौ अध्यापकः प्रथमं सूत्रं पाठयति, ततः सूत्रस्य वृतिं स्पष्टयति। अन्ते उदाहरणानि प्रस्तौति। यथा- "इको यणचि" इति सूत्रं तस्य वृत्तिः- "इकः स्थाने यण् स्यादचि परे संहितायां विषये"। उदाहरणानि- मध्वरिः, लाकृतिः इत्यादि।

**आगमनविधिः**- एषा पद्धतिः संस्कृतव्याकरणशिक्षणे महर्षिपाणिनीपतञ्जलि-महाभागयोः महत्त्वपूर्णं देनमस्ति। एषा पद्धतिः मनोविज्ञानस्य "ज्ञाताद अज्ञातं प्रति" शिक्षणसूत्रस्यानुसरणं करोति। अस्यां पद्धतौ प्रथमम् अध्यापकः उदाहरणानि प्रस्तौति, ततः छात्रान् प्रश्नाः पृच्छति छात्राश्च उत्तराणि ददाति। अत्र उदाहरणानाम् औचित्ये एव पाठस्य सरलता च निर्भरं करोति।

सोपानानि- 1. उदाहरणानि, 2. नियमीकरणम्।

**आगमनपद्धतिं प्रस्तूतीकरणे आवश्यकतत्त्वानि-**

- बालकानां कृते ज्ञानानुकूलानि, अवसरोचितानि उदाहरणानि स्युः।
- पूर्वज्ञानाधारितानि उदाहरणानि।
- अध्यापकः "ज्ञाताद् अज्ञातं प्रति", "विशेषात् सामान्यं प्रति" गच्छेत्।
- उदाहरणानि विशिष्टनियमेन आबद्धाः स्युः।

यथा- शश + अङ्कः- शश्+अ + अङ्कः
शश + आ + ङ्कः
श + शा + ङ्कः- शशाङ्कः।

सिद्धान्तः- "अकः सवर्णे दीर्घः"- अकः सवर्णेऽचि परे दीर्घ एकादेशः स्यात्।

**निगमनविधिः**- एषा पद्धतिः आगमनपद्धत्याः पूरकः। अस्मिन् पद्धतौ प्रथमं नियमम् उपस्थापयति ततः उदाहरणानि। अस्याः पद्धत्याः सोपनानि-

● नियमम्, 2. उदाहरणानि (प्रयोगाः)

यथा- नियमम्- "इको यणचि" इकः स्थाने यण् भवति अचि परे संहितायां विषये।

उदाहरणानि- मध्वरिः- मधु + अरिः (उ + अ- व)

एषा पद्धतिः मनोविज्ञानस्य "अज्ञातात् ज्ञातं प्रति", "सामान्यात् विशेषं प्रति" शिक्षणसूत्रस्य अनुसरणं करोति।

**सहयोगपद्धतिः**- अस्यां पद्धतौ अध्यापकः रचनाऽनुवाददीनां सम्बन्धितनियमानां व्याख्यां करोति। तथा च छात्रान् तदनुकूलरचनाकरणाय अनुवादकरणाय च प्रेरयति। यथा- हिन्दीतः संस्कृते, संस्कृतात् हिन्द्याम्।

अस्याः पद्धत्याः प्रवर्तकाः व्याकरणस्य पृथक् शिक्षणस्य समर्थकाः न। अस्या रचना, अनुवादपाठ्यपुस्तकशिक्षणावसरे एव व्याकरणं पाठ्यते न तु एकल रूपेण।

**अनुवादपद्धतिः**- अस्यानुसारं सर्वप्रथमं विकल्परूपेण एकं संस्कृतवाक्यं कृतवान् यः 1808 तमे वर्षे प्रकाशितम् अभवत्।

वामनशिवराम आप्टे सोमेश्वररामचन्द्रकार्लेमहाभागौ स्वकीयेषु पुस्तकेषु अस्याः पद्धत्याः प्रयोगः कृतौ। अस्याः पद्धत्याः प्रयोगः अधुनाऽपि अनेकेषु विद्यालयेषु विश्वविद्यालयेषु च भवन्ति। भारतवर्षे सर्वप्रथमं भण्डारकरमहोदयेन अस्याः पद्धत्याः प्रयोगो कृतः।

**संसर्गविधिः**- अस्यानुसारं व्याकरणशिक्षणं भाषाशिक्षया सदैव पात्तव्यम् यतोहि शुद्धप्रयोगस्तु अचेतनरूपे एव भाषणेन, पठनेन, लेखनेन एव अधिगम्यते। अव्याकृतिः विधिः अस्यापरं नाम। अस्यानुसारं छात्रान् शुद्धं ज्ञानं दात्तव्यम्। अस्याः प्रणाल्याः आधारोऽस्ति यत् मातृभाषा गृहे एव स्वाभाविकरूपेण व्याकरणशिक्षां विना अधिगन्तुं शक्यते तर्हि अनेन प्रकारेण संस्कृतमपि अधिगन्तुं शक्यते। एषा विधिः व्याकरणं शिक्षणस्य विरोधं करोति अतः एषा पद्धति अनुचिताः। अस्याः पद्धत्याः प्रयोगः केवलं प्राथमिकीषु कक्षाषु एवं कर्त्तुम् शक्नुमः।

**पाठ्यपुस्तकविधिः**- एषा पद्धतिः पाठ्यपुस्तकोपरि आधारितमस्ति। अस्यां अध्यापकः प्रथमं आदर्शवाचनं करोति, छात्राश्च ध्यानपूर्वकं शृणवन्ति। ततः छात्राः अनुवाचनं करोति। अध्यापकः कठिन-शब्दानाम् अर्थं स्पष्टयति। अधुना अस्याः

पद्धत्याः प्रयोगो अधिकं भवति।

**प्रौद्योगिकीशिक्षा**- प्रौद्योगिकी शब्दस्य अभिप्रायः वर्तते यत् दैनिकजीवने वैज्ञानिकज्ञानस्य उपयोगः। प्रौद्योगिक्याः आधारं विज्ञानं विद्यते, यत् एकं क्रमबद्धं ज्ञानम् अस्ति। एषा प्रयोगानुभवयोः आधारितम् अस्ति। प्रौद्योगिकी विज्ञानस्य प्रायोगिकम् अथवा कौशलात्मकं पक्षः अस्ति। तस्याः सहायतया दैनिकजीवनस्य भिन्नकार्यं सम्पन्नं भवति। प्रौद्योगिकी शब्दः ग्रीकभाषायाः Technitos शब्दाद् प्रसरति यस्य अर्थं वर्तते यत् कला। ओफीशः महोदयानुसारं "कलायां विज्ञानस्य उपयोगं प्रौद्योगिकी वर्तते।" सम्प्रति समाजस्य सभ्यतासंस्कृत्योः निर्माणे विज्ञानं प्रौद्योगिकी च महत्त्वपूर्णा भूमिका अस्ति। समाजे जीवनस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे सार्थकतां प्राप्तकरणाय विज्ञानस्य प्रौद्योगिक्याश्च सिद्धान्तानां निष्कर्षानाञ्च मूर्तरूपस्य आरम्भम् अभवत्। इत्थं तारतम्ये शिक्षायाः क्षेत्रे एकस्याः नवीनायाः विधायाः आरम्भः अभवत् यस्य नाम शैक्षिकप्रौद्योगिकी आसीत्।

शैक्षिकप्रौद्योगिकी द्वयोः शब्दयोः मेलनात् निर्मित्तं अस्ति- शिक्षा प्रौद्योगिकी च। शिक्षयोः प्रौद्योगिक्योश्च परस्परं घनिष्ठ रूपेण सम्बन्धम् अस्ति। शिक्षा छात्रस्य मूलप्रवृत्तीषु शोधनं परिमार्जनञ्च कृत्त्वा तस्य व्यवहारे वाञ्छितं परिवर्तनं करोति। परञ्च प्रौद्योगिकी मूलप्रवृत्तीषु शोधनं परिमार्जनञ्च कृत्त्वा तस्य व्यवहारे यत् वाञ्छितं परिवर्तनम् अपेक्षते तस्य दिशानिर्देशनं करोति।

शैक्षिकप्रौद्योगिकी प्रयोगात्मकं व्यवहारात्मकञ्च शिक्षणसमस्यां ज्ञात्वा तेषां निवार्णाय सहायकं भवति। सामान्यरूपेण शैक्षिकप्रौद्योगिक्याः तात्पर्यं शिक्षायाः क्षेत्रे विभिन्नानां नवीनानां यन्त्रानां प्रयोगं कृत्त्वा शिक्षणस्य सरलीकरणं भवेत् अर्थात् शैक्षिकप्रक्रियां यदा दूरदर्शनं, रेडियो, सङ्गणकादि यन्त्रेण सम्पादितं भवति तदा शिक्षाप्रौद्योगिक्याः प्रयोगं कृत्त्वा शैक्षिकप्रक्रिया सम्पन्ना भवति। शिक्षायाः क्षेत्रे आधुनिकतमयन्त्राणां प्रयोगेण शिक्षाप्रक्रियायाः यन्त्रीकरणम् अभवत्। आधुनिककाले कक्षायां शिक्षां दातुं सङ्गणकस्य महत्त्वपूर्णा भूमिका अस्ति।

सङ्गणकेन तात्पर्यम् एतादृशेण विद्युतयन्त्रेण अस्ति यस्य कार्यक्षेत्रम् अत्याधिकं व्यापकम् अस्ति। सङ्गणकः शिक्षाचिकित्सावाणिज्यव्यापारोद्योगप्रयोगशालायाञ्च अत्याधिकं तीव्रगत्यां कार्यं करोति। शिक्षायाः क्षेत्रे सङ्गणकेन नवीनानाम् अविष्काराणां निर्माणम् अभवत्, सम्प्रति सङ्गणकेन बहूना अविष्काराणाम् उपरि कार्यं चलति। शिक्षायाः क्षेत्रे सङ्गणकं संचारस्य महत्त्वपूर्णं साधनम् अस्ति। भारते प्राथमिकस्तरात् उच्चस्तरपर्यन्तं शिक्षा सङ्गणकेन भवति। यतोहि सङ्गणकः एतादृशः माध्यम अस्ति येन अधिगमसामग्रीं सुस्पष्टतया छात्राणां समक्षे उपस्थितं भवति।

**भट्टिकाव्यशिक्षणे सङ्गणकस्य उपयोगिता-**

छात्रः उच्चस्तरे सङ्गणकेन शिक्षणं द्विविधं प्राप्तुं शक्नोति-औपचारिकः अनौपचारिकश्च। औपचारिकमाध्यमेन छात्रः महाविद्यालये विश्वविद्यालये गत्वा शिक्षां प्राप्नोति। अनौपचारिकमाध्यमेन छात्रः स्वयं गृहे स्थित्वा शिक्षां प्राप्नोति। भट्टिकाव्यशिक्षणे तेषु कानिचन प्रकाराणि अधोलिखितम् अस्ति-

भाषाप्रयोगशालायां सङ्गणकस्य महत्त्वम्- भाषाप्रयोगशालायां सङ्गणकः एका नवीनोपलब्धिरस्ति। अस्य प्रयोगः अनेकेषु क्षेत्रेषु क्रियामाणो अस्ति। अयम् अस्माकं जीवनस्य अभिन्नाङ्गमिव अनुभूयमानं प्रतीयते। इदं यन्त्रं यान्त्रिकानुवादे, कृत्रिमवाग्संश्लेषणे, पाठविश्लेषणे कोशनिर्माणे विज्ञानद्यनेकक्षेत्रेषु सार्थकरूपेण उपयोगी विद्यते। भाषाशिक्षणे अपि अस्य विशिष्टा भूमिका विद्यते। नवीनभाषाशिक्षणेच्छुकाः छात्राः अस्य सहायतया प्रभविष्णुतया तथा अल्पसमये एव भाषां शिक्षितुं शक्नुवन्ति। यतो हि अनेन सूचनानां प्रतिपुष्टिः शीघ्रतया भवति। अनेन त्रुटिनां ज्ञानं जायते।

छात्राणां कृते भाषादक्षतासम्बद्धा सूचनोपलब्धा भवति। तथा सम्प्रति आसां सूचनानाम् आधारेण छात्रविशेषेण आवश्यकतानुसारं पाठनिर्देशाः पाठाभ्यासः च प्राप्यन्ते।

विभिन्नशोधकार्यैः इदं सिद्धं यत् संस्कृतभाषा सङ्गणकाय सर्वाधिका उपयुक्ता भाषा अस्ति। अतः संस्कृतशिक्षणाय अस्य प्रतिमानस्य प्रयोगः करणीयः यतो हि अस्मिन् शिक्षणस्य निदानस्य च क्रियाः युगपदेव चलन्ति। अनेन कारणेन सङ्गणकमाध्येन एव शिक्षकः छात्राणां शङ्कानां निदानं कर्तुं शक्नोति। तेषां कृते पृथक् निदानात्मकपरीक्षणपत्रस्य आवश्यकता नास्ति। सङ्गणके सङ्ग्रहणकरणस्य अद्वितीया क्षमता भवति। नैकच्छात्राणां सामान्यत्रुटीनां सङ्ग्रहः शिक्षणेन सह स्वतः एव सङ्गणके भवति। तेषां सङ्कलितत्रुटीनाम् आधारेण शिक्षकः सङ्गणके उपचारात्मककार्यक्रमं प्रस्तुतीकर्तुं शक्नोति, तथा अनेन प्रकारेण उपचारात्मकानुदेशनं कुर्वन् छात्राणां शङ्कानां समाधानं कर्तुं शक्नोति। साम्प्रतं सङ्गणके मौखिकाभिव्यक्तेः क्षमता अपि अस्ति। अतः अद्य सङ्गणकीययुगे अयं संस्कृतशिक्षणाय अधिकरूचिकरः नवीनतमः उपागमोऽस्ति। अस्मिन् छात्राः स्वतः सङ्गणकपटले स्वत्रुटिं दृष्ट्वा श्रुत्वा च अवगन्तुं शक्नुवन्ति। अतः उपचारात्मकानुदेशनस्य प्रभावः छात्रेषु अधिकः पतति। संस्कृतशिक्षकैः अपेक्ष्यते यत् तेषां विद्यालयेषु भाषाप्रयोगशालासु सङ्गणकानां व्यवस्था भवेत् तर्हि तेषां प्रयोगे ते तत्परोः स्युः।

**PPT माध्यमेन भट्टिकाव्यशिक्षणम्**- PPT माध्यमेन भट्टिकाव्यशिक्षणं सरलतया दातुं शक्नुमः। यदा अध्यापकः छात्राय भट्टिकाव्यविषये किमपि पाठितुम् इच्छति तर्हि सः PPT इति माध्यमस्य प्रयोगं कर्तुं शक्यते। यतोहि PPT एतादृशः माध्यमः अस्ति

येन सरलतया छात्रं भट्टिकाव्यशिक्षणं भवितुम् अर्हति।

व्याकरणशिक्षणस्य माध्यम PPT भवितुम् अर्हति। यदि साहित्यस्य कस्मिन् ग्रन्थे भूधातोः प्रयोगं बारं बारं कृतम् अस्ति एवं भूधातोः विभिन्नानां रूपाणां प्रयोगं कृत्तम् अस्ति तर्हि तस्य PPT निर्माय छात्राणां कृते शिक्षणं भवितुम् अर्हति यथा– भट्टिकाव्यस्य कानिचन् उदाहरणानि।

इत्थं प्रकारेण प्रत्ययलकाराणां विषये अपि भवितुम् अर्हति। यथा–

**भट्टिकाव्यशिक्षणे श्रव्यदृश्यमाध्यमस्योपयोगः**– श्रव्यदृश्यमाध्यमेन छात्राणां कृते भट्टिकाव्यस्य एकं श्लोकं श्रावित्वा दर्शित्वा च तस्मिन् श्लोके यत् कठिनाः शब्दाः सन्ति तेषां विषये ज्ञानं दत्त्वा भट्टिकाव्यस्य शिक्षणं भवितुम् अर्हति। यथा–

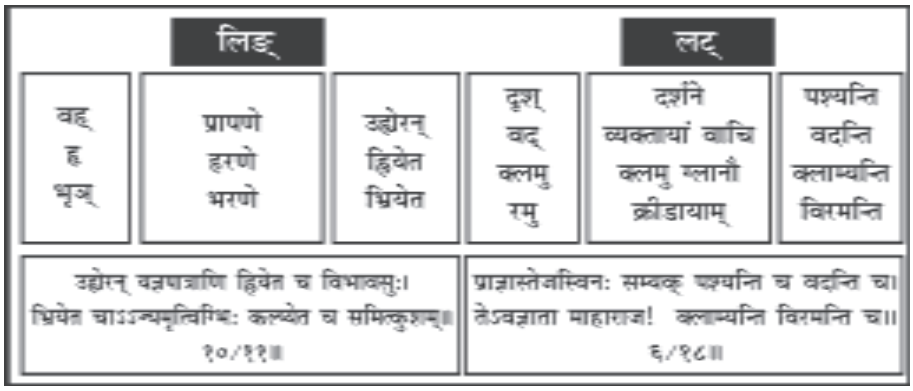


**भ्रेमुर्ववल्गुर्ननृतुर्जजक्षुर्जगुः समुत्पुप्लुविरे, निषेदुः।**
**आस्फोटयांचक्रुरभिप्रणेदू रेजुर्ननन्दुर्विययुः समीयुः॥**

सङ्गणक द्वारा एतं श्लोकं श्रावित्वा दर्शित्वा च श्लोके कठिनाः शब्दाः कुतः स्वीकृताः सन्ति एतद् इत्थं प्रकारेण पाठितुं शक्यते–

- भ्रेमुः– भ्रमु अनवस्थाने दिवादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- ववल्गुः– वल्ग् गतौ भ्वादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- ननृतुः– नृत् गात्रविक्षेपे दिवादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- जजक्षुः– जक्ष भक्षहसनयोः अदादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- जगुः– गै शब्दे भ्वादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- समुत्पुप्लुविरे– सम्+उत् पूर्वकं प्लु गतौ भ्वादिगणः आत्मनेपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- निषेदुः– नि पूर्वकं सद् विशरणगत्यवसादनेषु तुदादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- आस्फोटयांचक्रुः– आङ् पूर्वकं स्फुट् भेदने चुरादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)

- अभिप्रणेदुः- अभि+प्र पूर्वकं णद् समृद्धौ भ्वादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- रेजुः- राज् दीप्तौ भ्वादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- ननन्दुः- टुनदि (नन्द्) समृद्धौ भ्वादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)
- विययुः- वि पूर्वकं या प्रापणे अदादिगणः परस्मैपदं लिट् लकारः प्रथमपुरुषः बहुवचनम् (भ.का. 13.28)

**भट्टिकाव्यशिक्षणे जालस्थानकस्योपयोगः**- भट्टिकाव्यशिक्षणे जालस्थानकस्य प्रयोगाः भवितुम् अर्हति। यथा कस्यचित् छात्रस्य पार्श्वे पुस्तकानि न सन्ति तर्हि सः जालस्थानकात् पुस्तकानि स्वीकृत्यः तेषाम् अध्ययनं कर्तुम् सिद्धो अस्ति। भट्टिकाव्यशिक्षणाय प्रमुखं जालस्थानकं सन्ति यत्-

| | |
|---|---|
| www.sanskrit.nic.in | www.googlebooks.com |
| www.wikipedia.org | www.archive.com |

इतोपि व्याकरणस्य शिक्षाय एकं जालस्थानकं बहुशीघ्रतया प्रसिद्धं जातम्। तस्य नाम 'संसाधनी' नाम्ना प्रसिद्धं जातम्। तस्य निर्माणं हैदराबादविश्वविद्यालयात् अभवत्।

**भट्टिकाव्यशिक्षणे मृद्युपागमस्य (APP) उपयोगः**- भट्टिकाव्यशिक्षणे यदा मृद्युपागमस्य नाम आगच्छति तदा मुक्तकण्ठ्या एकः नाम एव आगच्छति प्रो० मदनमोहनझा। प्रो० मदनमोहनझामहोदयेन विरचितः व्याकरणमृद्युपागमस्य प्रयोगः बहवः छात्राः कुर्वन्ति। तेषु प्रमुखाः "सिद्धान्तकौमुदी", "सिद्धान्तकौमुदी", "पाणिनि अष्टाध्यायी", "शब्दकल्पद्रुम", "शब्दरूपमाला", "अष्टाध्यायी सूत्रानुक्रमणिका", "धातुरूपमाला" च सन्ति। एतदर्थं भट्टिकाव्यशिक्षणे अध्ययने च मृद्युपागमस्योपयोगः भवति। अमरकोशः नामक मृद्युपागमस्य निर्माणमपि प्रो० मदनमोहनझामहोदयेन एव कृतम् अस्मिन् मृद्युपागमे शब्दकल्पद्रुमवाचस्पत्याभ्याम् सह अमरकोशः एवं आप्टेशब्दकोशस्यापि सङ्कलनमपि अस्ति।

**निष्कर्षः**- भट्टिकाव्यशिक्षणे सङ्गणकस्य एतादृशः उपयोगेन भट्टिकाव्यशिक्षणं सरलतया एवं सुस्पष्ठतया भवितुम् अर्हति प्राचीनकाले यत्र रटनप्रक्रियाम् उपरि छात्राः बलं ददाति तत्रैव सङ्गणकस्योपयोगेन छात्राः विषयं स्पष्टतया ज्ञातुं शक्नुवन्ति। PPT इत्यादीषु प्रयोगं कृत्वा छात्राय व्याकरणस्य ज्ञानं सरलं सुदृढं भवति। अतः

आधुनिकशिक्षणव्यवस्थासु सङ्गणकस्य प्रयोगं विस्तृतरूपेण अध्यापकाः कुर्वन्ति। येन कारणेन छात्राः सरलतया विषयं ज्ञातुम् शक्नुवन्ति। यदा छात्रः मात्रं पुस्तकेन पठति तदा तस्य विषयस्य बोधनं भवति परञ्च यदा सः सङ्गणकेन पठति तदा न तु मात्र विषयस्य बोधनं भवति अपितु विषयस्य सुदृढीकरणं भवति। अतः शिक्षणकाले सङ्गणकस्यावश्यकता तु अस्ति एव। इति।

## सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अष्टाध्यायी, व्याख्याकार पं. ईश्वरचन्द्र, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2017
2. परिभाषेन्दुशेखरः, व्याख्याकार आचार्य विश्वनाथ मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
3. पाणिनीयशिक्षा, सम्पादक बालकृष्णशर्मा, निवासरथः उज्जयिनीस्थ-कालिदास-अकादेमी-निदेशकः. विक्रमसंवत् 2050
4. भट्टिकाव्यम्, व्याख्याकार पं. शेषराज शर्मा रेग्मी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 2015
5. लघुसिद्धान्तकौमुदी, व्याख्याकार गोविन्द प्रसाद शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2017
6. वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, सम्पादिका लक्ष्मी शर्मा, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
7. व्याकरण-महाभाष्यम्, अनुवादक चारुदेवशास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2017
8. सुवृततिलकम्, व्याख्याकार श्री पं. व्रजमोहनझा, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, 1968

✦✦✦

# काश्मीरमण्डलीयशैवागमे योगस्य षडङ्गतायाः स्वरूपम्

**अभिषेककुमार उपाध्यायः***

भारतीयज्ञानपरम्परायां काश्मीरप्रदेशः स्वविशिष्टस्थानं भजते। अत्र शोभमानाया भगवत्याः शारदादेव्याः कृपाकटाक्षप्रसादादनेकैराचार्यैर्नानाशास्त्रीयग्रन्थाः प्रणीताः। तत्रापि अभिनवगुप्ताद्याचार्याणां सुमहती दीर्घा दार्शनिकी परम्परा सुविख्याता एव पवित्रमिदं स्थानं योगसाधनायाः प्रमुखं केन्द्रं विधते। प्रस्तुतेऽस्मिन् शोधपत्रे काश्मीरमण्डलीयशैवागमे योगस्य षडङ्गतायाः स्वरूपमिति शीर्षकमधिकृत्य यथाबुद्धि प्रतिपाद्यते। काश्मीरमण्डलस्य योगपरम्परायाः परिचयः श्रीकण्ठात् एव प्राप्यते। श्रीकण्ठः सर्वप्रथमं दुर्वासं प्रति शैवागमज्ञानपरम्परायाः ज्ञानम् उपदिष्टवान्। तदनन्तरं दुर्वासा एव स्वयोगसाधनामाध्यमेन मानसपुत्रत्रयाय सर्जनं कृतवान्। तेषु त्र्यम्बकानाथः, आमर्दकनाथः तथा च श्रीनाथादयः आसन्। एतेषां त्रयाणां मानसपुत्राणां माध्यमेन एव शैवसाधनायां योगस्य सिद्धिः सञ्जाता।[1] तत्पश्चात् त्र्यम्बकादित्य-सङ्घामादित्य-वर्षादित्य-अरुणादित्य-आनन्द-सोमानन्दादीनां शैवयोगसिद्धाचार्याणां अस्या ममलधरायामवतरणम् अभवत्। आचार्यसोमानन्दस्य पद्यमिदं प्रमाणम्-

**शैवादीनिरहस्यानि पूर्वमासन् महात्मनाम्।**
**ऋषीणां वक्त्रकुहरे तेष्वेवानुग्रहक्रिया॥**
**कलौ प्रवृत्ते यातेषु दुर्गमगोचरे।**
**कैलाशाद्रौ भ्रमन् देवो मूर्त्या श्रीकण्ठरूपया॥**[2]

अनेन प्रकारेण शैवयोगज्ञानपरम्परायाः स्वरूपं सुविशालं वर्तते। अस्यां ज्ञानपरम्परायां योगः षडङ्गप्रकारेण विभज्यते। तत्रापि सत्तर्कः सर्वोत्तम इति मन्यते। एतेषां षडङ्ग-योगतत्त्वानां सामान्यस्वरूपमत्र प्रस्तूयते।

---

* अनुसंधाता, सर्वदर्शनविभागः, श्रीलालबहादुरशास्त्रिराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली

1. त्रिकशास्त्ररहस्यप्रक्रिया, पृष्ठसंख्या, 7
2. शिवदृष्टिः, आह्निक, 7, श्लोकसंख्या, 1-2

**काश्मीरमण्डलीयशैवागमे योगस्य षडगङ्तायाः स्वरूपम्**- आगमवाङ्मयस्य विषयवस्तु चतुर्धा ज्ञानयोगक्रियाचर्यारूपेण प्राप्यते। येन स्पष्टं प्रतीयते तन्त्रानामाश्रयभूतं विषयवस्तु योगः प्राधान्येन चकास्ति। अभिनवगुप्तपादाचार्यस्य साहित्ये तथा तस्य उपजीव्यमालनीविजयोत्तरतन्त्रे प्रकर्षोऽस्य दृश्यते। तान्त्रिकशिवाद्वयवादे योगस्य नैका विधाः स्वीकृताः सन्ति यत्रापाततः प्रभिन्नत्वेऽपि परस्परं समन्वयो भवति। अत्र पातञ्जलयोगनिष्ठायाः सम्बन्धो भवति।

कश्मीरशिवाद्वयवादे योगस्वरूपज्ञानाय योगिनां भूमिका ध्येयाः, परं सद्वस्तुनः कर्तृत्वं व्याख्यातुं सर्वसन्देहातीतसर्वमान्यसार्वभौमप्रमाणरूपेण योगिनो दृष्टान्तस्यासीदुपयोगः। लोकोत्तरसामर्थ्यस्य लोकोपलब्ध-प्रतीकरूपेण हि योगिनिदर्शनम्। योगपरम्पराप्राप्तेषु अनेकेषु अर्थेषु योगस्य एकोऽर्थ उपलब्धोऽपि अस्ति। अभिनवगुप्तपादाचार्याणां प्रधानशिष्यः श्रीक्षेमराजः योगं परतत्त्वेनैकात्म्यप्राप्तिमेव मन्यते **"ज्ञानं तज्ज्ञेयतत्त्वानुभवं योगं तदैकात्म्यप्राप्तिम्"**।[1] इति ततः प्राक् त्रिकदर्शनस्य मूलभूतागमे मालिनीविजयोत्तरतन्त्रे द्वयोर्वस्तुनोरेकात्मताप्राप्तिर्योगरूपेण स्वीकृता। यथोक्तम्- **"योगमेकत्वमिच्छन्ति वस्तुनोऽन्येन वस्तुना"**।[2]

इतियोगशब्दास्यानेके पारिभाषिकयौगिकरूपेण रूढ़तया स्थिता वा अर्था विद्यन्ते। यथा जीवात्मनां परमात्मना संयोगो योगः प्राणापानयोः संयोगो योगः शिवशक्त्योरेकतायाः सामरस्यं योग इति।सर्वेषु एतेषु अर्थेषु प्राप्तिरेव समन्विता वर्तते। तन्त्रालोके विद्यमान-शैवशासनस्य द्वयोः स्त्रोतसोर्मध्येऽन्यतमे लकुलीशपाशुपतसम्प्रदाये योगपरिभाषायां प्राप्तेरेवानुगमः सुस्पष्टं प्रतीयते। यथोक्तम्-**"चित्तद्वारेण आत्मेश्वरसम्बन्धो योगः"**।[3] अनेन प्रकारेण एव प्रवृत्तिलक्षणो योग इति महाभारतेऽपि उक्तं तथा गीताभाष्ये श्रीभगवदपादशङ्कराचार्योऽपि तमेवार्थं स्वीकृतवान्। वैदिकधर्मग्रन्थेषु वेदबाह्यशाक्यादि-ग्रन्थेष्वपि स एवार्थो गृहीतोऽस्ति। एवं कर्मयोगिनां निष्ठाया योगस्य सम्बन्धो निश्चीयते। श्रीरामकण्ठोऽपि अद्वयवादयोगस्य मूलभूतां निष्ठां कर्मानुष्ठान एवाऽमन्यत। योगशास्त्रस्या-चार्याणां योगपरिभाषायां त्वन्यार्थता प्रतीयते तथापि पूर्वोक्तोऽर्थो व्यज्यत एव। समाधिः योगस्य लोकैर्गृहीतोऽर्थोऽस्ति। युज समाधौ इति दैवादिकात्धातो र्घञि प्रत्यये सति योगशब्दो निष्पद्यते। भगवान् पाणनिर्लोकप्रसिद्ध एवार्थे शब्दसाधुत्वमनुशास्ति। रुधादिगणे युजिर्योगे धातुः पठ्यते। ततोऽपि तथैव योगशब्दः निष्पद्यते। अत्र जीवानां परमात्मना संयोग एव योगशब्दार्थः प्रतीयते। समाधावपि जीवात्मपरमात्मनो र्योगो भवति।

---

1. स्वच्छन्दतन्त्रम्, उत्तरभागः, 3, पृष्ठसंख्या, 141
2. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, अधिकार, 4, श्लोकसंख्या, 4
3. सर्वदर्शनसंग्रहः, पृष्ठसंख्या, 169

महर्षिव्यासोऽपि पातञ्जलयोगसूत्रव्याख्यायां समाधिमेव योगत्वेन स्वीकरोति। तथाहि न्यगादि महर्षिणाः- **"योगः समाधिरिति"**।

भगवतः पतञ्जलेरपि योगश्चित्तवृतिनिरोध इति योगस्य परिभाषा समाधिपादे मता। यथाहि- नानावृत्तिभिश्चित्तस्य व्याकुलीभावेन योगिनः परमात्मना योगो भवति। अद्वैतज्ञाननिष्ठता चौव योगस्य निर्धारिता भवति। सत्यं ज्ञानम् अनन्तं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, सर्वस्यचाहं हृदि सन्निविष्ट इत्येवमादिश्रुतिस्मृतिषु परमात्मैवैकं तत्त्वमन्तर्यामितयाऽद्वैतरूपेण तिष्ठति तथा च समाधौ प्रमुष्टपरिमितप्रमातृत्वेन केवलस्य परमात्मन एवाऽवस्थानं भवति। निर्विकल्पकसमाधावैव तथा दर्शनं भवति। समाधिरेव योगे प्रधान्यं भजते। शेषाणि यमनियमादीनिन्यङ्गानि तस्योपायतां भजन्ति। एवञ्च, साधनायाः साङ्गोपाङ्गप्रकियैव योग इति निगद्यते।

सूक्ष्मदृष्ट्या ज्ञायते यत् परमतत्त्वस्योपलब्धये शिवाद्वययोगः पद्धतिद्वयमुपयुङ्क्ते। प्रथमपद्धतिर्विकल्पसंस्कारः शब्दान्तरेण चित्तवृत्तिसंस्कार उच्यते। द्वितीयपद्धतिश्च वृत्तिक्षयरूपा। वृत्तिक्षयाभिधानायाः पद्धतेरुपयोगः शिवाद्वयवादस्य स्पन्द-सम्प्रदायेऽपेक्षयाऽऽग्रहपूर्वकमभूत्। अत्र कल्लटानुयायिनः वसुगुप्तानुयायिनश्चौकमत्ये वर्तन्ते। कल्लटस्य वशंवदः श्रीरामकण्ठस्तुरीय-स्थितौ सर्वासां वृत्तीनामस्तित्वं मन्यते। वसुगुप्तपक्षस्थः क्षेमराजः सर्वासामितरवृत्तीनां प्रशमनमेव योगस्य परमोपकारकं मनुते।

तथाहि-क्रमेण तयोर्राचायोर्वचनम् **"समस्तवृत्तिप्रत्यस्तमये सति संवित् तुरीयां दशामवश्यमेवाविशति, तत्प्रत्यवमर्शाभ्यासात् परतत्त्वोपलब्धिः"**।[1] इति अनेन प्रकारेण अन्यच्च **"सर्वत्र तावदुपायमार्गे समस्तेतरवृत्ति-प्रशमपूर्वकमेकाग्री-भवन्ति योगिनः"**।[2] उभयोरेवाचार्ययोः समाधौ योगिनां परतत्त्वदर्शनमेव लक्ष्यं मम प्रतिभाति। क्षेमराजमत उपायमार्गे परमात्मव्यतिरिक्तानां सर्वासां वृत्तीनां प्रशमने सत्येव योगिनामेकाग्रता संभवति। एतेन अर्थात् सिद्ध्यति योगिनां परमात्मन्येव पूर्णतया चित्तस्यावस्थानं भवतीति। अमुमेव विषयं कल्लटमतानुलम्बी श्रीरामकण्ठः साक्षात् प्रतिपादयति।

तस्यापि मते समस्तवृत्तीनां विलयः सम्मत एव। अन्यथा संविदस्तुरीयदशाया अनुपलब्धिः प्रसेज्येत। अत एवोक्तं तेन- समस्तवृत्तिप्रत्यस्तमये सतीति। समस्तानां प्रप्रञ्चविषयवृत्तीनां पूर्णतो विलयो यदा भवेत् तदा चिच्शक्तिरूपायाः संविदस्तुरीया दशा भवति। निरुपाधिकचौतन्यस्य दशा भवति इति वेदान्तिनोऽपि वदन्ति। अनुभवन्ति च सर्वे जीवाः सुषुप्तिदशायाम्। तथाहि- भगवान् वादरायणः सूत्रयति-**"तदभावो नाड़ीषु**

1. स्पन्दकारिका, पृष्ठसंख्या, 78
2. स्पन्दनिर्णयः, पृष्ठसंख्या, 39

**तच्छुतेरात्मनि च"**[1] अस्मिन् सूत्रे स्वप्नस्याभावः सुषुप्तिः नाड़ी पुरीरतत्प्रवेशानन्तरं परमात्मन्येव भवतीति प्रतिपाद्यते। जीवस्य परमात्मना योगो जायत इत्याशयः। कथमेवं निर्णय इति जिज्ञासायां श्रुतिरेव निर्णायिका जागर्ति।

सन्दर्भेऽस्मिन् च श्रूयते- **"य एषोऽन्तर्हृदये आकाशस्तस्मिच्छेते यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सौम्य तदा सम्पन्नो भवति प्राज्ञेनात्मना संपरिष्वक्तो न बाह्यं किञ्चन वेद नान्तरम्।"**[2] समस्तप्रापञ्चिकवृत्तिविलये या तुरीयावस्था जायते तस्या एव विमर्शाभ्यासबलात् परमात्मन उपलब्धिर्भवति। उक्तं चौतत् मालिनीविजयोत्तरवार्तिके- **"अनाविशन्तोऽपि निमग्नचित्ता जानन्ति वृत्तिक्षयसौख्यमन्तः"**।[3] अत्र वृत्तिक्षय-सौख्यमेव प्रतिपादयन्ति श्रीमदभिनवगुप्तपादाः। विकल्पराहित्ये सति तथाभूतस्थितिर्भवति। विकल्पानां क्षय एव वृत्तिक्षये संविदः प्राकट्स्यस्य स्थितिरिति कथ्यते। एवञ्च, योगस्यार्थः निष्पद्यते तथाभूतः समाधिरेव योगो भवतीति यत्र सर्वासां वृत्तीनां क्षये संजाते प्रमातृताया अथवा चित्तप्रमातृताया अद्वयानुभवेन कदाचन लोपो भवति। साम्प्रदायिक-दृष्ट्या सा शुद्धविद्योत्पन्ना स्वरूपनिश्चयस्य अवस्थैव प्रोच्यते। यथोक्तम्- सर्वावस्थासु अविलुप्तभैरवसमापत्तिः एषैव च निर्व्युत्थान समाध्यात्ममहारहस्यभूः।

योगिनां तु तत्र आद्यन्तमध्यदशावगाहि-प्रमातृस्वरूपाऽविस्मरणरूपा समाधानतेति। शुद्धविद्योत्थानाध्यवसायरूपः समाधिः।[4] परमात्मविषयक उद्योग एव भैरव इत्यागमशास्त्रे निगद्यते। अस्याध्यवसायस्य लोपो न कदापि भवतीति सर्वावस्थासु अविलुप्तभैरवसमापत्तिरिति प्रथिता। इयमेव निर्व्युत्थानसमाधा आत्मनो महारहस्यभूमिः कथ्यते। तत्र योगिनां प्रथमावस्थायां चरमावस्थायां च वगाहमानस्य प्रमातुः स्वरूपस्य विस्मरणाभावरूपा समाधानता चित्तैकाग्रतारूपा कथ्यते। शुद्धविद्यापदेन परमात्मन उक्तत्वात् तत्र संलग्नताध्यवसायरूपसमाधि र्योग इति परमात्मरूपेण जीवात्मनोऽवस्थानमुच्यते। मालिनीविजयोत्तरवार्तिके स्पष्टयन्ति तं श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्याः-

**एवं महेश्वरो देवो विश्वात्मत्वेन संस्थितः।**
**क्रमिकज्ञानयोगाभ्यां धारणाभिरुपास्यते।।**[5]

अत्र भगवतो महेश्वरस्य विश्वात्मत्वेनाऽवस्थानं पूर्वार्धेनोपपाद्योपासना तूत्तरार्धेन

---

1. श्रीब्रह्मसूत्रम्, 3/2/7
2. श्रीनिवासभाष्ये (निम्बार्क दर्शने) वर्णितम्
3. मालिनीविययोत्तरतन्त्रम्, अधिकार, 2, श्लोकसंख्या, 114
4. शिवसूत्रविमर्शः, तृतीयपाद, 140
5. मालिनीविजयोत्तरतन्त्रम्, अधिकार, 2, श्लोकसंख्या, 1

कथिता क्रमिकज्ञानेन योगेन नैकप्रकाराभिर्धारणाभिरिति। श्रीविज्ञानभैरवे धारणानां विवेचनमस्ति। ध्येयनिष्ठतैव धारणा। धारणयोपास्यते इत्यत्र कोपासना नामेति भवति जिज्ञासा। अष्टाङ्गयोगे सप्तममङ्गं ध्यानमेवोपासा शब्दान्तरेण निदिध्यासनमिति उच्यते। एवञ्च, विनां धारणां समाधेः साक्षात् उपकारकं ध्यानं न सिध्यत्येव। भगवती श्रुतिरपि ध्यानमेव निदिध्यासनशब्देन कथयन्ती मुक्तेः साधनं मनुते–**"आत्मा वा अरे द्रष्टव्य श्रोतव्य मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्च**[1] **आत्मनमुपासीत।** अत्र बृहदारण्यश्रुतौ मननान्तरं निदिध्यासनं कथितम् अष्टाङ्गयोगे च धारणान्तरं ध्यानमुक्तम्। एतेन मनन धारणोः रेकार्थता प्रतीयते। निदिध्यासनमेव– **"आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः"**[2] इति छान्दोग्यश्रुतौ ध्रुवास्मृति रप्युच्यते। अत्र श्रुतौ षडङ्गो योगोऽष्टाग्ङोयोगो वा सूक्ष्मरूपेण विद्यमानः प्रकाशते इति सुधियो विभावयन्तु। श्रुतौ ध्यानान्तरमेव मोक्षः कथितः–

**तदप्राप्तिमहादुःखविलीनाशेषपातका।**
**तच्चिन्ताविपुलाह्लादक्षीणपुण्यच यापि या।।**
**चिन्तयन्ती जगत्सूतिं परब्रह्मणस्वरूपिणम्।**
**नीरुच्छवासतया मुक्तिं गतान्या गोपकन्यका।।**

इति श्रीविष्णुपुराणवचनेनापि सैव रीतिरनुश्रिता भाति। एवञ्च, समाधिरेव मुक्तिरिति मनसि वर्तते। समाधेः पश्चात् योगी बहिरपि वर्तते नूनमिति न समाधिर्मुक्तिरिति गम्यते। भवत्येवं सन्देहः कः समाधिरिति जिज्ञासायां मन्ये मुक्तितुल्यः कश्चिद् अवस्थाविशेषः समाधिरिति। अत एवायं समाधि र्जीवव्यापिन्याः साधनाया गलितं फलं भवति। तथा च, साधनायाः परिपूर्णा प्रक्रिया योगो निगद्यते। अयं योगः पातञ्जल–दर्शनेऽष्टाङ्गो विलोक्यते। स्वच्छन्दतन्त्रे दशधा योगमार्गेण, इत्यादिना दशाङ्गतापि प्रतीयते। अत्र योगानां प्रकारान्तरं न विद्यते किन्तु प्राणायामस्वरूपस्यैव षड्विधत्वेन दशप्रकारता प्रतिपादिता। गहनविचारे योगस्य त्रीणिरूपाणि लभ्यन्ते यत्र द्वे रुपे त्रिविधे विद्यते तथा चौकं रूपं षडङ्गमुपलभ्यते। त्रिविधो योगो मालिनीविजयोत्तरतन्त्रे मिलति किन्तु श्रीमदभिनवगुप्तपादाचार्यदृष्टौ तस्य विकासश्चतुर्धा लभ्यते।

अन्यश्च त्रिविधिभ्यो नेत्रतन्त्रे लभ्यते। तस्य च विकासः क्षेमराजद्वाराऽभूत्। तृतीयस्य षडङ्गपररूपस्य बीजं परोक्षतः मालिनीविजयोत्तरतन्त्रे लभ्यते। अमृतनादोपनिषदि षडङ्ग योगो लभ्यते–

---

1. बृहदारण्यकोपनिषद्, 2/4/15
2. छान्दोग्योपनिषद्, प्रपाठक, 7, खण्ड, 26/2

**प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामोऽथ धारणा।**
**तर्कश्चौव समाधिश्च षडङ्ग योग उच्यते।।**[1]

अस्मिन् सन्दर्भे गोरक्षसंहितायां षडङ्गयोगस्य वर्णनं प्राप्यते। यत्र योगस्य षडङ्गताया विषये स्पष्टरूपेण लिखितमस्ति यत्-

**आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।**
**ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि मतानि षट्।।**

अर्थात् आसनं-प्राणायामः-धारणा-ध्यानं-समाधिरित्येते षडङ्गयोगाः सन्ति।[2] एतेषां योगाङ्गानां साधनावस्थायां साधका अभ्यासं कुर्वन्ति।

उपनिषद्ज्ञानपरम्परायां योग-चूडामण्युपनिषदि अन्यतमं स्थानं विद्यते। तत्रापि प्रणवसाधनायाः प्रसङ्गे सविशेषब्रह्मसाधना-त्रिमूर्तिसाधनायाः पश्चात् षडङ्गयोगस्य वर्णनं विवेचितम्।

यथा-

**आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।**
**ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट्।।**[3]

योगस्य सन्दर्भे मैत्रायण्युपनिषदि षडङ्गयोगस्य वर्णनं प्राप्यते। तेषां क्रमानुसारं वर्णनमत्र दीयते। **1. प्राणायामः- श्वासनियन्त्रणाय। 2. प्रत्याहारः- संवेदीनिषेधाय। 3. ध्यानम्। 4. धारणा। 5. तर्कः। 6. समाधिः- परमानन्दस्य प्राप्तिः।**

सन्दर्भेऽस्मिन् मैत्रायण्युपनिषदि स्पष्टतया लिखितम्- **"तथा तत्प्रयोगकल्पः प्राणायामः प्रत्याहारो ध्यानं धारणा तर्कः समाधिः षङ्ग इत्युच्यते योगः"**।[4]

अनेन प्रकारेण योगसाधानायां शैवशाक्त-बौद्ध-वैष्णवसम्प्रदायेषु षडङ्गयोगस्य वर्णनं सहजतया प्राप्यते। अनेन प्रकारेण क्रमदर्शनेऽपि षडङ्गयोगस्य सत्तर्कयोगाङ्गस्य वर्णनं प्राप्यते। सत्तर्केण एव स्वात्मपरामर्शेण जीवः स्वस्वरूपस्य आत्मनः साक्षात्कारं करोति। अत्र अष्टाङ्गयोगस्य यमनियमासनानि त्रीणि न सन्ति तथा तर्कनामाऽङ्गान्तरमायातम्। यमानां नियमानाञ्च सर्वकर्म-साधारणतयाऽपरिग्रहोऽत्र संजात इत्यहं मन्ये। न तर्कं विना वस्तुयथार्थवेदनं सम्भवतीति परमात्मज्ञानपरिपोषकत्वेन तर्कस्य संग्रहो भवितुमर्हति।

---

1. अमृतनादबिन्दूपनिषदि वर्णितम्
2. गोरक्षसंहिता, 1/6
3. योगचूडामण्युपनिषद्, 2
4. मैत्रायण्युपनिषद्, 6/18

तथा च षडङ्गयोगावधारणायां न वैकल्यं प्रसज्येत। काश्मीरमण्डलस्य योगसाधनायां साधकाः षडङ्गयोगस्य तत्त्वानां साधनावस्थयां सहजतया पालनं कुर्वन्ति। एतेषु अङ्गेषु योगस्य वास्तविकं स्वरूपं विद्यते। काश्मीरमण्डलस्य योगसाधनायां षडङ्गयोगस्य सर्वे साधकाः पालनं कुर्वन्ति। आचार्यपरम्परायां तथा च योगसाधकपरम्परायां षडङ्गतत्त्वानां सिद्धसाधकानां क्रमः सुदीर्घो वर्तते। अनेन प्रकारेण काश्मीरशैवमण्डलस्य योगस्य षडगङ्ताया: स्वरूपं विस्तारपूर्वकं तन्त्रागमग्रन्थेषु समुपलभ्यते।

✦✦✦

# आचार्य रजनीश के विचारों में "स्त्री-शिक्षा" विश्व-शांति और समृद्धि का आधार

**प्रो. रमेश प्रसाद पाठक***

**राजीव कुमार रंजन****

स्त्री शिक्षा या बालिका शिक्षा के सम्बन्ध में रजनीश जी का विचार है कि नारी और पुरूष में प्राकृतिक रूप से, संरचनात्मक रूप से, स्वाभाविक रूप से विकासात्मक रूप से मौलिक अन्तर है। दोनों की आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। अत: स्त्री और पुरूष को एक समान शिक्षा दिया जाना खतरनाक है। आज शिक्षा की होड़ में यह अंतर भुला दिया गया है, परिणाम स्वरूप स्त्रियां, पुरूषों जैसी बनने की होड़ में शामिल हो गयी हैं उनका स्वाभाविक विकास अवरूद्ध हुआ है, उन्हें उनके स्वभाव के अनुरूप, आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा देना उचित होगा। "जो शिक्षा पुरूषों को मिलती है वही शिक्षा स्त्रियों को देना खतरनाक है, एकदम गलत है। पुरूषों की नकल में स्त्रियां सदैव द्वितीय कोटि की होंगी क्योंकि वे जिन गुणों की प्रतिस्पर्धा करने जा रही हैं वे पुरूषों के सहज गुण हैं और स्त्रियों के लिए असहज धर्म, ऐसी स्थिति में स्त्रियां अपने स्वभाव से च्युत, हो सकती थीं उससे बंचित हो जायेंगी और परिणाम बड़े घातक होंगे।"[1]

शिक्षा और समानता के भाव ने स्त्रियों से जो उनका महत्वपूर्ण मातृत्व था, प्रेम, ममता, स्नेह, शीलता, विनम्रता का जो गुण था वह सब छीन लिया है। उनके जीवन में जो भी गौरवपूर्ण था उसके भीतर जो स्त्रैण था, जो पालन और सृजन की क्षमता थी वह सब छीन लिया है। स्त्री और पुरूष के चित्त में जो बुनियादी भेद और

---

* आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) नई दिल्ली, 110061

** वरिष्ठ शोध अध्येता (एस.आर.एफ.), शिक्षाशास्त्र विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) नई दिल्ली, 110061

1. ओशो, (1989), शिक्षा में क्रांति, द रेवल पब्लिशिंग हाउस, प्रा.लि., पूना, पृ.सं.-236, 237

भिन्नता है वह भिन्नता अर्थपूर्ण है। पुरूष और स्त्री का सारा आकर्षण उसी भिन्नता पर निर्भर है। वे जितनी भिन्न हों, जितनी दूर हों, उनके भीतर पोलैरिटी हो, उत्तर और दक्षिण ध्रुवों की तरह उनमें भिन्नता हो उतना ही उनके बीच आकर्षण और ग्रेविटेशन होगा, उतना ही उनके बीच प्रेम का विकास होगा। प्रेम का आकर्षण ही मनुष्य के सृजन का आधार है यदि यह खो जायेगा तो मानवता का विनाश निश्चित है। आज पश्चिम में स्त्री और पुरूष एक जैसे हो गये हैं और उसका परिणाम हमारे सामने है। स्त्री का आकर्षण पुरूष के लिए खो गया है। स्त्री कवेल उपभोग की वस्तु मात्र बनकर रह गयी है। मातृत्व अब उसे बोझ लगने लगा है। अनाथालयों में माँ-बाप विहीन संतानों की बाढ़ आ गयी है। घर और परिवार टूट गये, यही समाज की इकाई है, अंततः समाज भी टूट जायेगा।

"पश्चिम में परिवार टूट रहा है। भारत में भी परिवार टूटेगा और परिवार के टूटने में आर्थिक कारण उतने नहीं हैं जितना स्त्रियों को पुरूषों जैसा शिक्षित किया जाना। पुरूष की भाँति स्त्री शिक्षित होकर नकली पुरूष बन जाती हैं असली स्त्री नहीं। वह पुरूष का साथ तो दे सकती हैं लेकिन उसके हृदय के उस अभाव को जो स्त्री के लिए प्यासा और प्रेम से भरा होता है, उसको पूरा नहीं कर सकतीं।"[1]

यहाँ आचार्य जी का आशय यह है कि बालिकाओं को साक्षर तो बनाया जाय लेकिन साथ ही साथ ज्यादा जोर सौन्दर्य की शिक्षा, प्रेम की शिक्षा, सृजन की शिक्षा, पालन करने की शिक्षा, ध्यान की शिक्षा पर दिया जाय, उनकी रूची संगीत में, काव्य में नृत्य में होनी में चाहिए। स्त्रियों की शिक्षा उनके स्त्रियोचित गुणों के विकास के लिए होनी चाहिए न कि पुरूषों की प्रतिस्पर्धा में समान लाने के लिए। ओशो का मानना है कि स्त्री, प्रेम, करूणा, दया, ममता, शीलता की प्रतिमूर्ति होती हैं, उनमें यदि इन गुणों का विकास शिक्षा कर सके तो मनुष्य अधिक शांत हो सकेगा और दुनिया से आधे युद्ध और हिंसा स्वतः समाप्त हो जायेगी। दुनिया की आधी जनसंख्या स्त्रियों की है। स्त्रियों के पास महान शक्ति सोई पड़ी है नयी दुनिया को रचने में स्त्रियों का बड़ा योगदान हो सकता है क्योंकि बच्चे उन्हीं की छाया में पलते हैं। उनकी शिक्षा, उनके वस्त्र, उनका चिन्तन, उनकी शिक्षा भिन्न रूप से होनी चाहिए।

## स्त्री-शिक्षा विश्व शांति और समृद्धि का आधारः-

आचार्य जी का नारीयोत्थान के विषय में स्पष्ट मत है कि "नारी की शिक्षा

---

1. तथैव, पृ.सं.-92

अत्यन्त महत्वपूर्ण है। नारी शिक्षा के द्वारा पूरी पीढ़ी शिक्षित होती है। यदि नारी संतुष्ट है, प्रसन्न है तो समाज की इकाई प्रसन्न होगी अर्थात् परिवार ही समाज का आधार है, यदि परिवार सुखी है तो समाज सुखी और समृद्ध होगा। समाज संतुष्ट, सुखी और सम्पन्न होगा तो ही विश्व शांति और समृद्धि की कल्पना की जा सकती है। यदि नारी अशिक्षित होगी तो समाज की इकाई भी असंगठित होगी अर्थात् परिवार और समाज भी पूर्ण समृद्ध एवं सुखी नहीं होंगे। अशिक्षित नारी का मतलब, अशिक्षित माँ, अशिक्षित पत्नी, अशिक्षित बेटी, अशिक्षित बहन, अशिक्षित प्रेमिका। नारी को अशिक्षित रखने का अर्थ होगा कि जीवन के सब तलों पर अशिक्षित नारी खड़ी होगी और शिक्षित पुरूष और अशिक्षित नारी के बीच इतना फासला हो जायेगा कि इसके बीच तालमेल बिठाना मुश्किल होगा। इसलिए धीरे-धीरे नारी की स्थिति दासी की सी हो गयी है और पुरूष की स्थिति मालिक सी, और मजेदार बात यह है कि नारी उसे स्वीकार भी कर लेती है।"[1] नारी की मुक्ति से भी आवश्यक है, नारी का उसका स्वयं का व्यक्तित्व, उसकी निजता, उसका अस्तित्व स्वीकार किया जाय। "अब तक नारी का अपना कोई व्यक्तित्व नहीं रहा है और पुरूष ने उसके व्यक्तित्व को भरसक मिटाने की चेष्ट की है। नारी या तो किसी की बेटी होती है, बहन होती है, पत्नी होती है, माँ होती है फिर भी नारी अपने खुद के होने से कहाँ पहचानी जाती है, उसकी पहचान सापेक्षा होती है, उसका नाम बताना होता है, तो स्वतंत्र नहीं, उसकी कोई सीधी कोई आइडेंटी नहीं होती, उसका अपना कोई व्यक्तित्व समाज के समक्ष नहीं होता। जिसके पास अपना कोई व्यक्तित्व न हो वह शांति का आधार कभी बन नहीं सकती। वह स्वयं इतना अशांत होगी कि वह शांति का आधार ही नहीं बनती। जीवन की सबसे बड़ी शांति की उपलब्धि अपने व्यक्तित्व को पाने से शुरू होगी।"[2]

अतीत से लेकर वर्तमान तक स्त्रीत्व के गुण के कारण ही स्त्री पहचानी जाती है उस गुण को त्यागकर, खोकर, पुरूष के गुणों को धारण कर ले और यदि ऐसा होता है तो फिर तो घूम फिर कर बात वहीं आ जाती है कि स्त्री का होना पुरूष की नकल मात्र होकर रह जायेगा। यह गहरायी से समझने योग्य तथ्य है। आज की स्त्री जो होने के प्रयास में है वह केवल पुरूष जैसा बनकर रहना चाहती है। पुरूष के कार्यों को कर के वह समझती है कि उसने पुरूष के समकक्ष दर्जा प्राप्त कर

1. आचार्य रजनीश, (1991), शिक्षा और जागरण, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ.सं. -174
2. तथैव, पृ.सं.-106

लिया है। वह समकक्ष आने के लिए लम्बी एड़ी का जूता पहनकर पुरूष के साथ बराबरी करना चाहती है, ऊँचाई बराबर करना चाहती है। लम्बी एड़ी का जूता पहनने से सिर्फ तकलीफ हो सकती है और कोई फर्क नहीं पड़ता। पुरूष के चलने में और स्त्री के चलने में भी कमजोरी का फर्क पड़ जाता है, तो शरीर की ऊँचाई बढ़ने से पुरूष के समकक्ष आने का मार्ग नहीं है यह बहुत ही साधारण और बचकानी तरकीब हुई। इस तरह कुछ नहीं हो सकता। पुरूष जिस ढंग से रहता है उसकी नकल करके समकक्ष आने की कोशिश-वह कैसे कपड़े पहनता है, कैसे बाल झाड़ता है, कैसे बात करता है, जो कार्य करता है, शराब पीता है, सिगरेट पीता है, जुआ खेलता है तो स्त्री सोचती है कि वह सब स्त्री भी करे तो पुरूष के समकक्ष आ जाय। पश्चिम में स्त्रियों ने यह करना शुरू कर दिया और दौड़ शुरू हुई पुरूष के समकक्ष होने की। इस तरह की बचकानी कोशिशे की जा रही हैं। कपड़े बदल लो, सिगरेट पी लो, क्लबों में जो पुरूष कर रहा है वही करो, यह सब कोशिश समकक्ष होने की कोशिश है। यह बड़ी उथली तथा बचकानी कोशिश है समकक्ष होने का अर्थ कुछ और है-पुरूष के समान खड़े होने का, मतलब यह नहीं कि स्त्रियां पुरूषों जैसी हो जांय। पुरूषों के समान होने का अर्थ है कि "पुरूषों ने पुरूष होने में जितना विकास किया है स्त्रियां, स्त्रियां होने में उतना विकास करें। यह बहुत अलग बात है। पुरूषों के समान नहीं हो जाना है-समान का मेरा मतलब, पुरूषों जैसा नहीं, पुरूषों के समान होने का मतलब पुरूषों ने जितना विकास किया है उतना ही विकास, पुरूषों के रास्तों पर नहीं स्त्री के अपने रास्ते हैं-उस पर।"[1] स्त्रियों के शिक्षित होने का अभिप्राय यह है कि वे भी ठीक पुरूषों जैसा गणित में, तर्क में, व्यायाम में, फिजिक्स में, केमिस्ट्री में और विज्ञान में बराबर, ज्ञानवान हों।

आज हम स्त्री को जो भी शिक्षा दे रहे हैं वह सारी शिक्षा पुरूष के लिए है, पुरूष के लिए ईजाद की गयी थी, वह पुरूष को बनाने के लिए उपयुक्त है। आज पुरूषों की शिक्षा स्त्रियों को देकर उन्हें भी उसी साँचे में ढालने की गलत कोशिश की जा रही है। स्वाभाविक है कि जो ढ़ांचा पुरूष के लिए है उससे पुरूष की संरचना, पुरूष के गुण वाला उत्पाद प्राप्त होगा, वर्तमान शिक्षा से स्त्री का उत्पाद नहीं प्राप्त होगा। अतः "वर्तमान शिक्षा से स्त्री का स्त्रियोचित गुण नष्ट होने की सम्भावना रहती है तथा नष्ट भी हो रहे हैं। जब एक स्त्री, पुरूष बनकर, शिक्षा ग्रहण करके निकलती है तो वह न स्त्री ही पूर्ण हो सकेगी और न पुरूष ही। वर्तमान शिक्षा

---

1. तथैव, पृ.सं.-177

स्त्रियों को पुरूषों की भाँति आक्रामक बना रही है जिसका परिणाम घातक हो सकता है। जिससे स्त्रियों का मूल स्वभाव, अपनी वास्तविकता से च्युत होता चला जा रहा है। इसलिए पश्चिम में एक दुर्घटना घटी, जो यहाँ भी घट जायेगी। वहाँ स्त्री करीब-करीब पुरूष के पास पहुँच गयी हैं लेकिन सर्व अर्थ खोकर, सारे आकर्षण हीन होकर, उसने व्यक्तित्व की गरिमा, गौरव, संगीत, काव्य सृजन सब खो दिया है, उसने विनम्रता खो दी है जो उसका प्रमुख गुण है।"[1]

**स्त्री शिक्षा का स्वरूपः-**

स्त्री को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जो उसे संगीतपूर्ण व्यक्तित्व दे, जो उसे नृत्यपूर्ण व्यक्तित्व दे, जो उसे प्रतीक्षा करने की अनंत क्षमता दे, जो उसे मौन की, चुप होने की, अनाक्रमक होने की, प्रेम की और करूणा की गहरी शिक्षा दे। यह स्त्री के लिए स्त्री होने के लिए आवश्यक है, स्त्री अपने चरम के उत्कर्ष को तभी प्राप्त कर सकती है। स्त्री शिक्षा ऐसी हो जो स्त्री को उसके पूर्णरूप में व्यक्त होने का मौका दे, उसे फूल के समान खिलने का, विकसित होने का मार्ग दे तभी वह अपने सुवास सब तरफ बिखेर सकेगी, तभी उसके अन्दर का आनन्द, प्रेम, संगीत, कला, काव्य, सौन्दर्य, बाहर आकर मुखरित हो सकेगा। प्रेमपूर्ण होने की भी शिक्षा दी जाय कि कैसे प्रेम से आनन्द से भर जाय, यदि उसमें प्रेम होगा तभी वह प्रेम कर सकती है, प्रेम बांट सकती है। स्त्री सोचती है कि वह तो प्रेम जानती है पर शायद ही उसे गहरे प्रेम का ज्ञान हो, वह जिसे प्रेम कहती है वह किसी अन्य भाव से जुड़ा है और प्रेम तो होता है निरपेक्ष, समभाव से, सबके प्रति आदमी से, जानवर से, पेड़-पौधों से, सजीव-निर्जीव सब से। वह कर सकती है ऐसा प्रेम जो उसके भीतर है, ऐसे प्रेम के बीज, तत्व मौजूद हैं पर उसे शिक्षा इस बात की दी जाय कि वह प्रेम-बीज कैसे प्रस्फुटित, मुखारित, अंकुरित हो कि वह उसके तथा उसके आस-पास के जीवन को सुवास से, आनन्द से भर दे और यदि ऐसी शिक्षा की व्यवस्था हो सके तो परिवार, समाज, देश, राष्ट्र, विश्व सभी शांत और सुख से भर उठेंगे।[2]

---

1. तथैव, पृ.सं.-189
2. तिवारी, श्याम सुन्दर, (2013), आधुनिक शिक्षा के विकास मे आचार्य रजनीश के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन, पी-एच. डी. शोध प्रबन्ध, शिक्षाशास्त्र, डा. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, फैजाबाद (उत्तर प्रदेश)। पृ.सं.-190

**स्त्री की सृजनात्मकता:-**

स्त्री को सबसे ज्यादा क्रियेटिव होनी चाहिए क्योंकि वह संतति की जन्मदात्री है वह मनुष्यों को पैदा करती है पर दूसरा सृजन का कार्य क्यों नहीं कर पाती? अब तो शिक्षित स्त्री बच्चे पैदा करने से भी इंकार कर दे तो कोई आश्चर्य नहीं। सच तो यह है कि वह अब बच्चों की माँ भी मजबूरी से बनती है, वह भी उसकी प्रसन्नता नहीं है। अगर उसका बस चले तो वह इंकार कर दे और जहाँ बस चल रहा है वहाँ इंकार भी कर दिया है। फ्रांस जैसे देश में जहाँ स्त्रियां सबसे अधिक शिक्षित हो गयीं वहाँ इन्कार कर दिया बच्चे जनने से। वहाँ फ्रांस की सरकार चिंतित है कि कहीं जनसंख्या घटनी न शुरू हो जाय। उसके भीतर में इतना दुख और पीड़ा है कि सृजन का ख्याल उनके मन में नहीं आता। वह आनन्द अब बोझ बनने लगता है।[1]

आचार्य रजनीश जी का कहना है कि "सृजन पैदा होता है आनन्द से।" जब कोई खुश होता है आनंदित होता है तो सृजन की धारा फूट पड़ती है जब कोई आनंदमय होता है तो सृजन करना चाहता है। क्रोध, दु:ख चीजों का विध्वंस करना चाहता है, आनन्द निर्माण करता है। स्त्रियाँ दु:खी हैं इसलिए नहीं कर पाती और यह आनन्द तब होगा जब स्त्री का अपना व्यक्तित्व स्वीकार्य हो। स्त्री को भी सृजन के मार्गों पर जाना पड़ेगा उसे निर्माण की दिशाएं खोजनी पड़ेंगी। जीवन को ज्यादा सुन्दर और सुखद बनाने के लिए उसे अनुदान करना पड़ेगा तभी स्त्री का मान, सम्मान, प्रतिष्ठा, पुरूष के समकक्ष आ सकती है और स्त्री अगर आनंदित हो जाय तो हम जीवन को शांत करने के मार्गों में अग्रसर हो सकते हैं। यदि दुनिया से युद्ध और हिंसा खत्म करनी हो तो जो बुनियादी इकाई है स्त्री और पुरूष की, उसको शांत कर दो। अगर वह शांत, प्रेमपूर्ण, आनन्दपूर्ण बन जाय तो दुनिया में कोई भी लड़ने को राजी न हो। समाज में प्रकृति के कुछ निर्धारित कार्य है प्रत्येक जीव के लिए उसके निर्धारित कार्यों को पूर्ण करने की पूर्णता प्राप्त करना ही शिक्षा सिखाती है उसी के अनुसरण की शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए जो उसके भावी जीवन को अधिक, सुखद, आनन्दमय तथा प्रेरणास्पद बना सके ताकि जीवन की इकाई परिवार सुखद हो और आनंदित हो सके।[2]

---

1. तथैव, पृ.सं.-191
2. आचार्य रजनीश, (1991), शिक्षा और जागरण, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ.सं. -196

यह बहुत आश्चर्यजनक तथ्य है-प्रेम ही स्त्री का सबसे बड़ा गुण है। प्रेम और ईष्या दो बातें स्त्री में प्रमुखता से होती है। जहाँ प्रेम स्त्री का शील, गुण, आभूषण है वहीं ईष्या उसका अवगुण, लेकिन वह अवगुण स्वाभाविक है इस गुण के कारण भी वह किसी को प्रेम कर सकती है, लेकिन वह स्वाभाविक और जीवंत नहीं होगा, डर और भय से परिपूर्ण होगा। वह पति से इसलिए भी प्रेम कर सकती है कि पति कहीं उसमें प्रेम न पाकर कहीं और प्रेम न खोजने लगे, अन्य कार्यों में शान्ति और प्रेम खोजने लगे, संगीत में न प्रेम खोजने लगे, किसी और माध्यम में प्रेम न खोजे और उसका प्रेमी पति ऐसे साधनों में प्रेम खोजता है तो वह ईष्या से भर जाती है। कृष्ण का वंशी से प्रेम था, संगीत से प्रेम था तो गोपियां भी वह सभी कार्य करने को सोचती थी कि कृष्ण कैसे बांसुरी से मुक्त हो जाए। वह गोपियाँ कृष्ण की बांसुरी को सौतन समझती थी तथा ईष्या करती थीं क्योंकि प्रेम जो उसकी आवश्यकता थी जिस पर उसका ही अधिकार था उसे वंशी कैसे हासिल कर ले जो समय उसे स्वयं प्राप्त हो सकता था वह अन्य कोई कैसे पा ले इस ईष्या के कारण ही वे प्रेम करने को विवश हो जाती हैं।

"प्रेम ही स्त्री का प्राण है, उसकी आत्मा है अगर वह प्रेमपूर्ण न हो पाये तो बस वह अधूरी हो जायेगी उसके भीतर कुछ अविकसित रह जायेगा कुछ हमेशा बढ़ने को रह जायेगा-पीड़ा दु:ख और परेशानी घेर लेगी। अगर स्त्री ठीक से प्रेम न कर पाये तो उसे हजार बीमारियाँ घेर लेती हैं। मनोवैज्ञानिक मानते है कि स्त्री की सारी हिस्टीरिया, सारी बीमारियाँ अस्सी प्रतिशत प्रेम की पूर्ण उपलब्धि न हो पाने के कारण होती हैं। अगर किसी स्त्री के जीवन में पूर्ण प्रेम प्राप्त हो तो वह पूर्ण स्वरूप हो जाती है, उसके जीवन का फूल ऐसा खिल जाता है जैसा कभी न खिला था। उसका व्यक्तित्व भी बदल जाता है पर वह सब ज्यादा समय तक स्थिर नहीं रह पाता है। जैसे ही प्रेम की कमी होती है उसका व्यक्तित्व असंतुलित होने लगता, सौहार्दता बिदा होने लगती है। वह कुरूप होने लगती है, आकर्षण मिटने लगता है और यहीं से कलह, अशांति तथा दु:ख का प्रारम्भ होता है।[1]

प्रेम ही इस पृथ्वी को मनुष्य को विध्वंस, हिंसा से बचाने का एक मात्र विकल्प है। आचार्य रजनीश जी स्त्री को प्रेम की जन्मदात्री मानते हैं, कभी माँ के रूप में, कभी प्रेमिका के रूप में। पुरूषों की दुनिया बदलने की शक्ति स्त्री के पास ही है। प्रेम के पास अपने तरह की वाइटैलिटी है, अपने तरह की विटामिन है, शायद

---

1. तथैव, पृ.सं.-192

वैसी शक्ति किसी विटामिन में नहीं। एक भूखा आदमी भी, अभाव ग्रस्त आदमी भी प्रेम पाकर प्रफुल्लित हो उठता है, उसके जीवन में एक नया प्रेरणा स्रोत, एक शक्ति का झरना फूट पड़ता है उसके जीवन में सब हरा हो जाता है, लेकिन कुम्हलाने की जड़ में भी है नारी। यदि नारी के प्रेम का स्त्रोत न हुआ तो वह सृजन नहीं कर सकती आनन्द और प्रेम नहीं बाँट सकती है। स्त्री पुरूष को पैदा करने में इतना बड़ा श्रम कर लेती है कि कोई सृजन करने की जरूरत नहीं रह जाती। स्त्री के पास अपना एक क्रिएटिव एक्ट है, एक सृजनात्मक कृत्य है, जो इतना बड़ा है कि पत्थर की मूर्ति बनाना और एक जीवित शक्ति को बड़ा करना, कोई तुलना ही नहीं लेकिन स्त्री के काम को हमने सहज स्वीकार कर लिया है और इसलिए स्त्री की सारी शक्ति, सृजनात्मक शक्ति, उसके माँ बनने में लग जाती है। उसके पास और सृजन की कोई सुविधा नहीं बचती है, न शक्ति बचती है, न कोई आयाम, न कोई डायमेंशन बचता है, न सोचने का कोई सवाल। स्त्री का विकास, स्त्री की सम्भावनाओ, स्त्रियों की जो पौटंसियलिटीज है, उनके जो आयाम, ऊँचाइयां है, उनको हमने गिनती में ही नहीं लिया है। अगर एक आदमी गणित में कोई खोज कर ले तो उसे नोबेल प्राइज मिलेगा लेकिन स्त्रियों के स्वाभाविक सृजन के लिए कुछ भी नहीं है। यह स्त्रियों की दुनिया नहीं है, स्त्रियों को सोचने के लिए, स्त्रियों को दिशा देने के लिए उसके जीवन में जो हो, उसे भी मूल देने का, आधार देने का, हमारे पास कोई सोच नहीं है। यद्यपि आधुनिक युग की धारणाओं में परिवर्तन आया है लेकिन वह अभी अपर्याप्त है। यदि दुनिया को बदलना है तो नारी के प्रेम और सृजन की शक्ति को महत्व और प्राथमिकता देनी होगी। अभी तक हम सिर्फ पुरूषों को आधार देते हैं। इसलिए अगर हम इतिहास उठाकर देखें तो इसमें चोर, डकैत, हत्यारे, बड़े-बड़े आदमी मिल जायेंगे उसमें चंगेज खां, तैमूर और हिटलर तथा स्टैलिन, माओ सब का स्थान है लेकिन उसमें हमें ऐसी स्त्रियां खोजने में बड़ी मुश्किल पड़ जायेगी। उनका उल्लेख ही नहीं है, जिन्होंने सुन्दर घर बनाया हो, जिन्होंने एक बेटा पैदा किया हो और जिनके साथ जिसे बड़ा करने में सारी माँ की ताकत, सारी प्रार्थना, सारा प्रेम लगा दिया हो। इसका कोई हिसाब नहीं मिलेगा।

पुरूष का एक तरफा, अधूरी दुनिया अब तक चली है। अब तक का जो पूरा इतिहास है, वह पुरूषों का इतिहास ही है, इसलिए युद्धों का, हिंसाओं का इतिहास है। जिस दिन स्त्री भी स्वीकृत होगी और विराट मनुष्यता में उतना स्थान पा लेगी, जितना पुरूष का है तो इतिहास भी ठीक दूसरी दिशा लेना शुरू करेगा। मेरी दृष्टि से "जिस दिन स्त्री बिल्कुल समान हो जायेगी, शायद युद्ध असम्भव हो जाय, में

कोई भी मरे, वह किसी का बेटा होता है, किसी का भाई होता है, किसी का पति होता। पुरूष गणित में सोचता है प्रेम उसके सोचने की भाषा नहीं है जबकि स्त्री प्रेम की भाषा जानती है और उसमें जीती है।"[1]

रजनीश जी चाहते है कि स्त्रियों की शिक्षा ऐसे गुणों, विशेषता से युक्त हो जो स्त्री को स्त्रित्व के गुणों से परिपूर्ण करने में सहयोगी हो, उसमें स्त्रियोचित्त गुणों का विकास कर सके। स्त्रियों की शिक्षा पुरूषों की शिक्षा से भिन्न हो। स्त्रियों को सुन्दर सुखद दुनिया के सृजन में, सेवा में, करूणा में, दया और ममता में प्रशिक्षित करना है, जिससे हिंसा ग्रस्त इस मानवता को एक सहारा, स्नेह, पोषण एवं सुरक्षा मिल सके। स्त्रियों की शिक्षा पुरूषों की शिक्षा से भिन्न हो। स्त्रियों को सुन्दर, सुखद दुनिया के सृजन में, सेवा में, करूणा में, दया और ममता में प्रशिक्षित करना है, जिससे हिंसाग्रस्त इस मानवता को एक सहारा, स्नेह, पोषण एवं सुरक्षा मिल सके। निराश और हताश मानवता को आशापूर्ण जीवन की ओर अग्रसर कर सके अन्यथा निराशा इस धरती पर आतंकवाद और विध्वंशपूर्ण वातावरण का निर्माण करेगी। इस धरती का अस्तित्व स्त्री के प्रेम और सृजन के बल पर ही बचाया जा सकता है। एक आंकड़े के अनुसार इस समय के धरती पर 25 हजार परमाणु बम दगने की स्थिति में तैयार हैं, जिनसे इस धरती को सात बार समूल नष्ट किया जा सकता है, जिसका नियन्त्रण पागल राजनीतिज्ञों एवं तानाशाहों के हाथ में है। यदि स्त्रियों को भी पुरूषों की शिक्षा में दीक्षित किया जायेगा तो वे भी पुरूषों की भाँति वर्दी पहनकर बंदूकें एवं बम चलायेंगी तो दुनिया के भविष्य की कल्पना की जा सकती है।

✦✦✦

1. ओशो, (2019), संभोग से समाधि की ओर, डायमंड पॉकेट बुक्स, दिल्ली, पृ.सं.-360

# कौटिल्य अर्थशास्त्र में औद्योगिकीकरण के सूत्र

**डॉ. अरुणिमा रानी***

आचार्य कौटिल्य ने अर्थशास्त्र के द्वितीय अधिकरण में राज्य को पुष्पित, पल्लवित, वर्धित व सुसमृद्ध करने हेतु कुछ उद्योगों के विषय में दिशानिर्देश दिए हैं जिन पर केवल सरकार का ही स्वामित्व होना चाहिए। राज्य ही उन उद्योगों को संचालित करे। कुछ व्यवसायों एवं उद्योगों का संक्षिप्त वर्णन कौटिल्य अर्थशास्त्र के आधार पर करना प्रस्तुत आलेख का प्रतिपाद्य विषय है जिससे तत्कालिक आर्थिक नीति से वर्तमान की समस्याओं के आधार पर अपने देश राज्य को समृद्ध व शक्तिशाली बनाया जा सके। आचार्य कौटिल्य का मानना है कि

अर्थ एव प्रधान इति कौटिल्यः।[1] अर्थात् धर्म, अर्थ व काम में अर्थ ही प्रधान होता है। क्योंकि धर्म और काम अर्थमूलक ही होते हैं। अर्थ ही इन दोनों का कारण है। तद्यथा-

**अर्थमूलौ हि धर्मकामविति।[2]**

**1. आकर-उद्योगः**- आकर-उद्योग या खान उद्योग राज्य-कोष की समृद्धि में मुख्य कारक है। आचार्य कौटिल्य का कथन है।

**आकरप्रभवः कोशः कोशादृदण्डरू प्रजायते।**
**पृथिवी कोशदण्डाध्यां प्राप्यते कोशभूषणा।।[3]**

आचार्य कौटिल्य आकर-उद्योग को राज्य के अत्यन्त महत्वपूर्ण उद्योगों के अन्तर्गत मानते हैं और इस खान उद्योग पर केवल राज्य का स्वामित्व ही उचित समझते हैं। आचार्य का स्पष्ट कहना है कि खान व खानों से प्राप्त समस्त सम्पत्ति

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, एस.डी. (पी.जी.) कॉलेज, भोपा रोड, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-1 /अध्याय-7 /वार्ता-10
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-1/अध्याय-7/ वार्ता-11
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/ श्लोक-49

पर राज्य का ही मालिकाना हक होता है। सरकार द्वारा ही खानों से निकाले हुए बारह प्रकार के धातु और भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्य विक्रेय पदार्थों का संग्रह किया जाए। पुनः उसे व्यापारी स्थानों में अवश्य स्थापित करें। तद्यथा-

**खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत्।**
**एवं सर्वेषु पण्येषु स्थापपेन्मुखसंग्रहम्॥**[1]

खान सम्बन्धी कार्यों के संचालन हेतु एक आकराध्यक्ष होना चाहिए जो कि धातुशास्त्र का पूर्ण ज्ञान रखता हो जिसे रस-पाक और मछलियों के पहचानने का भी पूर्ण ज्ञान हो यथा-

**आकराध्यक्षः शुल्वधातुशास्त्ररसपाकमणिरागज्ञः।**[2]

राजकर्मचारियों को भी आकराध्यक्ष के समान ही आकर खान सम्बन्धी कार्यों का पूर्ण ज्ञाता होना अनिवार्य है। यथा तज्ज्ञसखः।'[3]

शिल्पी और सवक भी अपने-अपने विषय के पूर्णज्ञाता होने अनिवार्य बताए है। राज्यकर्मचारियों को खान की पहचान के लिए निर्देश दिए गए है। किट्ट (लोहे का मैल), मूषा (वह वस्तु, जिसके पात्र में सुवर्ण आदि को रखकर तपाया जाता है और अंगारभस्म (राख) आदि चिन्हों को देखकर पुरानी खानों की पहचान करनी चाहिए। मिट्टी, पत्थर, रस, जल आदि में जहाँ धातु मिली हुई मालूम हों या उसका रंग बहुत चमकता है। मिट्टी बहुत भारी तीव्रगन्धमुक्त या तीव्र रस युक्त हो तो इन सब चिह्नों को देखकर खान की पहचान की जा सकती है। यथा- **'किट्टमूषादगारभस्म लिंडगं बाकरं भूतपूर्वममूतपूर्वं वा भूमिप्रस्तररसधातुमत्यर्थवर्णगौरवमुग्रगन्धरसं परीक्षेतः।'**[4]

**2. लोहाकर उद्योगः**- यह उद्योग भी सरकार के स्वामित्व में ही संगठित व संचालित होता था। लोहाकर उद्योग में ही ताँगा, सीसा, त्रुपु (टीन), वैकृन्तक (इस्पाती लोहा), आरकूट (दृढ़ लोहा), वृत्त (गोल लोहा), कंस (कांसा) आदि सब सम्मिलित था। लोहाकर उद्योग के अध्यक्ष को लोहाध्यक्ष कहा जाता था। सम्पूर्ण लोहाकर उद्योग की देखरेख व क्रय-विक्रय की व्यवस्था सरकार द्वारा ही की जाती थी यथा-

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/ अध्याय-7/ श्लोक-48
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/ अध्याय-7/ वार्ता- 01
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/वार्ता- 01 य
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/ वार्ता- 01

**लोहाध्यक्षस्ताम्रसीसत्रपुवैकृन्तकारकूटवृत्तवंस।**
**ताललोहकर्मान्तान्कारयेत्[1] लोहमाण्डव्यवहारं च।।[2]**

**3. खान-उद्योग**- कौटिल्य ने खान शब्द का प्रयोग समुद्र से सम्बन्धित आकर का किया है। यह उद्योग भी राज्य के प्रत्यक्ष स्वामित्व के अन्तर्गत रखा गया है। खानाध्यक्ष को शंख, हीरा, मणि, मोती, मूंगा तथा यवक्षार आदि पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाले कार्यों का प्रबन्ध करना होता था। समुद्र से प्राप्त समस्त पदार्थों का संग्रहण व उनके क्रय-विक्रय आदि की व्यवस्था खानाध्यक्ष के हाथ में ही होती थी। यथा- **खन्यध्यक्षः शङ्-खवज्रमणिमुक्ताप्रवाल-क्षारकर्मान्तान्कारयेत्।[3] पणनव्यवहारं च।।[4]**

**4. लवण उद्योग**-यह उद्योग भी राज्याधीन ही था। इसकी व्यवस्था सम्भालने के लिए एक लवणाध्यक्ष नियुक्त किया जाता था। राज्य द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार उसमें वितरण एवं उपभोग की व्यवस्था लवणाध्यक्ष ही करता था।[5] राज्य द्वारा निर्धारित दुकानों के अतिरिक्त यदि कोई लवण विक्रय करता पाया जाता था तो वह दण्ड का भागी होता था।[6] ये सरकारी दुकानें राज्य के नियन्त्रण में ही रहती थी। मिलावटी नमक बेचने वाले के लिए दण्ड-विधान था।[7] वानप्रस्थ मुनि नामक कर से मुक्त थे।[8] वेदपाठी, तपस्वी, राज्य की इच्छानुसार कार्य करने वाले पुरुष नमक कर से मुक्त थे।[9] कुछ नमक दूसरे राज्यों से भी लाया जाता था। दूसरे राज्य से लाए नमक पर अपेक्षाकृत अधिक कर लगाया जाता था।

**5. सोने-चाँदी का उद्योग**- इस उद्योग के राजकीय अध्यक्ष का नाम है-सुवर्णाध्यक्ष। सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजत कर्मान्तानामसंबन्धावेशन चतुः शालामेकद्वारा-मक्षशालां कारयेत्।[10] आचार्य कौटिल्य ने शाला निर्माण के विषय में भी व्यवस्था दी

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/वार्ता- 25
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/वार्ता- 26
3. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/वार्ता- 34
4. कौटिल्य अर्थशास्त्र-अधिकरण-2/अध्याय-7/ वार्ता- 35
5. लवणाध्यक्षः पाकमुक्तं लवणमागं प्रक्रयं च यथाकालं संगृहणीयात-कौटिल्य अर्थशास्त्र-2/12/36
6. अन्यत्र क्रेता ऋषटछतमव्ययं च-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/12/41
7. विलवणमुक्तमं दण्डं दद्यात्-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/12/42
8. अन्यत्र वानप्रस्थेभ्यः-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/12/44
9. श्रोत्रियास्तपस्विनो विष्टयश्च भक्तलवर्ण हरेयुः।। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/12/45
10. अतोजन्यो लवणल्लारवर्गः शुल्क दद्यात्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/12/46

है कि सुवर्णाध्यक्ष एक ऐसी अक्षशाला का निर्माण करवाए जिसमें एक द्वार हो तथा चारों ओर चार कमरे हों। इन चारों कमरों में एक दूसरे में जाने आने का मार्ग होना चाहिए। अक्षशाला में सोने चांदी के कार्य का पृथक-पृथक स्थान अवश्य होना घाहिए। उस अक्षशाला में बिना आज्ञा प्रवेश वर्जित है।[1] बिना आज्ञा प्रवेश करने वाले के लिए शिरोच्छेदन का दण्डविधान है।[2] यदि कोई अक्षशाला में सोना या चांदी लेकर प्रवेश करे तो उसका सोना-चांदी ले लिया जाना चाहिए।[3] अक्षशाला से बाहर आने के समय सभी कर्मचारियों की तलाशी ली जानी चाहिए समस्त औजार अक्षशाला में ही संरक्षित होने चाहिए। ब्यौरे के लिए रजिस्टर तैयार किया जाए।[4] निर्माण किए गए सोने-चांदी का माल राजकीय दुकानों पर ही क्रय-विक्रय हेतु भेजा जाता था। जिस स्थान पर यह माल बिकता था उसको कौटिल्य ने विशिखा नाम से सम्बोधित किया है। दुकानों पर यह कार्य बड़े-बड़े शिल्पी, कुलीन व विश्वासपात्र व्यक्ति को ही सौंपा जाना चाहिए।[5] आभूषण में दोष होने पर शिल्पी का वेतन काट लेना चाहिए।[6] दोषयुक्त तराजू व बाटों का प्रयोग करने वाले शिल्पी[7] पर बारह पण दण्ड देने की व्यवस्था दी गयी है।[8]

**6. कृषि उद्योग**- दूसरे अधिकरण के चौबीसवें अध्याय में कृषि उद्योग की चर्चा है। कृषि कार्य के अध्यक्ष को सीताध्यक्ष कहा जाता था। कृषि कार्य भी राज्याधीन ही था। धान्य, पुष्प, फल, शाक, कन्दमूल, वालिक्य, क्षैम कपास आदि की उपज कृषि उद्योग के अन्तर्गत मानी जाती थी।[9] सीताध्यक्ष को कृषिशास्त्र और गुल्म तथा वृक्षों के आर्युवेद शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए।[10] अन्य कर्मचारीगण भी

---

1. अक्षशालामनायुक्तो नोपगच्छेत-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/1
2. अभिगच्छन्तुछेद्यः-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/34
3. आयुक्तो का सरूप्य सुवर्णस्तेनैव जीयेत-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/36
4. विशिवस्त्रहस्तगुह्याः----। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/37
5. गृहीलसुवर्ण धृतं च प्रयोगं करणमध्ये दद्यात्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/39
6. विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं प्रात्यविकं च स्थापयेत्।। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/13/2
7. कौटिल्य अर्थशास्त्र-2/14/3-4
8. अन्यथा द्वादशपणो दण्डः। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/14/17
9. सर्वधान्यपुष्फलशाकमन्दमूलवात्लिक्यक्षीमकार्पासबीजानि यथाकालं गृहणीयात्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/1
10. सीताध्यक्षः कृषितंत्रगुल्मवृक्षायुवेदज्ञः। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/1

सीताध्यक्ष की भांति कृषि के ज्ञाता होने अनिवार्य है।[1] हल जोतने का कार्य दास, श्रमजीवियों व अभियुक्तों द्वारा कराया जाना चाहिए।[2] भूमि बटाई पर देने का विधान भी दिखाई देता है।[3] कृषि कार्य में नियुक्त सेवकों के वेतन कार्य की मात्रा के आधार पर नियत किये जाने चाहिए।[4] कृषि की रक्षा करने वाले सेवक, ग्वाले, दास तथा कर्मकर को उनके परिश्रम के अनुसार भोजन की व्यवस्था भी करनी चाहिए साथ ही निर्धारित वेतन का भी विधपन है। वर्षा ऋतु के प्रारम्म में बोए जाने वाले अन्न शालि, ब्रीहि, तिल, प्रियंगु, दारक, वराक आदि है।[5] मूंग, उदड़, आदि वर्षा ऋतु के मध्य में बोना उचित है।[6] जौ, गेहूँ, मटर, अलसी, सरसों इत्यादि वर्षा ऋतु के समाप्त हो जाने पर बोने चाहिए।[7] इस प्रकार ऋतुकाल में ही जिस काल में जिस अन्न को बोने का समय हो उसी को बोना चाहिए। आचार्य कौटिल्य ने सिंचाई के विषय में भी व्यवस्था निर्धारित की हुई थी।

अपने तालाबों से अपने ही परिश्रम से जल लाकर सींचे गए खेत की उपज का पांचवा भाग राज्य को प्राप्त होना चाहिए।[8] अपने कन्धों पर जल लाकर जिस खेत की। सिंचाई की गयी हो उसकी उपज का चौथाई भाग राज्य को प्राप्त होना चाहिए।[9] इस प्रकार कौटिल्य ने नदी, तालाबों, सरोवरों, कुंओं और स्त्रोतों को सिंचाई का साधन बताया और परिश्रम के न्यूनाधिक्य के ही आधार पर उपज प्राप्ति का संकेत दिया है।

**7. सूत्र-उद्योग**-वस्त्र निर्माण, सूत्र, चमड़े, बांस और बेंत की छाल से रस्सी बनाने और चमड़े, बांस और बेंत की नाना प्रकार की वस्तुओं के निर्माण करने को भी कौटिल्य ने इसी उद्योग के अन्तर्गत परिगणित किया है। सूत्राध्यक्ष प्रायः घर से बाहर न निकलने वाली, पति के विदेश जाने से असहाय, विधवा, अंगहीन और कन्याएँ जिन्हें अपना भरण-पोषण अपने आप करना है, ऐसे व्यक्तियों के पास

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/1
2. बहुहलपरिकृष्टायां स्वभूमौ दासकर्मकरदण्डप्रतिकर्तृभिर्वापयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/2
3 वापातिरिक्तमर्धसीतिकाः कुर्यः। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/20
4. षष्डवाटमोपालकदासकर्मरेभ्यो यथापुरुषपरिवापं भक्त कुर्यात्-कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/38
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/16
6. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/17
7. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/18
8. स्वसेतुभ्यः--पंचमं दद्युः। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/22
9. स्कन्धप्रावर्तिमं चतुर्थम्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/24/23

अपनी दासी भेजकर-आदरपूर्वक उनसे कर्म लेना चाहिए।[1] सूत्राध्यक्ष को सूत्र, कवच, दस्त्र और रज्जु का कार्य कुशल कारीगरों से कराना चाहिए। ऊन, वल्क, कपास, सेकर की रूई आदि शण और क्षौम को विधवा, अंगहीन, कन्या, सन्यासिनी, अपराधिनी, वेश्याओं की वृद्ध माता, वृद्ध राजदासी तथा देव-स्थान से बहिष्कृत देवदासियों से करवाना चाहिए।[2] सूत्र की कताई के विषय में वेतन निर्धारित करने के लिए सूत्र की मोटाई, लम्बाई एवं उसकी सूक्ष्मता आदि पर ध्यान रखना चाहिए।[3] ठेके पर भी कार्य करवाया जाता था। निश्चित समय पर निश्चित कार्य के पूर्ण हो जाने पर निश्चित वेतन देने की भी प्रणाली थी।[4] अवकाश में कार्य लेने पर कर्मचारी को अतिरिक्त वेतन देना चाहिए।[5] वेतन लेकर काम न करने वाली स्त्रियों का अंगूठा कटवाने का भी विधान दिखाई देता है।[6]

इस प्रकार आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में देश व राष्ट्र को समृद्ध बनाने के लिए अनेक उद्योगों का परिगणन किया है। प्रस्तुत आलेख में कुछ उद्योगों को संक्षेप में दर्शा दिया है। कुछ अन्य उद्योग जैसे गोपालन उद्योग, अश्वपालक, हस्तिपालन, सुरा उद्योग, गणिका वृत्ति उद्योग, इत्यादि भी है जिन पर आचार्य कौटिल्य ने व्यवस्था प्रदान की है। उस काल में लगभग सभी उद्योगों पर राज्याधिकार था। राज्य द्वारा ही सारी व्यवस्थाएं संचालित की जाती थी। वस्तुतः आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र कितना उपयोगी है। क्या-क्या व्यवस्थाएं माननीय हैं। समय-समय के अनुसार व्यवस्थाओं में परिवर्तन आता रहा हैं। आज बहुत से उद्योग सरकारी स्तर पर व व्यक्तिगत स्तर दोनों में संचालित हो रहे हैं। आचार्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित उद्योग सम्बन्धी ज्ञान में वस्तुतः जो जो ग्राह्य है वह ग्रहण कर लेना चाहिए परन्तु जो कुछ अग्राह्य है वह छोड़ने योग्य भी है। समय परिवर्तनशील है, परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं. फिर भी आज भी आचार्य कौटिल्य का अर्थशास्त्र देश की आर्थिक नीति को सुदृढ़ करने में सफल होगा यदि विवेकपूर्वक विद्वत्वृन्द उसे समाज के सामने प्रस्तुत करें।

✦✦✦

---

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/23/12
2. कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/23/2
3. श्लक्ष्णस्थूलमध्यतां च सूत्रस्य विदित्वा वेतनम् कल्पयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/23/3
4. कृतकर्मप्रमाणकालवेतनकलनिष्पत्तिः। कौटिल्य अर्थशास्त्र 3/23/8
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र 3/23/6
6. गृहीत्वा वेतनं कर्माकुर्वत्याः अङ्गुष्ठसंदंश दापयेत्। कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/23/18

# भारतीय ज्योतिष में काल विभाजन सिद्धान्त

डॉ. रामदास शर्मा*

**स मासान् विभजन् काले बहुधा पर्वसन्धिषु।**
**तथैव भगवान् सोमो नक्षत्रैः सह गच्छति॥**[1]

## भूमिका

भारतीय ज्योतिष (Indian Astrology/Hindu Astrology) ग्रहनक्षत्रों की गणना की वह पद्धति है जिसका भारत में विकास हुआ है। आजकल भी भारत में इसी पद्धति से पंचांग बनते हैं, जिनके आधार पर देश भर में धार्मिक कृत्य तथा पर्व मनाए जाते हैं। वर्तमान काल में अधिकांश पंचांग सूर्यसिद्धांत, मकरंद सारणियों तथा ग्रहलाघव की विधि से प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ ऐसे भी पंचांग बनते हैं जिन्हें नॉटिकल अल्मनाक के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु इन्हें प्रायः भारतीय निर्णय पद्धति के अनुकूल बना दिया जाता है। प्राचीन भारत में ज्योतिष का अर्थ ग्रहों और नक्षत्रों की चाल का अध्ययन करने के लिए था, यानि ब्रह्माण्ड के बारे में अध्ययन। कालान्तर में फलित ज्योतिष के समावेश के चलते ज्योतिष शब्द के मायने बदल गए और अब इसे लोगों का भाग्य देखने वाली विद्या समझा जाता है।

ज्योतिष विषय वेदों जितना ही प्राचीन है। प्राचीन काल में ग्रह, नक्षत्र और अन्य खगोलीय पिण्डों का अध्ययन करने के विषय को ही ज्योतिष कहा गया था। इसके गणित भाग के बारे में तो बहुत स्पष्टता से कहा जा सकता है कि इसके बारे में वेदों में स्पष्ट गणनाएं दी हुई हैं। फलित भाग के बारे में बहुत बाद में जानकारी मिलती है। भारतीय आचार्यों द्वारा रचित ज्योतिष की पाण्डुलिपियों की संख्या **एक लाख** से भी अधिक है।

---

* सहायकाचार्य, ज्योतिषविभाग, केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्रीरणवीरपरिसर, जम्मू

1. महाभारतम् -वनपर्व।

प्राचीनकाल में गणित एवं ज्यौतिष समानार्थी थे परन्तु आगे चलकर इनके तीन भाग हो गए।

**( १ ) तन्त्र** या **सिद्धान्त**- गणित द्वारा ग्रहों की गतियों और नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करना तथा उन्हें निश्चित करना।

**( २ ) होरा**- जिसका सम्बन्ध कुण्डली बनाने से था। इसके तीन उपविभाग थे। क- जातक, ख- यात्रा, ग- विवाह।

**( ३ ) शाखा**- यह एक विस्तृत भाग था जिसमें शकुन परीक्षण, लक्षणपरीक्षण एवं भविष्य सूचन का विवरण था।

इन तीनों स्कन्धों (तन्त्र-होरा-शाखा) का जो ज्ञाता होता था उसे 'संहितापारग' कहा जाता था।

तन्त्र या सिद्धान्त में मुख्यतः दो भाग होते हैं, एक में ग्रह आदि की गणना और दूसरे में सृष्टि-आरम्भ, गोल विचार, यन्त्ररचना और कालगणना सम्बन्धी मान रहते हैं। तंत्र और सिद्धान्त को बिल्कुल पृथक् नहीं रखा जा सकता। सिद्धान्त, तन्त्र और करण के लक्षणों में यह है कि ग्रहगणित का विचार जिसमें कल्पादि या सृष्टयादि से हो वह सिद्धान्त, जिसमें महायुगादि से हो वह तन्त्र और जिसमें किसी इष्टशक से (जैसे कलियुग के आरम्भ से) हो वह करण कहलाता है। मात्र ग्रहगणित की दृष्टि से देखा जाय तो इन तीनों में कोई भेद नहीं है। सिद्धान्त, तन्त्र या करण ग्रन्थ के जिन प्रकरणों में ग्रहगणित का विचार रहता है वे क्रमशः इस प्रकार हैं-

१. मध्यमाधिकार २. स्पष्टाधिकार ३. त्रिप्रश्नाधिकार ४. चन्द्रग्रहणाधिकार ५. सूर्यग्रहणाधिकार ६. छायाधिकार ७. उदयास्ताधिकार ८. शृङ्गोन्नत्यधिकार ९. ग्रहयुत्यधिकार १०. याताधिकार।

**'ज्योतिष'** से निम्नलिखित का बोध हो सकता है-

- वेदाङ्ग ज्योतिष
- सिद्धान्त ज्योतिष या 'गणित ज्योतिष' (Theoretical astronomy)
- फलित ज्योतिष (Astrology)
- अंक ज्योतिष (Numerology)
- खगोल शास्त्र (Astronomy)

भारतीय आर्यो में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के

क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋग्वेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्राह्मण), रोहिणी से कृत्तिका (तैत्तिरीय संहिता) कृत्तिका से भरणी (वेदाङ्ग ज्योतिष)। तैत्तरिय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरम्भ माना जाता था, पर अयन की गणना माघ मास से होती थी। इसके बाद वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरम्भ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुबद्दिन की यह स्थिति ईसा से 4000 वर्ष पहले थी। अत: इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने गीता में कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'।

प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यन्त प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धान्त भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया; क्योंकि इसके संबंध में जब कि युरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। वराहमिहिर के समय में ज्योतिष के सम्बन्ध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे- **सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश ओर रोमक।** सौर सिद्धान्त संबंधी सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में ग्रहों के भुजांश, स्थान, युति, उदय, अस्त आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशातंर का भी विचार है।

पूर्व काल में देशान्तर लंका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अन्तर पड़ता है। क्रांतिवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (युनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे, होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि

तथा च स्मर्यते-

**योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने।**
**एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोस्तु ते॥** -सा.भा.ऋ.

आर्यभट्ट को पृथिवी के स्व अक्ष पर घूमने का भी पता था-

**अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।**
**अचलानि आनि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम्॥**

इस प्रकार नाव की उपमा से उन्होने इस सिद्धान्त को सिद्ध किया सूर्य सिद्धान्त (2.24) में एक ऐसा सूत्र है जो बिना बीज गणित के बन ही नहीं सकता। अतः इसका श्रेय भी भारतीय ज्योतिष को ही है। ज्यामिति के क्षेत्र में आर्यभट्ट ने व्यास परिधि के अनुपात का पता लगा कर पाई का उदाहरण प्रस्तुत किया था-

**चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्त्राणाम्।**
**अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः॥**

**प्राचीन भारतीय कालविभाजन सिद्धान्त -**

प्राचीन काल में कालविभाजन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया गया था। गैलेलियो (ई.स. 1564-1642) पहली बार समय का विभाजन सेकेण्ड के रूप में किया था ऐसा पाश्चात्य मनीषियों का अभिप्राय है। किन्तु महाभारत में हम देख सकते है कि सेकेण्ड का भी विभाग किया हुआ है। जैसे-

**काष्ठा निमेषा दश पञ्च चौव त्रिंशत् काष्ठा गणयेत् कलां ताम्।**
**त्रिंशत्कलाश्चपि भवेन्मुहूर्तो भागः कलायाः दशमश्च यः स्यात्॥**
**त्रिंशन्मुहूर्तन्तु भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिर्भिः प्रणीता।**
**मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत् संवत्सरो द्वादशमास उक्तः॥**
**संवत्सरे द्वे त्वयने वदन्ति संख्याविदो दक्षिणमुत्तरश्च॥**

-महाभारतम्॥

इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से प्रतिपादित किया जाता है -

| | | |
|---|---|---|
| 1/4 निमेष | = | 1 त्रुटि |
| 2 त्रुटि | = | 1 लव |
| 2 लव | = | 1 निमेष |
| 5 निमेष | = | 1 काष्ठा |

| | | |
|---|---|---|
| 10 काष्ठा | = | 1 कला |
| 40 कला | = | 1 नाडिका |
| 2 नाडिका | = | 1 मुहूर्त |
| 15 मुहूर्त | = | 1 अहोरात्र |
| 7 अहोरात्र | = | 1 सप्ताह |
| 15 अहोरात्र | = | 1 पक्ष |
| 2 पक्ष | = | 1 मास |
| 12 मास | = | 1 वर्ष |

दिन एवं मासों का नाम निश्चित करने के लिए भी चन्द्रमा की कलाओं ग्रहों और नक्षत्रों की गति पर आधारित पूर्णतया वैज्ञानिक पद्धति विकसित की गई थी। यह जानकर आश्चर्य होता है कि काल का यह अति सूक्ष्म ज्ञान कैसे सम्भव हो सका। न केवल वेदांग ज्योतिष एवं ज्योतिष में ही इसका उदाहरण मिलता है अपि तु याज्ञवल्क्य स्मृति में नवग्रहों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

**सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।**
**शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः॥**

आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में आर्यभट्टीय के चतुर्थ प्रकरण गोलपाद में यह घोषणा की है कि पृथ्वी गोल है और वह अपनी धुरी पर परिभ्रमण करती रहती है ऐसा प्रतिपादन करने वाले विश्व के प्रथम व्यक्ति थे। उन्होनें पृथ्वी के आकार, गति एवं परिधि 4967 योजन और व्यास 1581 योजन बताया है। एक योजन का मान 5 मील होने के अनुसार दोनों क्रमशः 24835 मील और 7905 मील होते है।

**सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का कारण–**

आर्यभट्ट ने सूर्यग्रहण और चन्द्रगहण का सही कारण बताते हुये निरुपित किया है कि चन्द्रमा और पृथ्वी की परछाई पड़ने पर ग्रहण लगता है, राहु और केतु के प्रकोप से नही। उन्होनें प्रतिपादित किया है कि सूर्य से कितने अन्तर पर चन्द्रमा, मंगल और बुध आदि दृष्ट होते है। उन्होनें उत्तरीध्रुव (सुमेरु) और दक्षिणी ध्रुव (बड़वामुख) की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। भास्कराचार्य के अनुसार चन्द्रग्रहण में चन्द्र ग्राह्य है और ग्राहक है भूच्छाया जिसको ग्रन्थो में भूभा कहा गया है। जैसे–

**भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।**
**दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता॥**

सूर्यग्रहण में सूर्य ग्राह्य है और ग्राहक चन्द्रबिम्ब है। अमान्त में रविकक्षा के नीचे अपनी कक्षा में स्थित चन्द्र मेघ की तरह रविबिम्ब का आच्छादन करता है।

यथा –

**छादयत्यर्कमिन्दुः विधुं भूमिभा**
**छादकश्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु।**
**तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यथा**
**ग्राह्यहीनावशिष्टं तु स्वच्छन्नकम्॥**

भट्टकमलाकर के अनुसार आकाशस्थ ग्रहबिम्बों में केवल सूर्य ही प्रकाशमान ग्रह है। अन्य सभी सूर्यरश्मि से प्रकाशित होकर चमकते रहते है। ग्रहगोल के विषय में भास्कराचार्य जी का मत। यथा –

**तेजसां गोलकः सूर्यः ग्रहाण्यम्बुगोलकाः।**
**प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः॥**

महाभारत में ग्रहों और नक्षत्रों के बीच विद्यमान दूरी और उनकी गति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इस ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह और नक्षत्र परिभ्रमण करते है। यथा–

**एवं त्वहरहर्मेरुं सूर्यचन्द्रमसौ ध्रुवम्।**
**प्रदक्षिणमुपावृत्य कुरुतः कुरुनन्दन॥**
**ज्योतींषि चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघसर्वतः।**
**परियान्ति महाराज गिरिराजं प्रदक्षिणम्॥28॥**

–महाभारतम्, वनपर्व, 163 अ.॥

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन इस मेरु गिरि का परिभ्रमण करते है। अन्य नक्षत्र भी इन की परिक्रमा करते है। इसी अध्याय में वेदव्यास ने अहोरात्रि और मासों के परिवर्तन का कारण में सूर्य और चन्द्रमा को ही माना है। यथा –

**स मासान् विभजन् काले बहुधा पर्वसन्धिषु।**
**तथैव भगवान् सोमो, नक्षत्रैः सह गच्छति॥32॥**

अर्थात् चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ मेरुपर्वत की परिक्रमा करता है और पर्वसन्धि समय मे मासों का विभाजन करता है।

**सन्दर्भग्रन्थसूची-**


1. सिद्धान्ततत्त्वविवेकः, श्री कमलाकरभट्ट, चौखम्भा संस्कृतभवनम्, वाराणसी
2. महाभारतम्- गीता प्रेस गौरखपुर, प्रकाशन।
3. सिद्धान्तशिरोमणिः- भास्कराचार्यरचितम्, मोती लाल, बनारसीदास, दिल्ली।
4. आर्यभट्टीयम्- आर्यभट्ट, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
5. सूर्यसिद्धान्तः कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी।
6. मुहूर्तचिन्तामणि श्रीरामदैवज्ञविरचितं, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
7. मूहूर्तमार्तण्डः दैवज्ञनारायण विरचितौ, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
8. होरारत्नम् : श्री मन्मिश्र बलभद्रमिश्र विरचितं, मोती लाल, बनारसीदास, दिल्ली।


✦✦✦

# प्राथमिक स्तर पर संस्कृत भाषा के शिक्षण हेतु संरचनावादी प्रयोग

डॉ. नितिनकुमार जैन*

**सारांश**

भारतीय भाषाओं का शिक्षण नामक दस्तावेज (पृ. 19) के अनुसार संस्कृत भाषा की पाठ्यपुस्तकों की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थी जीवन में प्रासंगिक हो। इस निर्देश को ध्यान में रखते हुये प्राथमिक स्तर के लिए एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित 'रुचिरा' प्रकाशित की गयी हैं। 'रुचिरा' के 'पुरोवाक्' की प्रथम पंक्ति में भी दस्तावेज को ध्यान में रखा गया है कि विद्यार्थियों के वर्तमान जीवन का विद्यालयेतर जीवन के साथ संयोजन होना चाहिए। द्वितीय,'पुरोवाक्' में सर्जनशक्ति एवं कार्यारम्भ प्रवृत्ति के संदर्भ में शिक्षण-प्रक्रिया में विद्यार्थियों की सहभागिता को अधिक मूल्य देने का निर्देश प्राप्त होता है। इन दोनों मुद्दों पर संरचनावादी प्रयोगों की महत्ता बढ़ जाती है।

वर्जिनिया रिचर्डसन (2003) ने कोब एवं अन्य (1991), फ्रीडमेन (2001), बार (2001), व्हाइट (2001) आदि का उल्लेख करते हुये कहा है कि किसी विषय के साझा अवबोध एवं सर्जन हेतु संरचनावादी क्रियाव्यवहार, अनुसन्धानों में अधिक प्रभावी सिद्ध हुये हैं। संरचनावाद की सामान्य अवधारणा ही यह हैं कि यह अधिगम अथवा अर्थनिर्माण (meaning making) का सिद्धान्त है जिसमें व्यक्ति पूर्वज्ञान एवं विश्वास तथा संपर्क में आए विचार एवं ज्ञान के मध्य अंत:क्रिया के माध्यम से स्वयं नवीन अवबोध का निर्माण करता है (रेसनिक, 1989)। वर्तमान रूपरेखा भी इसी सिद्धान्त को प्रोत्साहित करती है। संस्कृत शिक्षण के लिए निर्धारित पाठ्यपुस्तकों का विश्लेषण इस दृष्टिकोण से किया गया है कि किन पाठों या पाठांशों पर संरचनावादी

---

* सहायक प्राध्यापक (शिक्षाशास्त्र), केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली

विधिओं के अनुप्रयोग किए जा सकते हैं। प्रस्तावित विधिओं के उल्लेख यहाँ प्रस्तुत है–

1. कार्य-आधारित अंत:क्रिया (मिचेल, 1994)
2. लक्ष्य भाषा का प्रयोग (हेरिस एवं ड्यूबिर, 2011)
3. अनुभवात्मक प्रयोग (बेस्टब्रूक एवं अन्य, 2013)
4. उच्च क्रम चिन्तन कौशल (रॉबिन कॉलिन्स, 2014)
5. मतिष्क आधारित अधिगम (ली चापुइस, 2003)
6. भूमिका अभिनय (एम. एन. देशमुख, 2009)
7. सहभागी अधिगम (ओल्सेन एवं केगन, 1992)

प्राथमिकस्तरीय संस्कृत पाठ्यपुस्तक 'रुचिरा' के तीन भागों की विषयवस्तु के साथ प्रस्तुत शोधपत्र में उपर्युक्त विधिओं के प्रयोगों की चर्चा की गयी है। इस प्रस्तुतीकरण का तर्काधार यह है कि शिक्षण की अंत:क्रिया में संरचनावादी विधिओं के अनुप्रयोग की अत्यंत आवश्यकता है और यह अनुप्रयोग संस्कृत शिक्षण के लिए प्रभावशील भी है।

## परिचय

प्राथमिक स्तरीय संस्कृत शिक्षण हेतु नवीन शिक्षणशास्त्र में संरचनावादी नीतिओं की चर्चा बड़ी प्रासंगिक है। अधिगम, शिक्षण एवं विकास के बारे में सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक मूल्यों एवं सिद्धांतों पर शिक्षणशास्त्र में हम एक व्यवस्था को पाते हैं। आज की नवीन शिक्षणशास्त्रीय व्यवस्था अधिगम को एक खोज की प्रक्रिया की तरह देखती है। इस नूतन अवधारणा में अन्वेषण, सर्जनात्मकता और समाजिकता के आधार पर अधिगम का विकास देखा जाता है। इस अवधारणा की नवीनता यह है कि इसने शिक्षण के विषय में दो बातों को गलत सिद्ध किया। एक, कि शिक्षक के पास विषय की प्रवीणता होनी चाहिए। दूसरी बात, कि एक शिक्षक सब कुछ सिखा सकता है।

आज का संप्रत्यय शिक्षक की प्रवीणता से अधिक सम्प्रेषण-कुशलता पर जोर देता है। प्रभावी शिक्षक के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी भूमिका एक प्रबन्धक के रूप में स्वीकार करें। तब संरचनावाद का अर्थ अधिगम या अर्थ-निर्माण के ऐसे सिद्धान्त के रूप में होगा जो व्यक्ति द्वारा स्वयं आत्मीकृत की जाती है वर्जिनिया

रिचर्डसन (2003, पृ. 1-2)। यह वस्तुतः अधिगम का सिद्धान्त न होकर, जानने का सिद्धान्त है जो अधिगम के सिद्धान्त के निर्माण में उपयोगी हो सकता है (थोमसन, 2000)। फिर भी संरचनावाद की विचारधारा पर संरचनावादी शिक्षणशास्त्र का विकास हुया है, जिसकी कुछ विधिओं पर चर्चा प्राथमिक स्तर के संस्कृत शिक्षण के लिए उपयोगी है।

प्राथमिक स्तर (कक्षा 6-8) पर संस्कृत शिक्षण के लिए रुचिरा के तीन भाग राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद,नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुये हैं। ये पाठ्यपुस्तकें संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए अत्यन्त विषयवस्तु और दिशानिर्देश प्रदान करती हैं। इन्हीं पुस्तकों की विषयवस्तु के आधार पर हमें संरचनावादी प्रयोगों को जानना है। पिछले कई दशकों में संरचनावादी दृष्टि से अनेक प्रयोग हुये और फलस्वरूप अनेक विधिओं के निर्धारण किया गया। इनमें से कुछ विधिओं के बारे हम बात करेंगे-

### 1. कार्य-आधारित अंतःक्रिया [ Task & based Interaction ]

भाषाशिक्षण के संप्रेषणात्मक उपागम के अंतर्गत कार्य आधारित अंतःक्रिया द्वितीय भाषा के अधिगम में सहायक मानी जाती है (ओलिवर, फिल्प एवं मेकी; 2008)। इस परिप्रेक्ष्य में संस्कृत शिक्षण हेतु यह विधि बहुत उपयोगी है। कार्य-आधारित अंतःक्रिया के दौरान किसी कार्य पर एक अध्यापक की भूमिका एक सरलकर्ता और मॉनिटर की तरह होता है (केंब्रिजइंग्लिशः टीचिंग नॉलेज टेस्ट, 2015)। यहाँ द्वितीय भाषा या मातृभाषेतर अधिगम हेतु अध्यापक क्रियाओं को कार्य के रूप में निर्मित करता हैऔर ये क्रियाएँ अधिगमकर्ताओं के उत्पादन एवं अवबोध कौशलों के विकास में सहायक हो सकती हैं (हेरिस एवं दुहिर, 2011)। संस्कृत भाषा के अधिगम के लिए कुछ कार्यों के प्रयोग संभव हो सकते हैं।

संप्रेषणात्मक भाषा शिक्षण या कार्य-आधारित अधिगम हेतु 1990 के दशक में महत्त्वपूर्ण प्रयोग हुये। जेकब्स एवं फेरेल (2003) ने कार्य-आधारित अधिगम हेतु जिस नए प्रतिमान को प्रस्तुत किया है, उसमें 8 मूलतत्त्व निर्णायक माने गए हैं- अधिगम स्वायत्तता, अधिगम की सामाजिक प्रकृति, पाठ्यचर्या एकीकरण, अर्थ-केन्द्रीकरण, विविधता, चिंतन कौशल, वैकल्पिक आकलन एवं सह-अधिगमकर्ता के रूप में अध्यापक। यहाँ अध्यापक इन सभी संदर्भों में भाषा अभ्यास से परे नवीन क्रियाओं एवं कार्यों को निर्मित करता है, जहाँ विद्यार्थी किसी रुचिपूर्ण प्रकरण पर अपने विचार और भावनाओं को साझा करते हैं।

इसके अतिरिक्त कार्य-आधारित अधिगम दो उद्देश्यों के लिए महत्त्वपूर्ण है-

* उत्पादन एवं अवबोध कौशलों को बढ़ावा देना
* कार्यों में लक्ष्यभाषा का प्रयोग करना

अब कार्य आधारित अंत:क्रिया से संबन्धित प्रयोगों को 'रुचिरा'की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं-

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | प्रथम भाग, पाठ चतुर्थ **क्रीडास्पर्धा** | ■ विविध क्रीड़ाओं के नाम लिखना,<br>■ उनके लिए समूहों का नाम देना<br>■ समूह के सदस्यों की सूची बनाना, इत्यादि। |
| 2. | प्रथम भाग, पाठ पंचम **वृक्षाः** | ■ विभिन्न वृक्षों, पादपों एवं पुष्पों की सूची बनाना<br>■ मुद्रित चित्रों को एकत्रित करना<br>■ अलग अलग आकृति बनाना, इत्यादि। |
| 3. | प्रथम भाग, पाठ अष्टम सूक्तिस्तबक: द्वितीय भाग, पाठ प्रथम सुभाषितानि तृतीय भाग, पाठ प्रथम सुभाषितानि | ■ सत्य, दान, संगति, क्षमा आदि जीवन मूल्यों पर अन्य श्लोकों का संकलन करना<br>■ पठित मूल्यों से सम्बद्ध हिन्दी या मातृभाषा के अन्य प्रचलित छंदों के चयन करना, इत्यादि। |

## 2. लक्ष्य भाषा का प्रयोग [ Use of Target Language ]

मातृभाषेतर शिक्षण हेतु यह जरूरी है कि अधिगमकर्ता भाषागत व्यापक आगत प्राप्त करें (जुड एवं अन्य, 2001)। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षक सीखने जाने वाली भाषा का प्रयोग व्यापक तौर पर करें (हेरिस एवं ड्यूबिर, 2011)। द्वितीय भाषा की अधिगम परिस्थितियों पर हुये अनुसन्धानों में यह सकारात्मक रूप से ज्ञात हुया है कि लक्ष्य भाषा के प्रयोग का अपना संज्ञानात्मक प्रभाव होता है (जी.टी. मोलिना)। यह एक प्राकृतिक पद्धति है, जिसमें भाषा का अर्जन नैसर्गिक होता है। इस पद्धति को प्रत्यक्ष पद्धति भी कहते है।

लक्ष्य भाषा के प्रयोग की पहली विशेषता यह है कि प्रतिदिन की भाषा ही अपने आप में उद्देश्य बन जाती है। अन्य शब्दों में **साध्य भाषा** और **साधन भाषा** में अन्तर समाप्त हो जाता है। दूसरी विशेषता यह है कि प्रश्नोत्तर और संवाद मुख्यक अंत:क्रिया द्वारा शिक्षण में सजीवता आती है। अंतिम बात यह है कि इस तरह बाह्य पदार्थों और भाषा के सामर्थ्य के बीच सह-संबंध निर्मित होता है। **लक्ष्य भाषा (संस्कृत)** का प्रयोग करते समय कुछ बिन्दुओं का ध्यान रखना चाहिए, जैसे-

- सरल संस्कृत का प्रयोग करना, जैसे- संधि और समास-रहित पदों का प्रयोग।
- सर्वनाम के स्थान पर पुनः पुनः संज्ञा पदों का ही प्रयोग करना।
- मूर्त-संसाधनों का उपयोग करना, यथा- प्रतिमान, चित्र आदि।
- उद्दीपन-परिवर्तन का भी ध्यान रखना, जिससे अंत:क्रिया में पराभाषिक तत्त्वों का भी समावेश हो सके।
- प्रश्नोत्तर एवं संवाद को मुख्यता देना।

### 3. अनुभवात्मक क्रियाविधि [ Experience&based Activities ]

प्रासंगिक और अप्रासंगिक अनुभवों का विभेदन भी अधिगम का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। विद्यार्थी स्वयं की व्यक्तिगत जिंदगी से बहुत कुछ सीखते हैं। यहाँ भाषा शिक्षण में यह सीखना महत्त्वपूर्ण है कि विविध अनुभवों को परस्पर किस तरह सह-संबन्धित करते हैं। यदि हमारे स्वयं उपात्त अनुभव विद्यालय में सीखने की वर्तमान विषयवस्तु से संयुक्त होते हैं तो उन्हें सापेक्षित रूप से प्रासंगिक कहा जा सकता है। कक्षाकक्ष में ऐसा वातावरण निर्मित करना जरूरी है जहाँ विद्यार्थी अपने अनुभवों को अभिव्यक्त कर सकें। **संरचनावादी अधिगम के संदर्भ यह गुणात्मक परिस्थिति और अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि संरचनावाद का मूलाधार अनुभवों का निर्माण ही है।**

**बालक-केन्द्रित शिक्षा** जहां हम इस बात का ख्याल रखते हैं कि शिक्षण की विधियाँ 'अदृश्य' रूप में शिक्षणीय विषयवस्तु को संप्रेषित करें, एतदर्थ हम विद्यार्थियों से उनके अनुभव पूछकर उनके समक्ष नूतन अनुभवों को प्रस्तुत करते हैं (बेस्टब्रूक एवं अन्य, 2013)। **प्रायोजना कार्य** एवं **क्रियाधारित गतिविधियां** इसके लिए सरल उपाय हैं। अब अनुभवात्मक क्रियाविधि से संबन्धित प्रयोगों को **'रुचिरा'** की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं-

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | प्रथम भाग, पाठ षष्ठ **समुद्रतटः** | ■ नदीतट, झील आदि के भ्रमण के अनुभवों को सुनना, और समुद्र के बारे समझे तथ्यों से जोड़ने की कोशिश करें<br>■ अनेक अनुभवों के मध्य समानता और असमानता का बोध करना, जैसे अनेक परिस्थितियों में भ्रमण, करना, अनेक मौसमों में घूमने जाने के अनुभव, धार्मिक कार्यों के लिए तीर्थयात्रा, इत्यादि। |
| 2. | द्वितीय भाग, पाठ नवम **विमानयानं रचयाम** | ■ विभिन्न देखे हुये वाहनों पर अनुभवों को लिखना<br>■ कल्पनाशीलता से अन्य वाहनों से जुड़ी बातों को छोटी छोटी कविता बनाना, इत्यादि। |
| 3. | द्वितीय भाग, पाठ प्रथम सुभाषितानि | ■ सत्य, दान, संगति, क्षमा आदि जीवन मूल्यों पर अन्य श्लोकों का संकलन करना<br>■ पठित मूल्यों से सम्बद्ध हिन्दी या मातृभाषा के अन्य प्रचलित छंदों के चयन करना, इत्यादि। |

## 4. उच्च क्रम चिन्तन कौशल [ Higher Order Thinking Skills : HOTS ]

संज्ञान के उच्च स्तर पर **विश्लेषण** एवं **मूल्यांकन कौशलों** के लिए जरूरी है कि समस्या-आधारित पद्धति का अधिक प्रयोग किया जाए। किसी परिस्थिति के विषय में निर्णय क्षमता का विकास करना तथा आलोचनात्मक रीति से चिंतन कर सकना उच्च स्तरीय चिंतन को बताता है। उदाहरण के लिए भाषा-अध्यापक जब पूछता है कि किसी प्रकृत भाषा के नियमों में अनिवार्य नियम क्या है? प्रस्तुत पाठ

का सारांश न्यूनतम शब्दों में किस तरह से लिखा जा सकता है?उच्च कौशलों के विकास के लिए परिचर्चा एवं निर्णय निर्माण केन्द्रित गतिविधि महत्त्वपूर्ण होती हैं(रॉबिन कॉलिन्स, 2014)।

अब उच्च क्रम चिन्तन कौशलसे संबन्धित प्रयोगों को 'रुचिरा'की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं-

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | तृतीय भाग, पाठ एकादश सावित्री बाई फुले | ■ वर्तमान बालिका शिक्षा पर बातचीत करना<br>■ बालिका शिक्षा पर सरकारी नीतिओं एवं कार्यक्रमों का विश्लेषण करना<br>■ सामाजिक समस्याओं पर संवाद करना, इत्यादि। |
| 2. | प्रथम भाग, पाठ एकादश पुष्पोत्सव: | ■ उत्सवप्रिय भारत के अन्य उत्सवों के बारे में बातचीत करना, जिन्हें विद्यार्थी पसंद करते हैं।<br>■ उत्सव को मनाने के व्यवहारों पर बात करना, तथा यह पूछना कि उत्सवों का उनके जीवन पर किस तरह का प्रभाव होता है? |

## 5. मस्तिष्क आधारित अधिगम [ Brain&based Learning ]

यह विशिष्ट अधिगम पद्धति प्रारूप-निर्माण (patterning) पर बल देती है। प्रारूप-निर्माण का अर्थ है कि मस्तिष्क उसी तथ्य को सरलतया स्वीकार नहीं करता है जो तार्किक एवं अर्थपूर्ण न हो (ली चापुइस, 2003)। हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति सूचनाओं को व्यवस्थित करने की होती है, और हम उन सूचनाओं के साथ समस्या का अनुभव करते हैं जो किसी विषय के साथ सम्बद्ध नहीं हो पाती हैं। मस्तिष्क आधारित अधिगम इस बात भी बल देता है कि हमारा मस्तिष्क एक समानान्तर संसाधक (processor) की तरह अनेक कार्य एक साथ करता है (केन एवं केन, 1995)। यहाँ सूचनाओं को अर्थपूर्ण बनाना और गत्यात्मक अधिगम वातावरण में सामंजस्य बैठना महत्त्वपूर्ण है (ली चापुइस, 2003)।

अब मस्तिष्क आधारित अधिगमसे संबन्धित प्रयोगों को व्याकरण के पाठों में अधिक प्रयोग में लाया जा सकता है, क्योंकि संस्कृत व्याकरण के नियमों और प्रयोगों में सूचनाओं की क्रमबद्धता और तार्किकता महत्त्वपूर्ण होती है। अत: 'रुचिरा' की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं-

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | प्रथम भाग (परिशिष्ट) **कारक-विभक्ति-परिचय:** | ■ 'सरल से कठिन','सामान्य से विशेष' आदि शिक्षण सूत्रों अनुरूप सूचना सम्प्रेषण में क्रम अपनाना |
| 2. | प्रथम भाग (परिशिष्ट) **शब्दरूपाणि** | ■ विद्यार्थी के अधिगम स्तर के अनुकूल अभ्यास कार्य |
| 3. | द्वितीय भाग (परिशिष्ट) **धातुरूपाणि** | ■ आगमन एवं प्रयोग की क्रियाविधियों में सूचना-सम्प्रेषण का क्रम अपनाना |
| 4. | तृतीय भाग **सन्धि:, उपसर्ग:, प्रत्यय:** | ■ अनुप्रयोगार्थ संस्कृत पदों का अर्थ स्पष्ट करना, इत्यादि। |

### 6. भूमिका अभिनय [ Role Playing ]

अभिनय अपनी तरह की एक विशिष्ट विधि है जिसमें विद्यार्थी जीवन की वास्तविक परिस्थिति का निर्माण करते हैं। यह जीवन मूल्यों और अनुभवों की संप्राप्ति की बहुत ज्यादा व्यावहारिक विधि है। इसका ढाँचा क्रीडात्मक होता है और प्रक्रियाएँ अनुभवमूलक होती हैं। यह विद्यार्थियों के लिए केवल कृत्रिम परिस्थिति न होकर, नवाचार और सर्जनात्मक परिस्थिति होती है। उनका (विद्यार्थियों का) खेल केवल बड़ो की नकल नहीं है। वे नाटक को वास्तविक जीवन की भाँति खेलते हैं। उनके लिए यह वास्तविक है। वे नाटक के विवरण अंतराल को कल्पना और धारणा द्वारा पूर्ण कर लेते हैं। भूमिका-अभिनय इन छोटे बच्चों के लिए अधिगम का प्राकृतिक तरीका है (एम. एन. देशमुख, 2009)।

सामान्य कक्षा में भी भूमिका अभिनय का संचालन किया जा सकता है। इसे प्रदर्शित करना आसान है और यह वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में अधिगम उपलब्ध कराता है। यह सोचने की प्रेरणा देता है, कल्पनाशक्ति को बल और समस्यात्मक परिस्थिति को स्वाभाविक प्रत्युत्तर देता है। भूमिका-अवहिने द्वारा सर्जनात्मक समस्या-समाधान में कोई सही या गलत हल नहीं होता। यह अनेक

समाधानों का अन्वेषण है (एम. एन. देशमुख, 2009)।

अब भूमिका अभिनय से संबन्धित प्रयोगों को 'रुचिरा'की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं-

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | प्रथम भाग, पाठ चतुर्थ क्रीड़ास्पर्धा | ■ पात्रों एवं विषयवस्तु का चयन सावधानी से करना<br>■ संवादों का संक्षिप्तीकरण करना |
| 2. | द्वितीय भाग, पाठ चतुर्थ **हास्यबालकविसम्मेलनम्** | ■ अध्यापक द्वारा उद्दीपन, शैली, भाषा आदि के बारे में प्रदर्शन करना |
| 3. | तृतीय भाग, पाठ नवम **सप्तभगिन्यः** | ■ अभिनय के पश्चात चर्चा और मूल्यांकन करना, इत्यादि। |
| 4. | तृतीय भाग, पाठ द्वादश **कः रक्षति कः रक्षति** | |

### 7. सहभागी अधिगम [ Cooperative Learning ]

एक महत्त्वपूर्ण पद्धति जो वर्तमान में भाषा शिक्षण को बहुत हद तक प्रभावित कर रही है, वह है सहभागी अधिगम (ओल्सेन एवं केगन, 1992)। पियाजे, व्यगोत्स्की एवं डीवी के विचारों से इसे नवीन संकल्पना प्राप्त हुई (जी.टी. मोलिना)। इसे समवयस्क समूह अधिगम (peer learning) एवं सामाजिक अधिगम (social learning) भी कहा जाता है। यह एक ऐसी अधिगम परिस्थिति है जहाँ विद्यार्थी साथ साथ कार्य करते हैं। इसका उद्देश्य प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोगात्मक व्यवहारों को प्राथमिकता प्रदान करना है। अधिगमकर्ता प्रत्यक्ष एवं सक्रिय रूप से अनुभव प्राप्त करते हैं। समूह सदस्यों के साथ प्रदत्त कार्य को करना और स्वयं के अधिगम को मूल्यांकित करना सहभागी अधिगम को महत्त्वपूर्ण बनाता है।

यह एक उपागम की तरह काम करता है, जिसके पाँच मुख्य सिद्धान्त हैं (रिचर्ड्स एवं रोजर्स, 2001; नाटन, 2004)। ये हैं- सकारात्मक निर्भरता, वैयक्तिक जबाबदेहिता, अंतर्व्यक्तिगत एवं सामाजिक कौशल, समूह निर्माण या समूह प्रक्रिया, संरचना निर्माण एवं संरचना। इस उपागम में 'सन्दर्भ' का बोध सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। यह सहभागी अधिगम तभी प्रभावी है जब अधिगमकर्ता को स्वायत्तता प्राप्त

हो, आलोचनात्मक चिंतन एवं परासंज्ञानात्मक जागरूकता का वातावरण हो और पाठ्यवस्तु में अंतर्निहित विविधता हो (हिर्स्ट एवं स्लाविक, 1990; केगन, 1995; चफे, 1998; नाटन, 2004)।

अब सहभागी अधिगम से संबन्धित प्रयोगों को **'रुचिरा'** की विषयवस्तु के संदर्भ में समझते हैं–

| क्र. | विषयवस्तु | प्रयोग बिन्दु |
|---|---|---|
| 1. | द्वितीय भाग, पाठ त्रयोदश **अमृतं संस्कृतम्** | ■ संस्कृत भाषा के बारे प्रस्तुति तैयार कराना<br>■ संस्कृत भाषा के बारे अन्य श्लोक और वाक्यों का संकलन |
| 2. | द्वितीय भाग, पाठ पंचम **पण्डिता रमाबाई** | ■ संस्कृत माध्यम से अन्य ऐसी देशभक्त एवं समाज सेवी महिलाओं की जानकारी, चित्र आदि इकठ्ठा करने के किए प्रायोजना कार्य देना |
| 3. | तृतीय भाग, पाठ पंचम **धर्मे धमनं पापे पुण्यम्** | ■ प्रचलित लोककथाओं के संकलन पर प्रायोजना कार्य देना |

**उपसंहार:**

संस्कृत भाषा शिक्षण के लिए नई विधियाँ आज बहुत महत्त्वपूर्ण हो गयी हैं। इस संदर्भ में प्रस्तुत आलेख में सात ऐसी संरचनावादी विधिओं का परिचय दिया गया है। **'रुचिरा'** के तीन भागों से कुछ पाठों को लेकर संरचनावादी प्रयोगों के कुछ बिन्दु स्पष्ट किए गए हैं। इन प्रयोगों में एक बात अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि विद्यार्थियों के अनुभवों और स्वत: सक्रियता को शिक्षण का आधार बनाया जाता है।

**संदर्भ :**

राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद, (2009), भारतीय भाषाओं का शिक्षण: राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, नई दिल्ली।

गुलाटी, सुषमा, (संपा.) (2009), सर्जनात्मकता के लिए शिक्षा, नई दिल्ली: राष्ट्रिय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद।

Academy Publisher, (2011), Journal of Language Teaching and Research, Vol. 2, No. 4, July 2011.

Cambridge English TKT. (2016), Teaching Knowledge Test : Glossary 2015. Cambridge : Cambridge English Language Assessment.

Herris, J. & Duibhir, P O. (2011), Effective Language Teaching : A Synthetic of Research, Dublin : NCCA.

Hirst, L.A. and Slavik, C. (1990) : Effective Language Education Practices, in Reyhner, J. (ed.) : Native American Language Issues. Choctaw : NALI Board of Executors and Jon Reyhner, pp. 133 & 142.

Kagan, S. (1995) : We Can Talk : Cooperative Learning in the Elementary ESL Classroom, in ERIC Digest : 1&4.

Naughton, D. (2004) : The Cooperative Organisation of Strategies for Oral Interaction in the English as a Second Language Classroom-Unpublished Doctoral Dissertation. University of Granada.

Olsen, R.E. and Kagan, S. (1992) : About Cooperative Learning, in C. Kessler (ed.) : Cooperative Language Learning : A Teacher's Resource Book. Englewood Cliffs, NJ : Prentice Hall.

Scarino, A & Liddicoat, A J. (2009). Teaching and Learning Language : A Guide. Carlton South : Department of Education, Employment and Workplace Relation, Government of Australia.

Tesol, (2012). A Principles & Based Approach for English Language Teaching Policies and Practices. California : Tesol International Association.

T, Husen & T.N. Postlethwaite, (eods.) (1989) The International Encyclopaedia of Education, Supplement Vol.1. Oxford@New York : Pergamon Press, 162–163.

✦✦✦

# वर्तमान भारतीय शिक्षा व्यवस्था में वैदिक शिक्षा की प्रासंगिकता

डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार*

**भूमिका -**

देश के सर्वांगीण एवं बहुमुखी विकास के लिए शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है। वर्तमान में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में प्रतिवर्ष अनेकानेक परिवर्तन देखे जा सकते हैं, जिनका कारण मुख्यरूप से पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली ही है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में कितना भी पाश्चात्यीकरण क्यों न हो, वे हमारी शिक्षा के आधार वैदिक शिक्षा को भुला नहीं सकते तथा उसका योगदान आज भी हमारी भारतीय शिक्षा प्रणाली को जीवन्त स्वरूप प्रदान करता है। वेद भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम ग्रन्थ माने जाते हैं। वेद ज्ञान के अथाह भण्डार हैं। वेदों का ज्ञान एवं आचरण जीवन को सुसंबद्ध एवं नैतिक रूप से जीने की महत्वपूर्ण कुंजी है। इस प्रकार वेद हमें एक सफल तथा वास्तविक जीवन जीने हेतु मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा प्रणाली पूर्णतया वैदिक ज्ञान आधारित शिक्षा प्रणाली थी। यह न केवल हमें कोरा ज्ञान प्रदान कराती थी। अपितु जीवन को अत्यधिक व्यवहारिक एवं सकारात्मक मनोभावों से युक्त कर वास्तविक लक्ष्य का मार्ग दर्शन कराती थी। वस्तुतः मानव जीवन के दो पक्ष हैं बाह्य पक्ष एवं आन्तरिक पक्ष। बाह्य पक्ष भौतिक जीवन से सम्बन्धित होता है। भौतिक सुख ही इस पक्ष का ध्येय होता है। आन्तरिक पक्ष का भौतिक साधनों या सुखों से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वस्तुतः जीवन का आन्तरिक पक्ष आध्यात्मिक पक्ष कहा जाता है जिसका लक्ष्य आत्मोत्सर्ग करना होता है। आत्मोत्सर्ग की अवस्था नैतिक मूल्यों एवं नीतिनिष्ठ आचरणों द्वारा आत्म अवस्थित होकर व्यष्टि चेतना का समष्टि चेतना के प्रति आह्वान है।

---

* सहायकाचार्य, शिक्षापीठ, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, (केन्द्रीय-विश्वविद्यालय) नई दिल्ली-16

इस शोध पत्र में आधुनिक भारतीय शिक्षा प्रणाली में वैदिक शिक्षा का योगदान के माध्यम से विश्व स्तर पर वैदिक शिक्षा के योगदान को प्रदर्शित करने का प्रयास किया गया है।

**भारतीय शिक्षा प्रणाली-**

वर्तमान में भारतीय शिक्षा व्यवस्था में वैदिक काल के समान ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य छात्रों का शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करना ही है। आज के समय में छात्र सर्वागींण विकास के साथ साथ देशभक्ति, सदाचार, नैतिकता आदि मानवीय मूल्यों को भी महत्तव देते हैं। वे शिक्षा का लक्ष्य देशहित को सर्वोपरि मानते है। ये सभी वैदिक शिक्षा का ही प्रभाव है। जैसा कि अधोलिखित वैदिक मंत्र से पता चलता है-

"माता भूमिः पुत्रोऽहम् पृथिव्याः" इस युक्ति के द्वारा वैदिक ऋषियों ने सामाजीकरण की भावना से राष्ट्रोन्नयन में योगदान का उपदेश दिया है। इस प्रकार के युक्तियों के माध्यम से वैदिक ऋषियों ने पर्यावरण के प्रति मानवीय कर्त्तव्यों का मानवीयकरण एवं मानवीय सम्बन्धों की भावनाओं के साथ जोड़ने का प्रयत्न किया है।

**वैदिक शिक्षा का योगदान-**

वैदिक साहित्य तथा वैदिक शिक्षा का योगदान आज भी हमारी भारतीय शिक्षा प्रणाली को जीवन्त स्वरूप प्रदान करता है। वैदिक शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ जो आज भी भारतीय शिक्षा प्रणाली में दिखाई देती हैं, वे निम्न स्वरूप में हैं-

**1. निःशुल्क शिक्षा ( Free Education )**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। राजा के द्वारा दिए गए दान के कारण विद्यार्थियों से या शिष्यों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। उनकी शिक्षा, भोजन और आवास का व्यय गुरूकुल तथा राजकोष पर निर्भर था। अतः आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली निःशुल्क शिक्षा वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही अनुकरण है।

**2. आवासीय विद्यालय/आश्रम विद्यालय ( Resident School )**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र आवासीय थे, विद्यार्थी या शिष्य यहां निवास करते

हुए शिक्षा प्राप्त करते थे। इनका आवास एवं शिक्षा पर होने वाला व्यय राजकोष या प्रजा के सहयोग से होता था। राजा के द्वारा दिए गए दान के कारण से शिक्षा, भोजन और आवास की व्यवस्था गुरूकुल तथा आश्रम की होती थी। अतः आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को छात्रावास की व्यवस्था वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही योगदान स्वरूप है।

**3. उत्तमोत्तम जीवन अभ्यास**- छात्र के नैतिक उत्थान के लिए आध्यात्मिक वातावरण का सृजन किया जाता था जिसके लिए यज्ञानुष्ठान इत्यादि को शिक्षणाभ्यास की प्रक्रिया में महत्व दिया जाता था। आत्मिक उत्थान के साथ-साथ स्वास्थ्य शिक्षा की ओर ध्यान देते हुए व्यक्ति के सामाजीकरण का प्रयास किया जाता था। जैसा कि **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः"** इस श्रुति वाक्य के द्वारा महर्षि ने सभी प्राणियों का सुख, निरोगी काया, कल्याणप्रद पदार्थ तथा समस्त दुःखों के विनाश के लिए सृष्टिकर्त्ता परब्रह्म परमेश्वर से प्रार्थना की है।

**4. गुरू-शिष्य का आदर्श सम्बन्ध**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्रों में गुरू और शिष्य एक साथ निवास करते थे। आवासीय व्यवस्था के कारण शिष्य गुरू के सानिध्य में रहकर उनके आचरण, व्यवहार और क्रियाकलापों का अनुसरण करना सीख जाता था। वे शिष्य शिक्षा के साथ साथ भोजन, भोजन सामग्री, खाद्यान्न, और आवास सम्बन्धी कार्यों में गुरू के आदेश से सहयोग करते थे। उनका सम्बन्ध पिता-पुत्र के समान देखा जाता था। इस प्रकार का आदर्श स्वरूप आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा में वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही योगदान है।

**5. वैयक्तिक प्रशिक्षण** - वैदिक कालीन शिक्षण व्यवस्था में मूल संस्कृति के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए विशेष प्रयास किए जाते थे, जिसके लिए विशेषतः वैदिक साहित्य, दर्शन, व्याकरण इत्यादि पढ़ाए जाते थे। **"यज्ञों वै श्रेष्ठतम् कर्म"** के मतानुसार कार्यानुभव की प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

**6. शिक्षण विधियां**- व्याख्या विधि, पाठशाला विधि, प्रदर्शन विधि, अन्वेषण विधि, प्रत्यक्ष विधि आदि का प्रयोग वर्तमान में भी दिखाई देता है।[1]

**7. धार्मिक-नैतिक जीवन/छात्रों का सरल जीवन**- उल्लेखनीय है कि यहाँ पर मुक्ति केवल मोक्ष के ही अर्थ में नहीं है। यह मुक्ति व्यवहारिक जीवन से

1. चरक संहिता।

भी सम्बन्धित है। व्यवहारिक जीवन में अज्ञान के वशीभूत होकर हम कुप्रवृत्तियों (क्रोध, मान, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार इत्यादि) में ही उलझे रहते हैं। विद्या अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के बाद हम इन कुसंस्कारों से भी मुक्त होकर अभ्युदय के कार्यों में लगते हैं तथा अन्ततः निःश्रेयस को अंगीकार करते हैं।

**8. अनुशासन सम्बद्ध नियम- "सा विद्या या विमुक्तये"**[1] वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख ध्येय था, जिसमें आत्माभ्युदय सम्बन्धित वैयक्तिक गुणों के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

**9. छात्रावास में निवास**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। उनके भोजन और आवास की व्यवस्था गुरूकुल तथा आश्रम में होती थी। आश्रम या गुरूकुल में निवास करने वाले विद्यार्थियों को आश्रम के नियमों का पालन करना होता था चाहे वह राजा का पुत्र ही क्यों न हो। उनके लिए पृथक से कोई नियम नहीं होते थे। अतः आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को छात्रावास की व्यवस्था वैदिक शिक्षा व्यवस्था की ही देन है।

**10. विविध प्रकार के पाठ्यक्रम**- मानवता की अभिवृद्धि के लिए विशृंखलित समाज को मालाकार में गुम्फित करने के उद्देश्य से मैत्री, सदाचार, उच्चविचार, नैतिकता, दया, करूणा तथा अहिंसा का प्रशिक्षण आध्यात्मिक पृष्ठभूमि के अन्तर्गत दिया जाता था। आज के विद्यालय पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, भाषा, पर्यावरण आदि का अध्ययन कराना वैदिक शिक्षा की ही देन है, जो आज भी पाठ्यचर्या में सम्मिलित हैं।

इस संदर्भ में वैदिक ऋषियों की अवधारणा थी कि वैयक्तिक स्वतंत्रता तथा मानवीय समानता की उदात्त भावना के बिना उच्च आदर्शों वाले समाज का निर्माण सम्भव नहीं है। इसके लिए वैदिक कालीन शिक्षा व्यवस्था में धार्मिक शिक्षा को प्रधानता प्रदान की गयी।

**11. संस्कृति का संरक्षण**- वैदिक शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय और सामाजिक संस्कृति का संरक्षण वैदिक काल से अक्षुण्ण होता आ रहा है। आज भी सांस्कृतिक विरासत वैदिक शिक्षा की ही धरोहर है, जिसका प्रत्येक भारतीय अनुपालन कर रहा है।

---

1. श्री विष्णुपुराणे प्रथमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः।

**12. कक्षा नायक/दलनायक प्रणाली**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। इन सभी विद्या के केन्द्रों में आचार्य, गुरू और उपाध्याय की अनुपस्थिति में योग्य विद्यार्थी या शिष्य को गुरू के सहयोग के लिए कक्षा नायक या दलनायक बनाया जाता था। इस प्रकार विद्यार्थियों या शिष्यों में से योग्य विद्यार्थी आगे चलकर गुरू के साथ रहकर नायक के रूप में चुने जाने लगे। आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को कक्षा नायक या दलनायक की परम्परा वैदिक शिक्षा व्यवस्था की ही देन है।

**13. आचरणवान् अध्यापक**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। आश्रम में निवास करने वाले आचार्य, गुरू, उपाध्याय उच्चकोटि के विद्वान् होते थे। ये शास्त्र ज्ञान के साथ साथ सामाजिक नियमों के भी ज्ञाता होते थे। इनके साथ रहकर शिष्य भी उनका अनुपालन करते थे। यथा-

**गुरूर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु गुरूर्देवोमहेश्वरः।**
**गुरूर्साक्षात्परमब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥**

अतः आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा में भी गुरू, आचार्य और अध्यापक का आचरण तथा उनके आदर्श वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही अनुकरणीय स्वरूप है।

**14. दण्ड प्रदान व्यवस्था**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। विद्यार्थियों या शिष्यों को शिक्षा, भोजन और आवास आदि की व्यवस्था में गुरूकुल तथा आश्रम के नियमों का पालन करना जरूरी था। इसमें छोटे-बड़े, अमीर-गरीब तथा राजकुमारों के आधार पर भेदभाव नहीं था। आश्रम या गुरूकुल के नियमों को तोडने वालों के लिए दण्ड व्यवस्था का प्रावधान था। दण्ड व्यवस्था में किसी प्रकार की छूट नहीं दी जाती थी। आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाले दण्ड का वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही प्रभाव है।

**15. स्वाध्याय, मुक्त शिक्षा एवं दूरस्थ शिक्षा**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र विद्यार्थियों के लिए संचालित होते थे। विद्यार्थियों में से कोई विद्यार्थी

स्वाध्याय करके अपने ज्ञान का संवर्धन करने के लिए मुक्त रूप से शिक्षा प्राप्त कर सकता था। वह एक शास्त्र के अध्ययन के साथ साथ अन्य शास्त्रों के स्वाध्याय करने के लिए स्वतन्त्र था। आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली मुक्त शिक्षा या दूरस्थ शिक्षा वैदिक शिक्षा व्यवस्था में एकलव्य द्वारा प्राप्त की गई स्वाध्याय शिक्षा का ही अनुकरण तथा प्रभाव है।

16. **समावर्तन समारोह**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। शिक्षा पूर्ण होने पर आचार्य या कुलपति के द्वारा दिए गए ज्ञान की समाप्ति पर विद्यार्थियों या शिष्यों को उपाधि प्रदान करने के लिए समावर्तन समारोह का आयोजन किया जाता था। कि आज के बाद वह विद्यार्थी समाज के नियमों तथा शास्त्रज्ञान के अनुसार पालन करने के लिए समर्थ है। उनकी शिक्षा पर समाज का अधिकार है। अतः आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली उपाधियां हेतु कार्यक्रम या समारोह वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही अनुकरण तथा प्रभाव है।

17. **गुरूदक्षिणा प्रथा/अनुदान प्रणाली**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्र राजकोष या प्रजा के सहयोग से संचालित होते थे। राजा के द्वारा दिए गए दान के कारण विद्यार्थियों से या शिष्यों से कोई शुल्क नहीं लिया जाता था। उनकी शिक्षा, भोजन और आवास का व्यय गुरूकुल तथा राजकोष पर निर्भर था। आचार्यों, गुरूओं तथा अध्यापकों को दी जाने वाली दक्षिणा उनकी योग्यता तथा कुशलता पर थी। अतः आज की शिक्षा प्रणाली में आचार्यों, गुरूओं और अध्यापकों को वेतन एवं सम्मान तथा संस्थाओं के द्वारा प्रदान की जाने वाली अनुदान राशि वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही अनुकरण तथा प्रभाव है।

18. **जीविकोपार्जन हेतु प्रशिक्षण**- वैदिक काल में शिक्षा के लिए आश्रम, गुरूकुल, विद्यालय, विश्वविद्यालय स्थापित किए गए थे। ये सभी विद्या के केन्द्रों में समाज, देश के सहयोग के लिए तथा उत्तम जीवनयापन के लिए किस प्रकार का प्रशिक्षण मिलना चाहिए की व्यवस्था थी। आश्रम या गुरूकुल में उसी प्रकार के कार्यक्रम संचालित होते थे। विद्यार्थियों या शिष्यों को सामाजिक, शास्त्रशिक्षा के साथ साथ आखेट, रथसंचालन, घुडसवारी, धनुर्विद्या, चिकित्सा, राजनीति, प्रबन्धन आदि की शिक्षा की व्यवस्था थी, जिससे कोई भी विद्यार्थी किसी भी क्षेत्र में असफल नहीं

हो। अत: आज की शिक्षा प्रणाली में छात्रों को प्रदान की जाने वाली शिक्षा में सामाजिक जीवन हेतु प्रशिक्षण वैदिक शिक्षा व्यवस्था का ही अनुकरण या देन है।

उपरोक्त वैदिक शिक्षा प्रणाली की प्रमुख विशेषताऐं आज भारतीय शिक्षा प्रणाली में उसी रूप में विद्यमान हैं, जो वैदिक काल में थी। यह मानव व्यक्तित्व के दोनों पक्षों को सन्तुष्ट करती है। वैदिक शिक्षा इस प्रकार से स्वयं में एक सम्पूर्ण व्यवस्था थी। वह छात्र को जीवन की प्रत्येक स्थिति के लिए तैयार करती थी तथा उसके व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी विकास करती थी। बालक का शरीर, मन, बुद्धि अध्यात्मिक सभी शिक्षा द्वारा परिष्कृत किए जाते थे। गुरू के घर या आश्रम मे रहकर बालक वहाँ के आवश्यक कार्यों का सम्पादन कर प्रायोगिक ज्ञान प्राप्त करता था तथा गुरू के निकटतम सम्पर्क तथा अन्तेवासित्व के माध्यम से गुरू के आदर्श चरित्र का अनुकरण कर चरित्र निर्माण करता था।

**निष्कर्ष**- अत: निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि वैदिक शिक्षा का प्रभाव एवं योगदान आज सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर स्पष्ट ही दिखाई देता है। चाहे वह मानव विज्ञान, सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन हो या भाषा का सर्वत्र देखा जा सकता है।

**संदर्भग्रन्थ सूची**-

1. भटटाचार्य, डॉ. जी.सी., 2003, अध्यापक शिक्षा, आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर।
2. सारस्वत, मालती, 2006, भारतीय शिक्षा का विकास और समस्यायें, शिवाजी रोड, मेरठ, रस्तोगी पब्लिकेशन।
3. गुप्ता, डॉ. एस.पी. 1995, भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याऐं, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
4. गिजुभाई बधेका, 2010, ऐसे हो हमारे शिक्षक, जयपुर, गीतांजली प्रकाशन।
5. करिकुलम फ्रेमवर्क फार टीचर एजूकेशन : डिस्कशन डाक्यूमेन्ट (1996) एन.सी.टी.ई., नई दिल्ली।
6. भवालकर, स्मिता, अक्टूबर 2002, शैक्षिक समस्याएँ एवं सुधार, एक विश्लेषण, भारतीय आधुनिक शिक्षा।

7. पाण्डेय, रामशकल, 2009, समसामयिक भारत और शिक्षा, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर।

8. भारतीय शिक्षा दर्शन- सरयू प्रसाद चौबे, दि मैकमिलन क० ऑफ इण्डिया, दिल्ली-1975।

9. विश्व चिन्तन के चार अध्याय- डॉ० कृष्णा कान्त पाठक।

10. वैदिक शिक्षा पद्धति- डॉ० भास्कर मिश्र, MPVVP उज्जैन।

✦✦✦

# वर्तमान संदर्भ में विद्यालय में नैतिक शिक्षा का क्रियान्वयन

डॉ. तृप्ता अरोड़ा*

आजका युग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का है। आधुनिक समाज में विद्यार्थी एवं युवा का लक्ष्य आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा लेकर उँची नौकरी प्राप्त करना है। इस की प्राप्ति हेतु वे अनवरत परिश्रम कर रहे हैं और अभिभावक भी इसके लिए अभिप्रेरित कर रहे हैं। किन्तु इन सब के बीच मूल्यों एवं नैतिकता आदि की शिक्षा के प्रति आकर्षण कम हो गया हैं। प्रस्तुत लेख में नैतिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल देते हुए इसके सम्प्रत्यय पर प्रकाश डाला गया है तथा वर्तमान समय में विद्यार्थियों एवं युवाओं को किस प्रकार नैतिक शिक्षा प्रदान की जाए, इस पर भी विचार व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

**प्रस्तावना**

नैतिक शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके माध्यम से व्यक्ति स्वयं में तथा दूसरों में भी नैतिक मूल्यों का संचार करता है। यह कार्य घर, विद्यालय, मंदिर, मंच या किसी भी सार्वजनिक स्थान पर संचालित होता है। व्यक्ति के समूह को ही समाज कहते हैं। जैसे व्यक्ति होंगे वैसे ही उनका समाज बनेगा। किसी देश का उत्थान या पतन इस बात पर निर्भर करता है कि उस के नागरिक किस स्तर के हैं और यह स्तर वहाँ की शिक्षा पद्धति पर निर्भर करता है। व्यक्ति के निर्माण और उत्थान में शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्राचीन काल की भारतीय गरिमा ऋषियों द्वारा संचालित गुरूकुल पद्धति के कारण ही उँची उठ सकी थी। पिछले समय में भी जिन देशों ने अपना विकास किया है उन्होंने भी शिक्षा को ही इसका साधन बनाया है। जर्मनी, इटली का नाजीवाद, रूस और चीन का साम्यवाद, जापान का उद्योगवाद, युगोस्वालिया, स्विटजरलैंड, क्यूबा आदि ने अपना विशेष निर्माण इसी शताब्दी में

* संस्कृत शिक्षिका, जी.जी.एस.एस. विद्यालय, जहांगीरपुरी, नई दिल्ली।

किया है। यह सब वहाँ की शिक्षा प्रणाली में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने से ही संभव हुआ। व्यक्ति का बौद्धिक और चारित्रिक निर्माण काफी हद तक उपलब्ध शिक्षा प्रणाली पर निर्भर करता है।

## नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

आज ऐसी शिक्षा व्यवस्था की आवश्यकता है जो पूरे देश और समाज में नैतिकता उत्पन्न कर सकें यह नैतिक शिक्षा के द्वारा ही संभव है। संस्कृत में नय धातु का अर्थ है – जाना, ले जाना तथा रक्षा करना। इसी से 'नीति' शब्द बना है जिसका अर्थ होता है ऐसा व्यवहार जिसके अनुकरण से सबकी रक्षा हो सके। सामाजिक जीवन की व्यवस्था के लिए कुछ नियम बनाये जाते हैं, जब ये नियम धर्म से संबंधित हो जाते हैं तो उन्हें नैतिक नियम कहते हैं और उनके पालन के भाव को नैतिकता कहा जाता है। धर्म और नैतिकता मनुष्य की आधारभूत आवश्यकता है। बिना इसके उन्हें मनुष्य नहीं बनाया जा सकता। अत: इनकी शिक्षा की व्यवस्था अनिवार्य रूप से करनी चाहिए।

वर्तमान विश्व के विकास के प्रमुख आधार विज्ञान और प्रौद्योगिकी है। यहां न केवल ज्ञान का विस्फोट, गतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन आदि हो रहे हैं अपितु हमारे परिवार और समाज का ढ़ांचा भी उसी गति से परिवर्तित हो रहा है। प्रचार, विचार–विमर्श तथा विचार विनिमय के नवीन प्रभावी साधन भी विकसित हो रहे हैं। इन सभी का हमारे नैतिक मूल्यों पर प्रभाव पड़ा है। आज आवश्यकता इस बात की है कि विज्ञान आधरित विकास की जीवन शक्ति हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक आधारों से प्राप्त हो।

नैतिक शिक्षा को सामान्यत: व्यापक रूप में ग्रहण किया जाता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की क्रियाएं समाहित हैं –

- शारीरिक स्वास्थ्य का प्रशिक्षण
- मानसिक स्वास्थ्य
- शिष्टाचार
- उपयुक्त सामाजिक आचरण
- धार्मिक प्रशिक्षण के नागरिक अधिकार एवं कर्तव्य आदि

## नैतिक शिक्षा का सम्प्रत्यय

कुछ विचारकों का मत है कि नैतिक शिक्षा को धार्मिक शिक्षा से पृथक नहीं किया जा सकता। वे नैतिक शिक्षा को चारित्रिक विकास के रूप में देखते हैं। बालक का नैतिक विकास सामाजिक जीवन की स्वाभाविक देन है। अत: नैतिक विकास सामाजिक विकास से अलग कोई वस्तु नहीं है। इसी प्रकार कुछ विचारकों का मत है कि नैतिकता को ग्रहण किया जाता है न कि पढ़ाया जाता है। अत: नैतिक शिक्षा उपयुक्त भावनाओं और संवेगों के विकास से संबंधित है। इसमें भावनात्मक पक्ष पर बल दिया जाता है न कि संज्ञानात्मक पक्ष पर। इसके ठीक विपरीत संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्तवादियों का मत है कि नैतिक विकास सतत न होकर विभिन्न चरणों या अवस्थाओं में होता है और उन चरणों के बीच स्पष्ट रूप से परिवर्तन होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक चरण में बच्चों में हुआ नैतिक विकास उसके पहले या बाद की अवस्था में हुए नैतिक विकास से भिन्न भी होता है। इस समूह में जीन पियाजे के द्वारा 1932 में उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी मोरल जजमेंट ऑफ दी चाइल्ड' में यह मत दिया गया कि बच्चों के नैतिक निर्णय के विकास में एक निश्चित क्रम एवं तार्किक पैटर्न होता है। यह विकास क्रमिक परिवर्तन जो बच्चों के बौद्धिक विकास से संबद्ध होते हैं, पर आधारित हैं।

पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धान्त में दो अवस्थायें हैं –

### (क) परायत्त नैतिकता की अवस्था

इस अवस्था को नैतिक वास्तविकता की अवस्था भी कहा जाता है। नैतिक विकास की यह पहली अवस्था होती है जिससे होकर प्राय: सभी बच्चे गुजरते हैं। यह अवस्था लगभग दो से आठ वर्ष की आयु की होती है। इस अवस्था में बच्चे सत्रावादी वातावरण में डुबे हुए होते हैं जिसमें उनका स्थान वयस्क से नीचे होता है। इस अवस्था में बच्चों में नैतिक विकास का जो संप्रत्यय विकसित होता है वह निरपेक्ष, अपरिवर्तनशील तथा दृढ़ होता है। यही कारण है कि इस अवस्था को नैतिक वास्तविकता की अवस्था या दबाव की नैतिकता की अवस्था कहा जाता है।

### (ख) स्वायत्त नैतिकता की अवस्था

यह अवस्था 9 से 11 वर्ष की आयु में प्रारम्भ होती है। इस अवस्था में नैतिकता बच्चे के समान स्तर के लोगों अर्थात् संगी साथी के बीच के संबंधों से उत्पन्न होती है। अपने संगी साथी के संबंधों के माध्यम से बच्चों में न्याय का ऐसा

ज्ञान विकसित होता है जिसमें दुसरों के अधिकारों के लिए चिंता तथा मानव संबंध में समानता व पारस्परिकता आदि दिखाई पड़ती है। पियाजे इस अवस्था को एक प्रजातंत्रात्मक तथा समतावादी मानते हैं जो पारस्परिक आदर एवं सहयोग पर आधारित होती है।

कोह्लबर्ग ने भी बच्चों की ऐसी काल्पनिक कथाएं जिनमें नैतिक समस्याएं सम्मिलित होती हैं, इनसे संबंधित प्रश्नों का विश्लेषण कर एक सिद्धान्त का विकास किया। इन्होंने 10 से 16 वर्ष के बच्चों के साक्षात्कार से प्राप्त तथ्यों का विश्लेषण करके पियाजे के सिद्धान्त को विस्तारित, परिवर्तित तथा परिष्कृत किया। कोह्लबर्ग ने अपने प्रयोगों में लघु कथाओं से प्राप्त अनुक्रियाओं का विश्लेषण करके यह बताया कि नैतिक विकास के तीन स्तर हैं और प्रत्येक स्तर में दो दो अवस्थायें होती हैं। कोह्लबर्ग ने यह मत दिया कि इन अवस्थाओं का क्रम निश्चित होता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति में समान उम्र में ये अवस्थायें नहीं होती। व्यक्ति एक अवस्था को छोड़कर दूसरे अवस्था में प्रवेश करता है। कोह्लबर्ग ने निम्न तीन स्तर बताये हैं –

**( 1 ) प्राक्रूढ़िगत नैतिकता का स्तर**

यह अवस्था 4 से 10 वर्ष की आयु तक होती है। इसमें नैतिक तर्कणा दूसरे व्यक्तियों के मानकों से निर्धारित होती है न कि सही तथा गलत के अपने आंतरिक मानकों से। इसके अन्तर्गत दो अवस्थाएं आती हैं –

**( क ) दंड एवं आज्ञाकारिता उन्मुखता**– इस अवस्था में दंड से दूर रहने का अभिप्रेरण अधिक शक्तिशाली होता है।

**( ख ) साधनात्मक सापेक्षवादी उन्मुखता**– इस अवस्था में बच्चों में पुरस्कार पाने की अभिप्रेरणा प्रबल होती है।

**( 2 ) रूढ़िगत नैतिकता का स्तर** –

यह अवस्था 10 से 13 वर्ष की आयु तक होती है। इसमें बच्चे दूसरे के मानकों को अपने में आंतरीकृत कर लेता है तथा उन मानकों के अनुसार सही तथा गलत का निर्णय करता है। इसके अन्तर्गत भी दो अवस्थाएं हैं –

**( क ) उत्तम लड़का या लड़की की उन्मुखता**– इस अवस्था में बच्चे में एक–दूसरे का सम्मान करने की भावना होती है तथा साथ ही दूसरे से सम्मान पाने की इच्छा भी प्रकट होती है।

**( ख ) अधिकार संरक्षण उन्मुखता**- इस अवस्था में बच्चे नियम एवं व्यवस्था के प्रति जागरूक होते हैं तथा वे नियम एवं व्यवस्था के अनुपालन के प्रति जबाबदेह होता हैं।

**( 3 ) रूढ़िगत नैतिकता का स्तर** -

यह अवस्था 13 वर्ष से प्रौढ़ावस्था तक होती है। इसमें बच्चों में नैतिक आचरण पूर्णत: आंतरिक नियंत्रण में होता है। इसके अन्तर्गत भी दो अवस्थाएं हैं -

**( क ) सामाजिक अनुबंध उन्मुखता**- इस अवस्था में बच्चे या किशोर उन वैयक्तिक अधिकार तथा नियमों का आदर करते हैं जो प्रजातांत्रिक रूप से मान्य होते है।

**( ख ) सार्वत्रिक नीतिपरक उन्मुखता**- इस अवस्था में किशोर दूसरे के विचारों तथा नैतिक प्रतिबंधों से स्वतंत्र होकर अपने आंतरिक मानकों के अनुरूप व्यवहार करता है। यह सामाजिक स्तर की उच्चतम अवस्था होती है।

**विद्यालयों में क्रियान्वयन :**

विद्यालय के वातावरण का प्रभाव छात्रों के जीवन पर पड़ता है। यह बालकों में उच्च आदर्शों तथा नैतिकता का विकास करने में सहायक है। विद्यालय में पाठ्य सहगामी क्रियाओं का समय समय पर आयोजन करने से बालको में कर्मशीलता, उत्तरदायित्व जैसे मूल्य विकसित होते हैं। उनमें सहयोग की भावना बढ़ती है। विद्यालय में नैतिक विकास के दो प्रमुख आधार हैं -

- विद्यालय का समरसतापूर्ण एवं सौहार्दपूर्ण स्वस्थ वातावरण।
- शिक्षको द्वारा प्रस्तुत आदर्श।

विद्यालय में नैतिक शिक्षा के क्रियान्वयन में सर्वप्रथम विद्यालयी वातावरण, अध्यापकों का व्यक्तित्व एवं व्यवहार, विद्यालय में उपलब्ध संरचनात्मक सुविधाएं एवं इन सभी की पारिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि छात्रों के नैतिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

विद्यालय की प्रात:कालीन प्रार्थना सभा, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यसहगामी क्रियाएं, सभी धर्मों के धार्मिक उत्सवों का आयेजन, कार्यानुभव, खेलकूद, विषय आधारित क्लब, समाजसेवा जैसे क्रियाकलाप, छात्रों में सहयोग एवं पारस्परिक सद्भाव एवं निष्ठा आदि छात्रों के नैतिक विकास में सहायक होते हैं। अत: नैतिकता के विकास

में विद्यालय में मिलने वाली शिक्षा तथा विद्यालय का वातावरण लोकतांत्रिक, उत्साहवर्धक, स्वस्थ, सौन्दर्यपूर्ण, अनुशासनप्रिय, सहिष्णु एवं सर्जनात्मक होना चाहिए। इस विषय में रविन्द्रनाथ टैगोर का भी कथन था कि "हमारे शिक्षक जब यह समझने लगेंगे कि हम गुरु के आसन पर बैठे हैं और हमें जीवन द्वारा छात्रों में प्राण फूंकने हैं, अपने ज्ञान द्वारा उनके हृदय में ज्ञान एवं विद्या की ज्योति जलानी है, अपने प्रेम एवं स्नेह द्वारा बालकों का उद्धार करना है, उनके अमूल्य जीवन में सुधार करना है।"

1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग ने नैतिक शिक्षा की विषयवस्तु के बारे में कुछ सुझााव दिये थे –

- छात्रों को महान व्यक्तियों की जीवनियां पढ़ायी जायें।
- छात्रों को श्रेष्ठ नैतिक और धार्मिक सिद्धान्तों को व्यक्त करने वाली कहानियां पढ़ायी जायें।
- जीवनियों में महान व्यक्तियों के उच्च विचारों और श्रेष्ठ भावनाओं का समावेश किया जाये।
- नैतिक कहांनियां और महान व्यक्तियों की जीवनियां श्रद्धा, सुंदरता और सज्जनता से लिखीं जायें।

वर्तमान युग विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का है। आज के विद्यार्थी सोसल मीडिया एप्स जैसे- फेसबुक, वाट्सएप, यू-ट्यूब आदि के द्वारा ज्यादा से ज्यादा समाज से जुड़ रहा है और उस पर मिलने वाले धार्मिक एवं नैतिक स्टेटस को पढ़ने के साथ ग्रहण भी कर रहा है। छात्रों में नैतिकता का विकास करने के लिए विद्यालयों में पी. पी.टी एवं अन्य एनीमेशन एप्स द्वारा निर्मित लघु नैतिक एनिमेटेड चलचित्रों को दिखाया जाय जिससे विद्यार्थी प्रसन्नता के साथ नैतिकता भी सीख सकें। शिक्षक किसी महापुरूष से संबंधित कहानी या नाटक का विद्यार्थियों के द्वारा रोल प्ले भी करा सकता है। आज अनेक विद्यालयों में चल रहे देशभक्ति पाठ्यक्रम से संबंधित क्रियाकलाप भी छात्रों द्वारा कराया जा सकता है।

इस प्रकार नैतिक शिक्षा के माध्यम से शिक्षक छात्रों में अभय, नेतृत्व, संयम, देशभक्ति, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, आस्तिकता, आदरभाव, आज्ञापालन, आत्मविश्वास, आत्मानुशासन, ईमानदारी, उत्तरदायित्व, उदारता, करुणा, कर्मठता, त्याग, दान, धैर्य, निष्पक्षता, नम्रता, क्षमा, प्रेम, करुणा आदि गुणों का विकास कर उन्हें कर्तव्यनिष्ठ नागरिक बना सकते हैं।

**संदर्भ ग्रन्थ :**

1. सिंह, अरूण कुमार, (2011), शिक्षामनोविज्ञान, भारती भवन, नवदेहली।
2. पाण्डेय, के.पी. (2005), शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक आधार, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।
3. व्यास, हरिश्चंद (2020), नैतिक शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड, दिल्ली।
4. भारती, प्रेस, (2009), भारतीय नैतिक शिक्षा, किताब घर प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली।
5. https//www.naitikshiksha.com

✦✦✦

# कक्षा में प्रभावी सामाजिक वातावरण निर्माण में अध्यापक की भूमिका

डॉ. विवेक कुमार*

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया को उद्देश्यपूर्ण बनाने तथा कक्षा के सम्यक एवं सहज संचालन हेतु यह आवश्यक है कि कक्षा का सामाजिक वातावरण सकारात्मक रहे। कक्षा के सामाजिक वातावरण को सम्यक् एवं प्रभावी बनाने हेतु विभिन्न कारकों का योगदान होता है। इन कारकों में विद्यालय का वातावरण, विद्यार्थियों की विभिन्न सांस्कृतिक, भौगोलिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि, कक्षा का आन्तरिक एवं बाह्य साज-सज्जा तथा विद्यालय में उपलब्ध संसाधनों के साथ ही अध्यापक एवं विद्यार्थियों के मध्य की अंत:क्रिया एवं मधुर संबंध बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। प्रस्तुत लेख में कक्षा के सामाजिक वातावरण के सम्प्रत्यय तथा कारकों को स्पष्ट किया गया है। इसके साथ ही प्रभावी एवं सकारात्मक सामाजिक वातावरण में अध्यापक का महत्व तथा उसकी भूमिका को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

## प्रस्तावना

सामान्य रूप से सामाजिक वातावरण का अर्थ व्यक्ति के समाज एवं उन सामाजिक तत्वों से है जिसका प्रभाव व्यक्ति के मनोवृत्तियों तथा उसके व्यवहार पर दृष्टिगत होता है। आज के संदर्भ में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका समाज में व्याप्त गतिहीनता को जीवन्त बनाकर उसे समग्र विकास के पथ पर अग्रसर करना एवं समाजोपयोगी परिवर्तन के लिए अभिप्रेरित करना है। शिक्षा के द्वारा ही समाज अपने नागरिकों को उनकी शक्ति का बोध कराता है, उनके समाज के प्रति कर्तव्यों को बताता है तथा उनके दृष्टिकोण को समाजोपयोगी तथा वैज्ञानिक बनाता है।

समाज ने सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु विद्यालय के रूप में एक लघु, सुव्यवस्थित तथा सुसंस्कृत समाज बनाया है। विद्यालय एक आदर्श समाज है,

* सहायकाचार्य अतिथि (शिक्षाशास्त्र विभाग)
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, श्री रणवीर परिसर, जम्मू

अत: समाज के उत्थान में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका है। कक्षा में सामाजिक वातावरण के निर्माण का अर्थ है ज्ञान को विद्यार्थी के जीवन से तथा समाज की आवश्यकताओं से जोड़कर देखना। इससे विद्यार्थी उस ज्ञान को अपने जीवन से संबद्ध कर उसका उपयोग कर सकेगा। इसलिए यह आवश्यक है कि कक्षा-कक्ष का सामाजिक वातावरण ऐसा बनाया जाए जो समाज की अपेक्षाओं के अनुरूप सुयोग्य नागरिकों का निर्माण कर सके।

## कक्षा का सामाजिक वातावरण

कक्षा में अध्यापक तथा विद्यार्थियों के मध्य शिक्षण के समय सामाजिक अन्त:क्रिया होती है। इस अन्त:क्रिया के द्वारा जिस वातावरण का निर्माण होता है, उसे कक्षा का सामाजिक वातावरण कहा जाता है। यह वातावरण विद्यार्थियों एवं अध्यापक के व्यवहार के निरीक्षण द्वारा ज्ञात किया जा सकता है साथ ही इसका प्रभाव विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर भी पड़ता है। ब्लूम (1968) के अनुसार कक्षा का वातावरण उन सभी परिस्थितियों एवं बाह्य शक्तियों का जाल है जो विद्यार्थी को चारों ओर से घेरे रहती है तथा उस पर निरंतर प्रभाव डालती रहती है जो विद्यार्थी के व्यवहार को नियंत्रित एवं उसे एक निश्चित दिशा प्रदान करती है। यदि एक अध्यापक का अपने छात्रों के प्रति सहृदयतापूर्ण व्यवहार होगा तो यह अवश्य ही विद्यार्थियों को अधिगम हेतु अभिप्रेरणा का कार्य करेगा किंतु यदि अध्यापक का व्यवहार उचित नहीं होगा तो विद्यार्थियों में उस अध्यापक के प्रति दुर्भावना एवं तनाव का भाव होगा जिससे कक्षा का सामाजिक वातावरण भी दुषित होगा। इस प्रकार कक्षा के सामाजिक वातावरण का तात्पर्य उन सभी पक्षों से है जिनका प्रभाव अध्यापक तथा विद्यार्थी के बीच संबंधों तथा उनकी कार्य कुशलताओं पर पड़ता है। कक्षा के सामाजिक वातावरण का महत्वपूर्ण तत्व अध्यापक तथा विद्यार्थी के मध्य का संबंध है। यह संबंध जितना अधिक सफल होता है, कक्षा के सामाजिक वातावरण को उतना ही उन्नत एवं सफल माना जाता है तथा इसका स्वस्थ एवं सकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों के व्यक्तित्व तथा उनके मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक विकास पर पड़ता है साथ ही वे सम्यक् रूप से समाज में समायोजित भी होते हैं।

## कक्षागत सामाजिक वातावरण के कारक

कक्षा के सामाजिक वातावरण को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं। इन कारकों के द्वारा ही विद्यालय तथा कक्षा का सुचारू रूप से संचालन किया जाता है

तथा सभी कक्षीय कार्य एवं अन्य गतिविधियाँ संचालित होती हैं। कुछ प्रमुख कारकों का वर्णन अधोलिखित है-

**विद्यालय**- किसी भी विद्यालय एवं उसके आस-पास का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिससे विद्यार्थी सीखने के लिए सहज रूप से तत्पर हो जाएं। विद्यालय ऐसे स्थान पर स्थित होना चाहिए जहाँ पर ध्वनि प्रदूषण कम से कम हो। वहाँ का भौगोलिक वातावरण यथोचित एवं प्राकृतिक हो। विद्यालय के आस-पास घनी बस्ती या भीड़ भरे बाजार नहीं होने चाहिए। इसके साथ ही कोई फैक्ट्री, सिनेमाघर या मदिरा की दुकानें भी नहीं होनी चाहिए। किंतु आज के भाग-दौड़ एवं आधुनिक समाज में यह संभव नहीं है कि प्रत्येक विद्यालय प्राकृतिक वातावरण में निर्मित हो सके। इसलिए यह प्रयास अवश्य करना चाहिए कि विद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था एवं वातावरण छात्रों को सहज आनंद प्रदान करने वाला हो। विद्यालय का सकारात्मक वातावरण विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रेरणा का कार्य करेगा तथा उनके सामाजिक वातावरण निर्माण में भी सहायक होगा।

**विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि**- कक्षा के प्रभावी सामाजिक वातावरण के निर्माण में विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों के व्यवहार पर सर्वप्रथम उसके घर के संस्कारों का प्रभाव पड़ता है। अगर किसी के घर का वातावरण सम्यक् एवं पारिवारिक सदस्यों के मध्य संबंध मधुर है, तो विद्यार्थी का स्वभाव भी मधुर ही होगा। इसी प्रकार विद्यार्थी की सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि भी उसके व्यवहार को प्रभावित करती है। विद्यार्थी की संस्कृति, रीति-रिवाज, उसकी श्रद्धा, उसका विश्वास इत्यादि सभी सांस्कृतिक तत्व उसके व्यक्तित्व को गढ़ने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं तथा साथ ही आर्थिक स्थिति भी उसके व्यवहार एवं जीवनशैली पर प्रभाव डालती है। इस प्रकार कक्षा-कक्ष के प्रभावी एवं सकारात्मक वातावरण निर्माण में विद्यार्थी की सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं अन्य पृष्ठभूमि भी महत्वपूर्ण कारक है।

**कक्षा का भौतिक वातावरण**- कक्षा में सकारात्मक सामाजिक वातावरण निर्माण में कक्षा का भौतिक वातावरण भी मुख्य कारक है। सर्वप्रथम कक्षा का निर्माण इस प्रकार होना चाहिए कि सभी विद्यार्थी अपने बैठने के स्थान से अध्यापक एवं श्यामपट्ट, स्मार्टबोर्ड आदि को सुगमतापूर्वक देख सके तथा ध्यान दे सके। विद्यार्थियों को कभी भी अध्यापन के दौरान श्यामपट्ट एवं अध्यापक आदि पर ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई का अनुभव नहीं होना चाहिए। इसके लिए कक्षा की

संरचना एवं बैठने की व्यवस्था नीचे से उपर की ओर होना चाहिए। इससे सभी विद्यार्थी ध्यान से अध्यापक को तथा अध्यापक भी सभी विद्यार्थियों को आसानी से देख सकता है। इधर कुछ विद्यालयों में इस प्रकार की सीटिंग अरेंजमेंट देखने में अवश्य आई है किंतु इनकी संख्या नगण्य ही है। सभी विद्यालयों में इस प्रकार की व्यवस्था को प्रोत्साहित करना चाहिए। सम्यक् सीटिंग अरेंजमेंट के साथ ही फर्नीचर की समुचित व्यवस्था तथा स्वच्छ हवा एवं उचित प्रकाश आदि की व्यवस्था भी अनिवार्य है। इस प्रकार जब विद्यार्थी को कक्षा में बैठने एवं अध्ययन करने में सुगमता होगी तो उसका व्यवहार भी उचित होगा और कक्षा का सामाजिक वातावरण भी प्रभावी बना रहेगा।

**कक्षा-कक्ष सज्जा**- कक्षा के भौगोलिक वातावरण के साथ ही आन्तरिक साज सज्जा भी प्रभावी सामाजिक वातावरण के निर्माण का महत्वपूर्ण कारक है। कक्षा की सज्जा हेतु सुभाषित श्लोक, प्रेरणदायक कथन, महापुरूषों के चित्र एवं उनके विचार तथा नीति परक श्लोक आदि का प्रयोग कर सकते हैं। पुरानी पत्रिकाओं और पुस्तिकाओं से पोस्टर एवं अनेक कलाकृतियाँ बनाकर लगाया जा सकता है। पाठ्यवस्तु एवं प्रकरण से संबंधित वस्तुएं, शिल्पकृतियाँ कक्षा में ला सकते हैं तथा विद्यार्थियों द्वारा बनाये गये चार्ट, कलाकृतियाँ आदि को भी प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार जब विभिन्न सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के विद्यार्थियों द्वारा निर्मित कलाकृतियों का कक्षा में प्रदर्शन एवं स्थापित किया जायेगा तो इससे कक्षा में सांस्कृतिक समरसता के साथ-साथ सामाजिक वातावरण भी प्रभावी एवं सकारात्मक बनेगा।

**पाठ्यक्रम-पुस्तकालय एवं अन्य संसाधन**- सभी विद्यालयों में अनिवार्य रूप से पाठ्यपुस्तक-पुस्तकालय अवश्य होना चाहिए। इस पुस्तकालय में सभी कक्षाओं तथा सभी विषयों की पुस्तकें उपलब्ध हों तथा साथ ही कक्षानुकूल शैक्षिक पत्रिकायें एवं अन्य ज्ञानवर्धक पुस्तकें भी इस पुस्तकालय में उपलब्ध होनी चाहिए। माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक कक्षाओं के विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि वे प्रतिदिन कुछ समय पुस्तकालय में अवश्य ही व्यतीत करें तथा कुछ शैक्षिक पत्रिकाओं आदि के सब्सक्रिप्शन भी अवश्य लें। इसके अलावा ई-पुस्तकालय की भी व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ ऑनलाईन माध्यम से विद्यार्थी पुस्तकों को पढ़ सकें।

**अध्यापक की भूमिका :**

कक्षा के सामाजिक वातावरण को प्रभावी बनाने में अध्यापक का काफी महत्वपूर्ण योगदान होता है। विद्यालय में विद्यार्थियों का अध्यापक से प्रत्यक्ष संबंध होता है। अत: अध्यापक विद्यार्थी के सामाजिक विकास हेतु सीधे प्रभावित करते हैं। अध्यापक की भूमिका सर्वप्रथम एक मनोवैज्ञानिक के रूप में होता है। अध्यापक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, प्रेरणाओं एवं मनोवृत्तियों को समझने का प्रयास करें। अध्यापक अपनी कक्षा के विद्यार्थियों को जितनी गहनता से समझता है, उसका अध्यापन उतना ही प्रभावी होता है।

कक्षा के सामाजिक वातावरण को प्रभावी एवं सकारात्मक बनाने हेतु अध्यापक विभिन्न प्रकार से प्रयास कर सकते हैं। कुछ महत्वपूर्ण प्रयास निम्न प्रकार से किये जा सकते हैं–

**कक्षा में नियम निर्धारण**– अध्यापक को कक्षा में इस प्रकार के सहज एवं सरल नियम बनाने चाहिए जो सभी विद्यार्थियों को सुरक्षित एवं सम्मानित व्यवहार हेतु प्रोत्साहित करे। सभी विद्यार्थी एक दुसरे की संस्कृति एवं विश्वास का आदर करें। यदि सभी विद्यार्थी अपने को सम्मानित एवं सुरक्षित अनुभव करेंगे तो निश्चय ही वे कक्षा में तथा अध्ययन में शारीरिक एवं संवेगात्मक रूप से ध्यान केन्द्रित कर पायेंगे।

**पाठ की पूर्व तैयारी तथा नवीन प्रयोग**– एक अध्यापक को पाठ की पूर्व तैयारी उचित प्रकार से करना चाहिए, यह बहुत ही बुनियादी तत्व है। जब अध्यापक अपने पाठ्यवस्तु को अच्छी प्रकार से तैयार करता है तभी वह कक्षा में आत्मविश्वास पूर्वक प्रभावशाली शिक्षण कर सकता है। इसके साथ ही अध्यापक को अपने शिक्षण में नवीन तकनीकी, नवीन विधि एवं नवीन संदर्भ को अवश्य जोड़ना चाहिए। किसी भी पाठ को जब अध्यापक तत्कालीन संदर्भ एवं प्रासंगिकता के साथ प्रस्तुत करता है तो उस पाठ की उपयोगिता के साथ ही उसकी रोचकता में भी वृद्धि होती है। इस प्रकार प्रभावशाली शिक्षण के द्वारा अध्यापक कक्षा में सकारात्मक वातावरण बनाये रखने में सक्षम होता है।

**सकारात्मक भाषा का प्रयोग**– कक्षा में अध्यापक को अपनी भाषा का सावधानीपूर्वक उपयोग करना चाहिए। उसे कक्षा में सकारात्मक भाषा एवं प्रशंसा का उपयोग करना चाहिए तथा कभी भी विद्यार्थियों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। अध्यापक को विद्यार्थियों पर टिप्पड़ी ना कर के हमेशा उनके व्यवहार को सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

**शिक्षण के साथ मूल्यों का विकास**- अध्यापक को यह प्रयास करना चाहिए कि विद्यार्थी अध्ययन के साथ ही सम्यक् आचरण, नैतिकता, सामाजिकता इत्यादि मूल्यों को भी सीखें तथा अपने जीवन में इन मूल्यों का पालन भी करें। सामाजिक मूल्यों का विकास करने हेतु कक्षा में सामाजिक समस्याओं पर विचार एवं चर्चा आदि किया जा सकता है। सभी विद्यार्थियों को समस्या पर विचार करने तथा समाधान प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए। इसी तरह नैतिकता एवं सदाचार हेतु महापुरुषों के जीवन चरित्र एवं आचरण को बताया जाना चाहिए। इस प्रकार अध्यापक कक्षा में अपने विषय को पढ़ाने के साथ ही विद्यार्थियों को अनेक जीवन मूल्यों तथा सदाचार, नैतिकता आदि गुणों को भी विकसित कर सकता है जिससे कक्षा में समरसता का वातावरण निर्मित होगा।

**सामाजिक वातावरण हेतु विद्यार्थियों को प्रोत्साहन**- कक्षा का वातावरण इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें सभी विद्यार्थी एक दूसरे की सहायता हेतु तत्पर रहें तथा सभी का सम्मान करें। अध्यापक को हमेशा इस बात के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए कि सभी छात्र प्रतिदिन सभी से बात करें तथा खेल आदि क्रियाएं भी साथ में करें। इसके लिए अध्यापक कक्षा में इस प्रकार के खेल तथा गतिविधियों का आयोजन कर सकता है जिसमें पूरी कक्षा की भागीदारी हो। कक्षा में कुछ विद्यार्थी अन्तर्मुखी स्वभाव के हो सकते हैं जिन्हें मित्र बनाने में समस्या हो सकती है। उनके लिए अध्यापक को उन्हें मित्र बनाने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उनके बैठने का स्थान भी कक्षा के मध्य में हो तथा किसी प्रोजेक्ट आदि में भी अध्यापक उसे किसी समूह में जोड़ सकता है जिससे उसमें टीम भावना का विकास होगा तथा कक्षा में सहज सामाजिक वातावरण को भी प्रोत्साहन मिलेगा।

**अध्यापक-विद्यार्थी का सकारात्मक संबंध**- कक्षा के सामाजिक वातावरण को प्रभावशाली बनाने हेतु अध्यापक एवं विद्यार्थियों के मध्य मधुर संबंध होना आवश्यक है। अध्यापक के पक्ष से यह प्रयास होना चाहिए कि वह अपने विद्यार्थियों को कक्षा में तथा कक्षा के बाहर उन्हें उनके नाम से संबोधित करें। कभी कभी अध्यापक विद्यार्थियों से व्यक्तिगत एवं पारिवारिक प्रश्न भी पूछ सकता है। जैसे- 'कल तुम्हारा क्रिकेट मैच कैसा रहा?' 'तुम्हारी नानी का स्वास्थ्य कैसा है?' आदि। इससे अध्यापक विद्यार्थी को अच्छे से जान सकता है। कभी कभी विद्यार्थियों के व्यवहार में असामान्य परिवर्तन देखने को मिलता है। इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि विद्यार्थी को संवेगात्मक रूप से सहायता की आवश्यकता हो।

अध्यापक को समस्या को समझकर उसका उचित समाधान करने में विद्यार्थियों की सहायता करनी चाहिए।

**पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन**- विद्यार्थियों में प्रभावी सामाजिक वातावरण के निर्माण हेतु विद्यालय में विभिन्न पाठ्य सहगामी कार्यक्रमों जैसे- नाटक, सामाजिक सेवा, खेल-कूद, वाद विवाद प्रतियोगिता आदि का संचालन होना चाहिए। इन पाठ्य सहगामी कार्यक्रमों से विद्यार्थियों में सामाजिक सहभागिता का भाव उत्पन्न होता है जिससे कक्षा में भी सकारात्मक वातावरण के निर्माण में सहायता मिलती है।

**निष्कर्ष :**

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि कक्षा में प्रभावी सामाजिक वातावरण के निर्माण में अध्यापक की महती भूमिका होती है। कक्षा के सामाजिक वातावरण के कारकों यथा विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि, विद्यालय एवं कक्षा का वातावरण, कक्षा-कक्ष की सज्जा, पुस्तकालय इत्यादि का उचित प्रबंधन एवं क्रियान्वयन अध्यापक ही कर सकता है।

**संदर्भ ग्रन्थ-**

1. मित्तल, संतोष, शैक्षिक तकनीकी एवं कक्षा-कक्ष प्रबंध, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2008
2. सफाया, रघुनाथ, न्यू स्ट्रेटजी एण्ड एक्सपेरीमेन्ट्स इन एजुकेशन, दि इण्डियन पब्लिकेशन, अम्बाला, 1981
3. ओड, एल.के., शिक्षा के नूतन आयाम, राजस्थान ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 1990
4. सिंह, अरूण कुमार, शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना, 2018
5. दाश., एम, नीना दाश, स्कूल मैनेजमेन्ट, अटलांटिक पब्लिशर्स, दरियागंज, दिल्ली, 2008
6. रा.शै.अ.प्र.प., इंट्रोडक्शन टू गाइडेंस, नई दिल्ली, 2017

✦✦✦

# पर्यावरण संरक्षण व हिंदी साहित्य

## ( अमृतलाल मदान के सन्दर्भ में )

सोनिया *

**शोधसार-**

प्राचीन समय में पर्यावरण संरक्षण का कोई अधिनियम नहीं था। ऋषि मुनिजन अपना नैतिक कार्य मान कर पर्यावरण के संरक्षण व संवर्धन के लिए प्रयत्नशील रहते थे। भारतीय साहित्य और दर्शन स्वयं में संपूर्ण रूप से पर्यावरण केन्द्रित रहे हैं। पर्यावरण कोई नवीनतम संप्रत्यय नहीं है अपितु वैदिक काल से निरंतर चला आ रहा है। वैदिक काल के अध्ययन से विदित होता है कि तत्कालीन सभ्यता के व्यक्ति प्रकृति की पूजा करते थे। उनके लिए पृथ्वी उनकी माता थी जिसकी रक्षा के लिए तथा जिस पर जीवन बनाए रखने के लिए वे अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन करते थे। वैदिक युंग के लोग तुलसी, बरगद, पीपल आदि पौधों की पूजा का महत्त्व औषधीय गुणों के साथ-साथ पर्यावरण को शुद्ध रखना भी था। आदिकवि महर्षि वाल्मीकि ने जब प्रकृति के दो स्वछंद प्राणियों को मुक्त विहार करते देखा तो उनकी आत्मा भाव-विभोर हो उठी, जब दूसरे ही क्षण एक को व्याध के बाण से घायल देखा तो करुणा की सरिता बहने लगी। परिणामस्वरूप कविता का उद्भव हुआ-

**मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वामगमः शाश्वती समः।**
**यत्क्रौंचयोः मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्॥**[1]

प्रकृति के उक्त दृश्य ने जब एक महाकवि के हृदय को द्रवित कर दिया भला फिर एक साधारण उपन्यासकार अमृत लाल मदान इस पीयूष सरिता का पान किये बिना कैसे आगे बढ़ सकता है।

**कूटशब्द-** पर्यावरण, मानवतावादी, प्रदूषण, प्राकृतिक, वनस्पति।

---

* लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी
फगवाड़ा पंजाब

1. वाल्मीकि रामायण, 1/2/15

प्रत्येक युग में साहित्य-साधकों ने 'शब्द-ब्रह्म' की साधना करते हुए मानव की पोषण कर्त्री 'प्रकृति' का भी भाव-पूर्ण स्तवन किया है। मानव-जीवन का आधार कहे जाने वाले 'पंच महाभूतों' का गुणगान साहित्य में निरन्तर होता आया है। प्रकृति के इन पंच तत्वों से मिलकर ही मानव शरीर की रचना हुई है।

**छिति जल पावक गगन समीरा।**
**पंच रचित अति अधम सरीरा।।**[1]

उक्त पञ्च तत्त्वों के वर्णन से आशय प्रकृति की आत्मस्वरूप इन तत्वों के संरक्षण से है जिस से पर्यावरण की पावनता विद्यमान रहे।

महाकवि तुलसी के 'रामचरितमानस' में हमें प्रकृति के साथ-साथ गंगा और सरयू के माध्यम से 'पर्यावरण' का चिन्तन मिलता है, तो वहीं कविवर रहीम तो 'पानी' के माध्यम से 'जीवन के तत्व' का ज्ञान करा देते हैं-

**रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।**
**पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुस चून।।**[2]

पञ्च तत्वों के महत्व में सर्वप्रथम पानी को अंगीकार किया है। अत: पानी के स्रोत नदियों की भी स्तुति की गई है। रामचन्द्र के चित्रकूट प्रसंग में गोस्वामी जी अनेक नदियों का उल्लेख करते हुए उन्हें पुण्यमयी नदियाँ कहते हैं।

**सुरसरि सुरसइ दिनकर कन्या।**
**मेकल सुता गोदावरि धन्या।।**[3]

**सब सर सिंधु नदी नद नाना।**
**मंदाकिनी कर करंहि बखाना।।**[4]

हिंदी साहित्य में पर्यावरण-हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' को तो प्रकृति का उद्यान ही स्वीकारा जाता है, जहाँ मनोभावों का प्रकृति से सहज ही सामंजस्य हो जाता है। हिन्दी के पुरोधा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने कई ललित निबन्धों का विषय वनस्पति को बना कर उससे अनोखे मानवतावादी निष्कर्ष निकाले हैं। उदाहरणत: 'अशोक के फूल' 'शिरीष के फूल' आदि।

---

1. रामचरितमानस किष्किन्धा कांड 11/2 गीताप्रेस गोरखपुर
2. रिजवी आबिद, रहीम के दोहे, मनोज पब्लिकेशन 2006
3. रामचरितमानस अयोध्याकांड, गीताप्रेस गोरखपुर
4. रामचरितमानस अयोध्याकांड, गीताप्रेस गोरखपुर

आधुनिककाल के महाकाव्य 'कामायनी' में जयशंकर प्रसाद ने प्रकृति के अनावश्यक दोहन का भाव दर्शाया है जो कि हमारी संस्कृति में हमेशा से अस्वीकार्य रहा है। यदि हम अपने निजी स्वार्थ हेतु प्रकृति का अधाधुंध दोहन करते रहेंगे तो एक दिन प्रकृति की सहनशीलता समाप्त हो जायेगी। प्रकृति का सामान्य सा भूभंग भी संसार को प्रलययुक्त करने के लिए पर्याप्त है। प्रकृति के इस भयंकर रूप की ओर संकेत करते हुए छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद कामायनी के 'आशा सर्ग' में लिखते हैं-

**करका क्रन्दन करती गिरती और कुचलना था सबका।**
**पंचभूत का यह ताण्डवमय नृत्य हो रहा था कबका।**
**विकल हुआ सा कांप रहा था सकल भूत चेतन समुदाय।**
**उनकी कैसी बुरी दशा थी वे थे विवश और निरूपाय॥**[1]

20वीं व 21वीं शताब्दी पर्यावरण चिंतन के हिसाब से जागरूकता की कसौटी पर सफल प्रतीत होती जान पड़ती है। जहाँ न सिर्फ साहित्य बल्कि अनेक स्तरों पर पर्यावरणीय चेतना दिखाई दी।

पर्यावरण का विषय केवल प्रदूषण तक सीमित नहीं है। इसका सबसे प्राथमिक पहलू प्राकृतिक संसाधनों के स्वत: घटित पारस्परिक संतुलन की रक्षा है। सम्पूर्ण ब्रह्मांड एक कुटुम्ब हैं, यहाँ किसी का अलग अस्तित्व नहीं है। गाँधी जी ने भी कहा है- "प्रकृति के भण्डार में हर किसी की जरूरतें पूरी करने को यथेष्ट संसाधन है, पर किसी भी लालच को पूरा करने में यह भण्डार असमर्थ है।"[2]

जैसे-जैसे सभ्यताओं ने विकास किया है, वैसे-वैसे नई-नई समस्याएँ भी हमारे सामने पनपी हैं। पर्यावरण को लेकर भी जो आधुनिक चिंतन हुआ है उसको विस्तार कथा साहित्य में ही प्राप्त हुआ है। एक आधुनिक विधा में आधुनिक दौर की समस्याओं पर नये सिरे से विचार-विमर्श हुआ है।

हिन्दी साहित्य से लेकर अमृत लाल मदान तक के उपन्यासों में पर्यावरणीय चेतना कई रूपों में दिखाई पड़ती हैं। कहीं प्रकृति प्रेम के विराट रूप तो कही उसके सौन्दर्य रूप में कहीं-कहीं तो उस सौन्दर्य को बचाने की चिंता भी उल्लेखित है। आधुनिकता के अंधानुकरण में पर्यावरण को जिस तरह से निचोड़ा जा रहा है उससे पारिस्थितिकी असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। जिसका दुष्परिणाम भी ग्लोबल

1. जयशंकर प्रसाद, कामायनी
2. सहचर ई पत्रिका

वार्मिंग के रूप में रचनाकारों हजारी प्रसाद द्विवदी, जय शंकर प्रसाद व अमृतलाल मदान के उपन्यास साहित्य में देखने को मिलता हैं।

**अमृतलाल मदान व पर्यावरण-**

अमृतलाल मदान सुन्दरता व खूबसूरती के पारखी हैं चाहे वह स्त्री सौन्दर्य हो या प्रकृति सौन्दर्य हो, उन्होंने प्रत्येक सौन्दर्य को पाठकों के सामने अपने उपन्यासों के माध्यम से चित्रित किया है। अमृतलाल मदान ने लाल धूप' उपन्यास में ईथोपिया जाते समय राह में आए, प्राकृतिक दृश्यों का लेखनीबद्ध किया है।

"ज्यों ही हवाई जहाज अपनी नाक-भौं तिरछी किए ऊपर उठने लगा, महेश को लगा कि उसका दिल नीचे बैठा जा रहा है। उसने खिड़की से झांका। नीचे सरकते दीपों की चलती-फिरती दीवाली थी। धीरे-धीरे फंसती धरती की यह दीपाली भी आँखों से ओझल हो गयी। भू-लोक से उठकर वायुयान का छोटा-सा आलोक शीघ्र ही आकाश के निविड़ अन्धकार में खो गया।"[1] मदान जी ने आकाश से धरती के सौन्दर्य का जो अवलोकन किया वह सजीव जान पड़ता है। पाठक को ऐसा लगता है मानों महेश पात्र के रूप में वह स्वयं यात्रा कर रहा है अमृतलाल मदान ने उपन्यासों में प्रकृति सौन्दर्य को भी खूबसूरती के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

"नीचे दूर-दूर तक नीले सागर का विस्तार था... कहीं-कहीं फेन के छोटे-छोटे टापू थे, बिखरते, टूटते फिर बनते और इस विस्तार पर नौकाएं और समुद्री जहाज खिलौने की तरह लग रहे थे।

यहाँ अमृतलाल मदान का जल तत्व के भंडार सागर के प्रति प्रेम दिखाई पड़ता है जो इस स्वार्थी मानव के न केवल यातायात को सुगम बनाते अपितु वाष्पन द्वारा वृष्टि के मुख्य कारक भी हैं।

देखो बिटिया, वो खिलौने, महेश ने बिटिया को दूर से खिलौने दिखाते हुए कहा।"[2]

"नील महाशून्य में सूरज का गोला लटका खडा तप रहा था ज्यो सोने की रोटी हो जो सबके लिए, सारी धरती के लिए नित्य-प्रति आकाश में पकती है।"[3]

---

1. मदान, अमृतलाल लालधूप सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल, 1983 पृष्ठ 11
2. ..., लालधूप, पृष्ठ 23
3. ..., लालधूप, पृष्ठ 41

एक रचनाकार अपनी बहुत-सी रचनाओं को प्रकृति पर रच देता है क्योंकि उसे प्रकृति से प्रेम होता है। ये प्रकृति हमें जीवन जीने की राह दिखाती है। प्रकृति का अंग-अंग हमें अपनी जिन्दगी के अनुभवों को बताता है।

प्रकृति के सौन्दर्य को पहचानने के लिए भी रचनाकार की निगाहें होनी जरूरी हैं। अन्यथा खूबसूरत सी वस्तु भी सामान्य नजर आती है और साधारण-सी चीज भी अद्‌भुत सुन्दर लगती है। अमृतलाल मदान ने 'लाल धूप' उपन्यास में ईथोपिया जाते समय आए प्रकृति चित्रों को कलमबद्ध किया है जिन्हें पढ़ते समय ऐसा लगता है मानो ये चित्र हमारी आँखों के सामने से गुजर रहे हैं।

"अब बस पहाड़ी इलाके से गुजर रही थी। सड़क जगह-जगह मोड़ काटती हुई चढ़ती-उतरती चल रही थी ... थोड़ी-थोड़ी देर में दृश्य बदल रहे थे। कहीं एक तरफ पहाड़ तो दूसरी तरफ खाई ... कहीं दोनों तरफ पहाड़ तो बीच में समतल सड़क ... कहीं नदी, कहीं झरना, कहीं हरियाली तो कहीं सूखी चट्टानें। एक जगह बायीं ओर थोड़ी दूरी पर एक गोल-सी पहाड़ी अपना कूबड़ उठा चुपचाप बैठी ज्यों एकाकीपन का शाप ढो रही थी। उसके चारों तरफ एक सूना विस्तार था। ऊपर झुका नीलाम्बर शायद आदिकाल से पड़ी थी यह शिला।"[1]

अस्त होते हुए सूर्य के समय पेड़ों के मनोहारी रूप का वर्णन मदान जी विमल पात्र के माध्यम से इस प्रकार करते हैं:-

"पश्चिम से आकाश में सूर्य धीरे धीरे ढलता जा रहा था। पार्क में खडे अनेकानेक पेड़ों की बाहें जैसे लंबी ही होती जा रही थी जैसे अंधेरा होने से पूर्व किसी से मिलने को आतुर थीं। शायद उन्हें अंधेरे का आतंक सता रहा था। पेड़ों के साए भी अपने कद से कहीं वे अधिक बड़े लग रहे थे। शायद वे किसी के पाश में लोप होना चाह रहे थे। बड़े ही जादुई क्षण थे ये।"[2]

विराट बौना उपन्यास का पात्र विमल जब दूध लेने के लिए जाता है तो जो दृश्य देखता है, उसको देखकर उसका मन व्यथित होता है। "अगले दिन सुबह दूध लेने गया तो मौसम कुछ खराब सा था। आकाश में धुआँ। पुओं सा, धुंध धुंध सी। डेरी पर दूध अभी निकाला जा रहा था। मैं डोलू को वहीं रख कर। सैर करने के इरादे से खेतों की ओर निकल गया। भाप की तरह खेतों से धुंध उठ रही थी, दूर फैक्ट्रियों की चिमनियों से उठते धुएं की लपटे। धुंध मे आगे बढ़ते बढ़ते सारा

1. ..., लालधूप, पृष्ठ 21
2. ..., विराट बौना, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल. 2011 पृष्ठ 11

वातावरण बहुत ही विचित्र बहुत ही रहस्यमय सा लग रहा था। ऐसा लगा जैसे कभी कभी धुंध में भी चलना जरूरी है मनुष्य के लिए, ताकि उसकी स्पष्टता तथा वैज्ञानिकता का भ्रम टूट सके। जब पेड़ ऐसे लग रहे हों जैसे बाहें फैलाए प्रेत खड़े हों और मेड़ ऐसी लग रही हो जैसे सुफेद कबुली वाला बल खाता लंबा साँप..... तो रहस्यमयता का अभास होना स्वाभाविक है। बड़ी सड़क के मुख्य मार्ग पर आया तो देखा कि धुंध में भी वाहनों की रफ्तार अंधाधुंध थी। हे भगवान! राजमार्ग पर चलते इन प्रेतों से पगडंडियों की रक्षा करना, मेरे मुँह से निकला। वाहनों की आगे की बतियाँ जली हुई थीं। दूर से आते ये वाहन ऐसे लग रहे थे जैसे चमकीली आँखों बाले दानव दनदनाते आगे आ रहें हों। बचते चलते में एक ऊँचे पुल पर खड़ा हो गया। एक ओर धुआं उगलती कुछ दूर इंडस्ट्रियल एरिया की फैक्ट्रियों की चिमनियाँ तो दूसरी ओर दूर शहर की ऊंची अट्टालिकाओं के हल्के हल्के आभास....विचित्र समता, विचित्र विरोधाभास।"[1]

उक्त पंक्तियों में मदान जी ने पर्यावरण प्रदूषण की भयंकर आपदा के कारकों को उजागर करने का सफलतम प्रयास किया है। स्वार्थ व पूँजी के दीवाने लोगों को मदान जी बताना चाहते हैं कि वायु इतनी प्रदूषित होती जा रही है कि श्वसन क्रिया में भी परेशानी होने लगी है।

**निष्कर्षः-**

अंत में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि हिंदी साहित्य में जहाँ प्रकृति का प्रत्येक उपादान वृक्ष, नदी, फल, फूल, अनाज आदि को पूजनीय स्थलों का अधिकारी बनाया, वहीं आज का यह पदार्थवादी इंसान अपने जीवन-रस को ही लूटने चला है। ऐसी स्थिति में साहित्य-जगत् को मौन रहकर तमाशा देखने के बजाय अपनी रचनाधर्मिता से मानवता को बचाने का सार्थक प्रयास करना चाहिए, क्योंकि प्रकृति से अलगाव मनुष्य के स्वार्थी होने की निशानी है। मदान जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रकृति की महत्ता को समझाया। साहित्य में इन बातों के पढने मात्र से ही इति श्री नही हो जाती अब आवश्यकता है इन बातों को अमलीजामा पहनाने की।

✦✦✦

1. ..., विराट बौना, सुकीर्ति प्रकाशन, कैथल. 2011 पृष्ठ 40

# आचार्य प्रवर श्री सांवरमल शास्त्री विरचित एकांकी संग्रह 'कालिदाससौरभम्' पर एक दृष्टि

**मेधा शर्मा***

अखिल विश्व में अजर अमर कवि के रूप में विख्यात महाकवि कालिदास भारत के गौरवभूत हैं। वाग्देवी सरस्वती के अद्भुत वरदान को प्राप्त करके महाकवि ने सात ग्रन्थों को उद्धृत किया जो इस प्रकार है-'ऋतुसंहारम्', 'मेघदूतम्', 'विक्रमोर्वशीयम्', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', 'कुमारसंभवम्', 'रघुवंशम्'। इन काव्यों का आश्रय लेकर आचार्य प्रवर जी ने 'कालिदाससौरभम्' नामक एकांकी संग्रह का सृजन किया। इस एकांकी संग्रह में 'रघुवंशम्' महाकाव्य से चार एकांकी, 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य से दो, 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से चार, 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक से तीन तथा 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक से चार एकांकी नाटक उद्धृत किये हैं।

'रघुवंशम्' महाकाव्य से गुरुदक्षिणा, गोसेवा, सीतापरित्याग, कुमुद्वती-कुश परिणयः। 'कुमारसम्भवम्' महाकाव्य से पार्वतीशंकरयोः परिणयः, षाण्मातुरम्, 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक से तनयाविश्लेषः, विस्मृतप्रणयम्, अभिज्ञानम्, सापत्यदारम्। 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक से प्रणयः, संगमनीयम्, आयुष्। 'मालविकाग्निमित्रम्' नाटक से मालविका, नारी न मुह्यति नारीरूपे, अशोकविकसनम्, रहस्योद्भावनम्। इस प्रकार कुल 17 एकांकियों का संग्रह आचार्य प्रवर श्री सांवरमल शास्त्री ने किया है।

महाकवि कालिदास के काव्यों को एकांकी के रूप में प्रणीत करने का आचार्य जी का उद्देश्य कालिदास के काव्यों की शिक्षा को जनमानस तक पहुँचाना और संस्कृत के विद्यार्थियों को अपनी संस्कृति, संस्कार तथा प्राचीन भारत के गौरवशाली इतिहास से अवगत कराना है, क्योंकि नाटक या एकांकी ही एकमात्र ऐसा साधन है जिसके माध्यम से किसी भी बात को सुगमता से बताया जा सकता है।

---

* अनुसंधानकर्त्री, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)

आचार्य प्रवर श्री सांवरमल शास्त्री ने एकांकी के रूप में महाकवि कालिदास के काव्यों को सरलता से जन साधारण तक पहुँचाया है। 'साहित्य दर्पण' में एकांकी का लक्षण इस प्रकार दिया है-

**उत्सृष्टिकांक एकांको नेतारः प्राकृता नराः॥**
**रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम्।**
**प्रख्यातमितिवृत्तं च कविबुद्ध्या प्रपञ्चयेत्॥**
**भाणवत्संधिवृत्त्यांगान्यस्मिञ्जय पराजयौ।**
**युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु॥**[1]

इस प्रकार दशरूपककार आचार्य धनञ्जय ने भी अंक का लक्षण इस प्रकार दिया है-

**उत्सृष्टिकांके प्रख्यातं वृत्तं बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्॥**
**रसस्तु करुणः स्थायी नेतारः प्राकृता नराः।**
**भाणवत्सन्धिवृत्त्यंगैर्युक्तिः स्त्रीपरिदेवितैः॥**
**वाचा युद्धं विधातव्यं तथा जयपराजयौ।**[2]

कविता कामिनी-कान्त कालिदास न केवल संस्कृत वाङ्मय के, अपितु विश्व वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् की तात्त्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में अनुस्यूत करती है।[3] इसी प्रकार आचार्य प्रवर जी ने भी कालिदास के काव्यों पर आधारित एकांकी का निर्माण करते हुए उन्हीं की रचना शैली का अनुकरण किया है। इन एकांकियों की भाषा शैली सरल, मधुर, कोमल-कांत पदावली, सरस एवं आनन्ददायी है। इनमें कहीं भी किसी भी स्थल पर नीरसता का बोध नहीं होता है।

प्रथम एकांकी 'गुरुदक्षिणा' में आचार्य जी ने रघु-कौत्स के प्रसंग को जितनी अधिक सरलता से प्रकट किया है वह प्रशंसनीय है। गुरु वरतन्तु के आश्रम के प्रसंग में छात्रों की परीक्षा का प्रसंग अद्भुत् है। वरतन्तु के द्वारा कौत्स को जो उपदेश दिया गया वह इस प्रकार है-"शोभनम्। तव श्रमेणापि प्रीणामि। उपविश। अयि कौत्स! त्वामद्य न किमपि प्रक्ष्यामि। त्वं तु बहुवारं परीक्षितः समुत्तीर्णश्च। त्वं बहुषु शास्त्रेषु

---

1. साहित्यदर्पण-शालिग्राम शास्त्री विरचित-पेज 217
2. दशरूपक-डॉ. भोला शंकर व्यास-पेज 180
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास-कपिल देव द्विवेदी-पेज 153

पारंगतो निष्णातो मेधावी छात्रोऽसि। अद्य तव ब्रह्मचर्यकाल: समाप्यते। विद्यापीठ परित्यागात्प्राक् मामकीं दीक्षावाचं श्रुत्वा, तत्पालनाय प्रतिज्ञाय, गृहस्थाश्रमं सेवमान: अत्राधीतज्ञानेन लोकमुपकुर्या:।"[1] इस प्रकार कौत्स के माध्यम से आचार्य जी ने छात्रों को जीवन जीने के लिए महत्त्वपूर्ण उपदेश दिए हैं।

द्वितीय एकांकी 'गोसेवा' में राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा की गोसेवा का वर्णन किया है। राजा दिलीप ने नन्दिनी गो की सेवा के लिए शेर के समक्ष स्वयं को प्रस्तुत किया और सिंह से नन्दिनी के प्राणों को छोड़ने की प्रार्थना की। सिंह के द्वारा प्रलोभन दिए जाने पर राजा दिलीप ने किस प्रकार खण्डन किया उसका अद्भुत् वर्णन इस प्रकार है-"हे मृगाधिप! क्षतात् त्रायते स एव क्षत्रियो भवति। तद्विपरीतवृत्ते: क्षतत्राणम् अकुर्वत: पुंसो राज्येन किं प्रयोजनम्? निन्दामलीमसै: प्राणै: को लाभ:? अन्यासां पयस्विनीनां प्रदानात् महर्षे: कोपापनय: कथं शक्य:? इमां नन्दिनीं कामधेनोरन्यूनाम् अवेहि। त्वया तु अस्यां शिवसामर्थ्येन प्रहृतम्। इयं नन्दिनी स्वदेहार्पणनिष्क्रयेण भवत: मोचयितुं न्याय्या। एवं सति तव पारणा विहता न स्यात्तथा मुने: क्रियार्थोऽपि लुप्तो न भवेत्। यद्यहं तव विचारे अहिंस्य: तदा त्वं मम यश: शरीरे दयालु: भव। मादृशानां विवेकानाम् अवश्य विनाशिषु भौतिकपिण्डेषु आस्था नास्ति।"[2]

सेवा करना कितना महान् कार्य है! इसका वर्णन आचार्य जी ने इस प्रकार किया है कि प्रत्येक पाठक आनन्दित हो जाता है।

तृतीय एकांकी 'सीतापरित्याग:' का वर्णन आचार्य जी ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है। माता सीता को वन में छोड़ने के प्रसंग में लक्ष्मण की विवशता का वर्णन भाव विभोर करने वाला है। लक्ष्मण जी माता सीता से कहते हैं-"मात: अहं विवशोऽस्मि भवतीमत्र त्यक्तुम्। प्रजासु जनापवादो वर्तते यद् राक्षसानां गृहे उषिताया: सीताया: पत्नीत्वेन स्वीकरणं राज्ञो रामस्य कृते लज्जास्पदं वर्तते। लोकापवादभयेन भवतीं शुद्धामपि परित्यज्य राजा रामोऽपि पीडित:।"[3] इस एकांकी में सीता परित्याग से लेकर माता सीता के धरती माता की गोद में समाने का प्रसंग अत्यन्त करुणता से किया है।

चतुर्थ एकांकी 'कुमुद्वती-कुश-परिणय:' में राजा राम के पुत्र कुश और नागकन्या कुमुद्वती के विवाह का आश्चर्यजनक वर्णन है। कुश के आभूषणों को

---

1. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 3
2. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 10
3. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 14

जल क्रीडा करते समय कुमुद नाग के द्वारा चोरी कर लिया जाता है। तब कुश के भय से कुमुद की बहन कुमुद्वती वहां प्रकट होकर कहती है-

**अवैमि कार्यान्तरमानुषस्य, विष्णोः श्रुताख्यामपरां तनुं त्वाम्।**
**सोऽहं कथं नाम तवाचरेयमाराधनीयस्य धृतेर्विघातम्॥**

हे राजन्! अहं जाने यत्त्वं विष्णुरूपेण राक्षसान् हन्तुं पृथिव्यां शासकत्वेन समायातोऽसि। अतः भवता सह कथं वैरं कुर्याम्?[1]

पञ्चम एकांकी 'पार्वतीशंकरयोः परिणयः' में माता पार्वती और भगवान् शिव के विवाह का वर्णन है। इस एकांकी में माता पार्वती की तपस्या के पहले से लेकर भगवान् शिव और माता पार्वती के विवाह तक का वर्णन है। 'कुमारसंभवम्' में महाकवि कालिदास का शिव पार्वती के विवाह का वर्णन करते हुए हास्य रस का एक उदाहरण उपयुक्त प्रतीत होता है-

**इयं च तेऽन्या पुरतो विडम्बना**
**यदूढया वारणराजहार्यया।**
**विलोक्य वृद्धोक्षमधिष्ठितं त्वया**
**महाजनः स्मेरमुखो भविष्यति॥**[2]

अर्थात् वटु वेषधारी शिव का कथन है कि यदि पार्वती का शिव से विवाह होता है तो हाथी पर सवारी योग्य वधू को बूढे नन्दी बैल पर बैठा देखकर सभी लोग हँसेंगे। जब बटु वेश में भगवान् शिव माता पार्वती की परीक्षा लेने आए और शिव की बुराई करने लगे, तब पार्वतीमाता ने कहा-"यतोहि यः पूज्यान् अपभाषते न केवलं स एव दोषभाक्, अपितु यः श्रृणोति सोऽपि दोषभाग् भवति। अथवा अहमेव इतः गच्छामि।[3]

षष्ठ एकांकी 'षाण्मातुरम्' में माता पार्वती और भगवान् शिव के सहवास, कुमार कार्तिकेय का जन्म वर्णन और तारकासुर के वध से सम्बन्धित कथा वर्णित है। तारकासुर के युद्ध में चुनौती का प्रत्युत्तर देते हुए कुमार कार्तिकेय कहते हैं-

**दैत्याधिराज! भवता यदवादि गर्वात्,**
**तत्सर्वमप्युचितमेव तवैव किन्तु।**

---

1. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 21
2. कुमारसम्भवम्-सर्ग 5 श्लोक संख्या 70
3. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 29

**द्रष्टास्मि ते प्रवरबाहुबलं वरिष्ठं,**
**शस्त्रं गृहाण कुरु कार्मुकमात-तज्यम्।।**[1]

एकांकी की भाषा सरल, सुन्दर और मनोहर है।

सप्तम एकांकी 'तनयाविश्लेषः' में शकुन्तला की विदाई का मार्मिक वर्णन प्रस्तुत किया है। शकुन्तला की प्रियसखियाँ अनुसूया और प्रियंवदा शकुन्तला के पति गृह गमन से दुःखी हैं परन्तु इस बात से प्रसन्न हैं कि उनकी प्रियसखी अपने पति के घर जा रही है। कण्व ऋषि शकुन्तला को विदा करने से पूर्व अपनी पुत्री को उपदेश देते हैं। ऋषि कहते हैं-

**त्वम् इतः पतिकुलम् अधिगम्य-**
**शुश्रुषस्व गुरून् कुरु प्रियसखी वृत्तिं सपत्नीजने,**
**भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।**
**भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी,**
**यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः।।**[2]

पिता-पुत्री के संवाद को वास्तविकता के साथ दर्शाया है। पिता-पुत्री के एक-दूसरे के प्रति चिंता का भाव भी प्राकृतिक रूप से प्रदर्शित किया है।

अष्टम एकांकी 'विस्मितप्रणयम्' की कथा में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के महल में पहुंचने पर राजा शकुन्तला को पहचानने में अपनी अस्वीकृति देता है और शकुन्तला को ही झूठा सिद्ध करने का प्रयास करता है तथा शकुन्तला से किसी भी प्रकार के संबंध को अस्वीकार करता है। राजा कहता है कि-"नार्यः स्वकार्यं व्यापादयितुमित्थेव मधुराभिः मिथ्यावाग्भिः कामिनः पुरुषान् वशीकुर्वन्ति।"[3]

राजा हर प्रकार से शकुन्तला को अपमानित करता है उसके बाद दुःखी शकुन्तला भगवती देवी वसुन्धरा से अपने अन्दर स्थान मांगती है तब एक शक्ति के द्वारा शकुन्तला को वहाँ से ले जाया जाता है। यह वर्णन हृदय विदारक है।

नवम एकांकी 'अभिज्ञानम्' में धीवर के द्वारा अंगुठी दिखाए जाने पर राजा दुष्यन्त को पहले का सम्पूर्ण विवरण याद आ जाता है उसके शकुन्तला के साथ किए गए दुर्व्यवहार की याद आती है और वह शकुन्तला के विरह में तड़पता है।

---

1. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 38
2. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 47
3. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 54

दशम एकांकी 'सापत्यदारम्' में राजा दुष्यन्त का शकुन्तला और अपने पुत्र सर्वदमन के मिलन का अत्यन्त मनोरम वर्णन है। जब राजा शकुन्तला से मिलता है तब वह अपनी व्यथा को बताते हुए कहता है–यदा विषादविशिखः हृदयान्निःसरिष्यति तदा सर्वं कथयिष्यामि।

**मोहान्माया सुतनु! पूर्वमुपेक्षतस्ते,**
**यो वाष्पबिन्दुरधरं परिबाधमानः।**
**तं तावदाकुटिलपक्ष्मविलग्नमद्य,**
**कान्ते प्रमृज्य विगतानुशयो भवेयम्।।**[1]

एकादश एकांकी 'प्रणयः' में उर्वशी–पुरूरवा के प्रणय से सम्बन्धित कथा वस्तु है। इसकी कथा वस्तु आचार्य श्री ने कालिदास के 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक से ली है। इस एकांकी के माध्यम से आचार्य जी आज की युवा पीढ़ी को संस्कार सिखाना चाहते हैं। पुरूरवा एक राक्षस को मारकर देवताओं के भय को दूर करने के उद्देश्य से स्वर्ग लोक गये थे, वहीं पर उर्वशी से पुरूरवा का प्रथम बार मिलन होता है। तत्पश्चात् इन्द्र देव के स्वर्ग लोक में बुलाने पर वह और उनकी सखी चित्रलेखा दोनों चली जाती हैं। उर्वशी के जाने के बाद विदूषक राजा से कहता है कि धैर्य मत छोड़िए। उर्वशी भी तुम्हारे प्रति दृढ़ अनुरक्त है। तब राजा कहता है– मम मनसि अपि इदमेव वर्तते। वस्तुतः सा गच्छती–

**अनीशया शरीरस्य हृदयं स्ववशं मयि।**
**स्तनकम्पक्रियालक्ष्यैर्न्यस्तं निश्वसितैरिव।।**[2]

द्वादश एकांकी 'संगमनीयम्' में स्वर्ग लोक में लक्ष्मी का अभिनय करते हुए उर्वशी के मुख से 'पुरुषोत्तमो विष्णुः' के स्थान पर भूलवश पुरूरवा नाम का उच्चारण हो जाता है और उसे श्राप मिल जाता है, इस घटना का ज्ञान भरत मुनि के शिष्य गालव और पेलव के माध्यम से मिलती है। उसके बाद भू लोक पर उर्वशी राजा पुरूरवा के महल जाती है और सारी स्थिति से राजा को अवगत कराती है। एक बार भ्रमण करते हुए उर्वशी शाप के द्वारा विचारशून्य होकर स्त्रीजन निषिद्ध कुमारवन में प्रवेश कर लेती है और लताभाव रूप के द्वारा वह लता रूप को प्राप्त कर लेती है। उसके बाद पुरूरवा उर्वशी को वन में जाकर लता रूप से मुक्त कराता है। इस एकांकी में प्रेम की पराकाष्ठा को दर्शाया गया है।

---

1. कालिदाससौरभम्–पं. साँवरमल शास्त्री–पेज 72
2. कालिदाससौरभम्–पं. साँवरमल शास्त्री–पेज 86

त्रयोदश एकांकी 'आयुष्' के प्रारम्भ में राजा की दयनीय स्थिति दर्शायी है। तत्पश्चात् बाण के साथ मणि को लेकर कञ्चुकी का प्रवेश होता है। कञ्चुकी कहता है कि बाण पर नाम अंकित है किन्तु मेरी दृष्टि अक्षर पठन में समर्थ नहीं है। तब राजा बाण लेकर पढ़ता है-"शृणु तावत् प्रहर्तुर्नामाक्षराणि। अयम् उर्वशीसुतस्य पुरूरवसः सूनोः कुमारस्य आयुषो बाणः।"[1]

इसके बाद राजा को ज्ञात हो जाता है कि कुमार मेरा और उर्वशी का पुत्र है। इसके बाद राजा, उर्वशी, नारद, तापसी आदि का अत्यन्त भावपूर्ण संवाद होता है और अन्त में भरत वाक्य से एकांकी का समापन होता है।

**परस्परविरोधिन्योरेकसंश्रयदुर्लभं संगताम्।**
**श्रीसरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्।।**
**सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वो भद्राणि पश्यतु।**
**सर्वः कामनवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु।।**[2]

चतुर्दश एकांकी 'मालविका', पञ्चदश एकांकी 'नारी न मुह्यति नारीरूपे', षोडश एकांकी 'अशोकविकसनम्' एवं सप्तदश एकांकी 'रहस्योद्भावनम्' इन चारों एकांकियों की कथावस्तु महाकवि कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' से ली गई है। जिसकी कथावस्तु इस प्रकार है-मालविका राजा अग्निमित्र की रानी धारिणी की सेविका है। धारिणी मालविका को संगीत-नृत्य आदि सिखाने के लिए नाट्याचार्य गणदास को शिक्षक नियुक्त करती है। मालविका एक चतुष्पद गाती है वह इस प्रकार है-

**दुर्लभः प्रियो मे तस्मिन् भव हृदय निराश-**
**महो अपांगो मे परिस्फुरति किमपि वामः।**
**एष एव चिरदृष्टः कथं पुनरुपनेतव्यो**
**नाथ मां पराधीनां त्वयि परिगणय सतृष्णाम्।।**[3]

धारिणी प्रयत्न करती है कि राजा मालविका के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध न हो जाए, अतः वह उसे छिपाकर रखती है। एक चित्र में राजा मालविका को देख लेता है और उस पर मुग्ध हो जाता है। विदूषक मालविका को अग्निमित्र के सामने लाने की योजना बनाता है। तदनुसार नाट्याचार्य गणदास और हरदत्त में योग्यता विषयक

1. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 99
2. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 106
3. कालिदाससौरभम्-पं. साँवरमल शास्त्री-पेज 112

विवाद होता है। निर्णय होता है कि भगवती कौशिकी (एक संन्यासिनी) ही अध्यक्षता में दोनों नाट्याचार्य अपनी शिष्याओं के द्वारा अभिनय कला का प्रदर्शन करायें। धारिणी इस प्रदर्शन को रोकना चाहती है, परन्तु असफल रहती है। मालविका की नाट्यकला का प्रदर्शन होता है। गणदास विजयी घोषित होते हैं। राजा अग्निमित्र मालविका पर मन्त्रमुग्ध होते हैं। महाकवि कालिदास ने यहाँ मालविका के नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए उसको विधाता द्वारा निर्मित विष से बुझा हुआ काम का बाण बताया है।

**अव्याजसुन्दरीं तां विज्ञानेन ललितेन योजयता।**
**परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः॥**[1]

राजा विदूषक से मालविका की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को कहता है। उसके बाद अग्निमित्र और मालविका का अनुराग प्रकट हो जाता है। छोटी रानी इरावती के आदेशानुसार राजा प्रमदवन जाते हैं। पैर में चोट लगने के कारण रानी धारिणी अशोक की दोहद पूर्ति के लिए नहीं जाती है और वह अपने स्थान पर मालविका को भेजती है। यहीं पर राजा और मालविका का मिलन होता है। रानी इरावती वहाँ आकर विघ्न डालती है और राजा अग्निमित्र को भला-बुरा कहती है। क्रोधित होकर रानी धारिणी मालविका और उसकी सखी बकुलावलिका को जेल में डाल देती है। विदूषक साँप से काटे जाने का बहाना बनाकर धारिणी की सर्प मुद्रायुक्त अँगूठी प्राप्त करता है और उसे दिखाकर मालविका और उसकी सखी को मुक्त कराता है। उसके बाद विदर्भ देश से आयी हुई दो सेविकाओं से मालविका का परिचय प्राप्त होता है। पूरा परिचय ज्ञात होने पर कि मालविका विदर्भराज पुत्र माधवसेन की बहिन है, दायादों द्वारा राज्य अपहृत होने पर अमात्य सुमति मालविका को सुरक्षित रखने के लिए छिपा कर लाता है, वन में डाकुओं के द्वारा सुमति की हत्या कर दी जाती है और मालविका धारिणी के भाई वीरसेन को प्राप्त हुई उसके बाद वह दासी के रूप में धारिणी के पास रहती है, रानी धारिणी की आज्ञा से राजा अग्निमित्र और मालविका का विवाह हो जाता है।

इन चारों एकांकियों के माध्यम से आचार्य जी बताना चाहते हैं कि केवल प्राचीनता को ही अत्यधिक महत्त्व नहीं देना चाहिए और नवीनता का निरादर भी नहीं करना चाहिए। विद्वान् गुण दोषों का विचार करके सही को ग्रहण करते हैं और मूर्ख व्यक्ति दूसरों के कहने पर चलते हैं। आचार्य जी ने शिक्षकों का वर्णन भी बहुत ही

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास-कपिल देव द्विवेदी-पेज 329

सुन्दर तरीके से किया है। उन्हीं शिक्षकों को योग्यतम मानना चाहिए जिनमें ये दो गुण हो, पहला वे स्वयं सुयोग्य हो और दूसरा ये कि वे दूसरों को योग्य बना सके। प्रेम के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि बुद्धि के द्वारा ही मित्र कार्य पूरा नहीं होता बल्कि प्रेम से ही मित्र का कार्य सिद्ध होता है। इन एकांकियों के माध्यम से आचार्य जी ने नाट्यशास्त्र के महत्त्व को भी प्रतिपादित किया है। भाषा शैली सरल, कोमल और भावपूर्ण है।

सारांश–आचार्य प्रवर श्री सांवरमल शास्त्री जी द्वारा रचित 'कालिदाससौरभम्' के माध्यम से महाकवि कालिदास के काव्यों को अत्यधिक सही तरह से समझा जा सकता है। 'कालिदाससौरभम्' की एकांकियों का रंगमंच पर प्रर्दशन के द्वारा इनकी शिक्षा को आसानी से समझाया जा सकता है।

✦✦✦

शिक्षामृतम्, वर्ष-2021, अंक-12 ISSN : 2349-6452

# मानव जीवन की सफलता के साधन रूप 'चित्तप्रसादन' का योग दर्शन के संदर्भ में अनुशीलन

डॉ. पङ्कजाघईकौशिक

**सारांश**

मानव जीवन की सफलता हेतु विविध उपायों और साधनों का विधान नाना स्तरों पर होता रहा है। विविध चिंतकों ने अपने अनुभवों के आधार पर मानव जीवन की सफलता के मार्ग सुझाए हैं। वस्तुतः मानव जीवन के किसी भी पक्ष में सफलता प्राप्त करने के लिए एकाग्रता की आवश्यकता को सभी मनीषियों ने स्वीकार किया है और एकाग्रता अर्जित करने के लिए विभिन्न उपाय भी सुझाए हैं। उन्हीं अनंत उपायों में चित्त की प्रसन्नता एक अन्यतम उपाय है। आज विश्व स्तर पर चित्र की प्रसन्नता को मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जा रहा है और इसे विश्व कल्याण एवं उत्तम जीवन के साधन के रूप में देखा जाने लगा है। वैश्विक संदर्भ में अथवा वैयक्तिक स्तर पर मानव चित् की प्रसन्नता का वैज्ञानिक अन्वेषण एक महत्वपूर्ण विषय बनता जा रहा है। आधुनिक जगत के लिए चित् की प्रसन्नता अन्वेषण का एक नूतन विषय हो सकता है परंतु भारत भूमि के मनीषियों ने इस महत्वपूर्ण विषय पर बहुत पूर्व काल में ही चिंतन किया था और मानव जीवन के संतुलन एवं साफल्य हेतु अपरिहार्य रूप से आवश्यक तत्व एकाग्रता के लिए चित् प्रसादन को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में स्थापित किया था। मानव शरीर के बाह्य एवं अंतः रूप को साधने का शास्त्र योग दर्शन है। योग दर्शन में न केवल चित् प्रसादन की विधियों का उल्लेख है अपितु चित् के अवसाद युक्त होने के कारणों तथा उन कारणों के निवारण की आवश्यकता का निरूपण कर विभिन्न उपाय प्रस्तुत किए गए हैं। इस शोध पत्र में 'प्रसन्नता' अथवा 'चित्तप्रसादन' को आधार बनाकर योग दर्शन के विशिष्ट प्रसंग में भारतीय मनीषा का अनुशीलन किया गया है। इस शोध

* सहाचार्या, संस्कृतविभाग, लेडीश्रीराममहिलामहाविद्यालय, देहली।

हेतु मौलिक ग्रंथ एवं मौलिक ग्रंथों पर लिखित विविध टीकाओं का अध्ययन किया गया है। इसके साथ ही आधुनिक मनोविज्ञान में प्रसन्नता को लेकर होने वाले मनोवैज्ञानिक चिंतन का अनुशीलन भी किया गया है।

## भूमिका

चित् प्रसादन का शाब्दिक अर्थ है चित् की वह व्यवस्था जिसमें कोई विषाद न हो, संतोष का भाव हो और विचलन का अभाव हो, अर्थात् प्रसन्न रहने की अवस्था। अभिप्राय यह है कि जब कोई मनुष्य विषाद रहित, अविचलित और संतुष्ट दिखे तो उस मनुष्य को प्रसाद अथवा प्रसन्न अवस्था में अवस्थित समझा जाए। प्रसन्नता के संदर्भ में कतिपय बिंदुओं को स्पष्ट करना अपेक्षित है–

- प्रसन्नता अथवा प्रसादन एक अवस्था है व्यवहार नहीं। यहां स्थाई भाव नहीं है अपितु निरंतर सान्दर्भिक अवस्था है जो परिस्थितियों और प्रसंगों के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।
- प्रसाद आनंद और संतोष अर्थ को द्योतित करता है अतः प्रसादन शब्द को अस्थाई भावों के साथ, जिन्हें अंग्रेजी में joy, ecstasy, इसपे कहां जाता है, मिलाकर भ्रामिक अर्थ में नहीं समझना चाहिए।
- प्रसादन का संबंध अन्तः एवं बाह्य दोनों अवस्थाओं से है। अर्थात् मानव अंतः करण से प्रसन्न होता है तो उसका प्रतिरूप बाहरी शारीरिक अवस्था दिखाई देता है।

मनोविज्ञान (positive psychology) के शोध क्षेत्र में प्रसादन अथवा प्रसन्नता को subjective well being (SWB) के नाम से जाना जाता है आधुनिक मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस विषय का शोध सक्रिय है जहां प्रसन्नता (Happiness) को एक अवस्था मानकर उसे संतोष (contentment) भाव के समक्ष रखा गया है। आधुनिक मनोविज्ञान में प्रसन्नता की आवश्यकता पर विविध मत प्रस्तुत किए गए हैं। इस क्षेत्र में होने वाले बहुविध शोध कार्य तथा अध्ययनों के अंतर्गत लौकिक कल्याण (wellbeing or good quality life) के लिए तनाव से मुक्ति, स्वास्थ्य, उत्तम जीवन तथा दीर्घायु आदि के लिए प्रसन्नता का महत्व प्रमुख रूप से प्रतिपादित किया गया है।[1] सन् 2021 में University of Kentucky के विद्वानों द्वारा प्रकाशित पत्र में यह

---

1. https:\\ positivepsychology.com, What is happiness and why is it (30-01-2022)

प्रस्तुत किया है कि धर्म क्षेत्र में भी वस्तुतः प्रसन्नता ही ऐसा तत्व है जो दीर्घायु प्रदान करने में सहायक बनता है[1]। Journal of Happiness Studies में प्रकाशित अध्ययन स्थापित करता है कि प्रसन्नता मानव को अधिक उदार बनाती है।[2]

भारतीय मनीषियों ने मानव मनोविज्ञान के सूक्ष्म तत्वों को समझने का प्रयास किया है। महर्षि पतंजलि विरचित योगसूत्रम् मानवीय संवेदनाओं के विमर्श हेतु सर्वोत्तम ग्रंथ है। पतंजलि, कैवल्य प्राप्ति हेतु एकाग्रता की आवश्यकता का प्रतिपादन मुखर रुप से करते हैं। एकाग्रता को बनाए रखने के लिए चित् की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है और चित् विभिन्न प्रकार से विचलित होता हुआ एकाग्रता को भंग करने का कारक बन जाता है अतः चित् विक्षेप की स्थितियों और चित् के विक्षेप रहित होने के विविध उपायों का निरूपण भी आचार्य पतंजलि ने किया है। चित् के विक्षेप रहित होने के लिए चित् का प्रसन्न होना अपेक्षित है। वह चाहे प्रेयस् (सांसारिक लक्ष्यों की प्राप्ति तथा भौतिक सफलताएं) हो अथवा श्रेयस् (भारतीय दर्शन के अनुसार कैवल्य रूपी आध्यात्मिक पराकाष्ठा) दोनों की सिद्धि के लिए चित् का प्रसन्न रहना आवश्यक है। योग दर्शन में यद्यपि चित् प्रसादन को समाधिस्थ अवस्था तक पहुंचने के निमित्त साधन के रूप में व्याख्यायित किया गया है तथापि चित् प्रसादन अलौकिक उन्नति के लिए भी उपयोगी है।

### चित्त प्रसादन एक अवस्था है

मानव चित् विभिन्न अवस्थाओं में स्थित होता है। विभिन्न अवस्थाओं में चित् का नया रूप बनता है। संस्कृत काव्यशास्त्र के विद्वानों ने रसास्वाद का आधार हृदय अर्थात चित् को माना है और हृदय के स्तरों को चार प्रकार से निरूपित किया है- विकास, विस्तार, क्षोभ, एवं विक्षेप।[3] हृदय के यह विकार क्रमशः शृंगार, वीर, वीभत्स तथा रौद्र रसों से उत्पन्न होते हैं। यह रस वास्तव में जीवन में आने वाली विविध परिस्थितियों के प्रतीक हैं जिनका प्रभाव मानव हृदय पर पड़ता है और मानव उस प्रभाव के अनुरूप व्यवहार करता है। इन्हीं चित् की अवस्थाएं कहा जा सकता है।

---

1. Danner, D. Deborah, Snowdan, A. David, Friesen, V. Wallace, emotions in early life and longevity, Findings from the Nun study.
2. Courbalay, Anne-Brander, Quentin and Gillet, Nicolas, Benefits of physical activity programme on employees… Forum on Subjective well being- Published on 29.01.2022.
3. काव्यार्थेन भावकचेतसः सम्भेदे अन्योन्यसंवलने स्वादः। दशरूपकम् 4.43

**विकास**- हृदय की यहां अवस्था किसी सज्जन व्यक्ति अथवा सत्य व्यवहार के संपर्क में आने से उत्पन्न होती है और मानव हृदय मैं उस सुख परिस्थिति के प्रति आसक्ति हो जाती है। चित् के विकसित होते ही उसमें सत्व गुण का संचार होता है। मानव प्रसन्न अवस्था में स्थित होता है।

**विस्तार**- विस्तार भी मानव हृदय की पुण्य प्रद प्रतिक्रिया है। सांसारिक विषयों के संपर्क के साथ सुख की अनुभूति होती है तो चित् का विस्तार होता है अर्थात् हृदय का स्थान बड़ा हो जाता है। अभिप्राय यह है कि उस सुख का संचार मानव के संपूर्ण स्थूल शरीर में होता है और उसका प्रत्येक अंग और अधिक उल्लसित हो जाता है। इस अवस्था में मैत्री भाव स्वाभाविक रूप से उत्पन्न होता है।

**क्षोभ**- किसी अन्य व्यक्ति के दु:ख अथवा दु:परिस्थितियों के कारण मानव हृदय विचलित होता है, इस अवस्था को क्षोभ कहा गया है।

**विक्षेप**- विक्षेप हृदय की वह अवस्था है जिसमें मानव विभिन्न प्रसंगों, विविध क्रियाओं, मानव व्यवहारों तथा विशिष्ट परिस्थितियों के प्रति पराङ्मुखी हो जाता है। उन सभी के प्रति उसके हृदय में अरुचि उत्पन्न हो जाती है। हृदय की यह वह अवस्था है जहां मानव स्वयं को उन अनुचित परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया देने में उलझाता नहीं अपितु उपेक्षा भाव रखता है क्योंकि ऐसी परिस्थितियों अथवा ऐसे व्यक्तियों के व्यवहार के प्रति उसकी प्रतिक्रिया पुन: दुख का कारण बन जाती है। आचार्य पतंजलि ने भी योग सूत्र में संसार की समस्त विषयों को चार भावों- सुख, दुख, पुण्य एवं पाप में समेटा है।[1]

## चित् के विक्षिप्त अर्थात अप्रसादित होने के कारण

योग सूत्र में मानव चित् के अप्रसादित होने के कारण का विश्लेषण किया गया है। मानव संवेदनशील प्राणी है। स्वयं उसका स्थूल शरीर तथा उससे इतर विभिन्न कारण उसके चित् को अप्रसन्न कर देते हैं। योग सूत्र में इन कारणों को 'चित्त अंतराय' कहा गया है। अंतराय का अर्थ ही है विघ्न अर्थात जो व्यवहार और परिस्थितियां चित् में विक्षेप उत्पन्न करते हैं अर्थात जिन कारणों से चित् और अप्रसादित होता है वे अंतराय कहे गए हैं। आचार्य पतंजलि ने चित्त अंतराय के निम्न

---

1. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदु:खपुण्यापुण्यविषयाणां भावनाश्चित्तप्रसादानतम्। योग दर्शन 1.33

नौ प्रकार बताए हैं-[1]

**व्याधि**- स्थूल शरीर का रुग्ण होना

**संशय**- विश्वास का अभाव

**प्रमाद**- अनियमिताएं

**आलस्य**- तमस् गुण से प्रभावित होकर निद्रा आदि से युक्त होकर निश्चेष्ट होना।

**भ्रांति-दर्शन**- अपने लक्ष्य से भ्रमित हो जाना

**अलब्ध भूमिकत्व**- निरतप्रयासयुक्त होने पर भी लक्ष्य को प्राप्त न कर पाना।

**अनवस्थितत्व**- एकाग्रता का अभाव।

उपर्युक्त अंतरायों के अतिरिक्त राग, ईर्ष्या, परापकार करने की इच्छा, असूया, द्वेष और अमर्ष, राजसिक एवं तामसिक भाव चित्त के विक्षिप्त होने के कारण बन जाते हैं। यह राजसिक एवं तामसिक भाव हृदय में विविध कालुष्य उत्पन्न करते हैं जिन्हें निम्न कोटियों में विभक्त किया गया है-

**राग कालुष्य**- सुख देने वाली परिस्थितियों और संबंध आदि की निरंतरता बनी रहनी की इच्छा राग कालुष्य है जो कि स्वाभाविक रुप से आसक्ति से उत्पन्न होता है। सुख देने वाले तत्त्वों के नष्ट हो जाने पर मन मलिन हो जाता है।

**ईर्ष्या कालुष्य**- स्वयं से इतर मानवों के गुणादि एवं प्रगति से चित्त ईर्ष्या कालुष्य से मलिन होता है।

**परापकार चिकीर्षा कालुष्य**- किसी की उपकार करने की इच्छा चित् को कलुषित कर देती है।

**असूया कालुष्य**- दूसरों के गुणों में दोष आरोपित करना असूया कालुष्य से होता है।

**द्वेष कालुष्य**- द्वेष कालुष्य से मनुष्य का मन क्षमा विरोधी हो जाता है।

**अमर्ष कालुष्य**- किसी के कठोर वचन सुनकर अथवा अपमानित होकर प्रतिकार की चेष्टा अमर्ष कालुष्य से होती है।

---

1. व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तराया:। योग दर्शन- 1/30

## चित्त को प्रसन्न रखने के उपाय

चित् को प्रसन्न रखने के लिए अंतरायों को दूर करना अपेक्षित है और इसके लिए जो अभ्यास किया जाता है उसे परिकर्म कहां गया है। आचार्य पतंजलि जब संसार के समस्त भावों को सुख, दु:ख, पुण्य और पाप के रूप में समेटते हैं तो इसके साथ ही इन भावों के प्रति अपेक्षित मानव की प्रतिक्रिया को भी चार भागों में विभक्त कर देते हैं। सुख के प्रति मैत्री भाव, दु:ख के प्रति करुणा भाव, पुण्य के प्रति मुदित भाव और पाप के प्रति उपेक्षा भाव। वाचस्पति मिश्र ने योगसूत्र में मैत्री आदि चित्तप्रसादन की विधि को परिकर्म कहा है।[1] वाचस्पति मिश्र ने यह भी स्पष्ट किया है कि राग कालुष्य आदि के विरोधी मैत्री आदि की भावनाओं को बढ़ाने से ये सभी कालुष्य समाप्त हो जाते हैं।[2] श्री ओमानन्दतीर्थ ने पातञ्जलयोगसूत्र की उक्त कारिका की व्याख्या करते हुए लिखा है कि किसी मनुष्य को सुखी अवस्था में देखकर उसके प्रति मैत्री भाव रखने वाले मनुष्य के हृदय से रागकालुष्य और ईर्ष्या कालुष्य समाप्त हो जाता है और उसका चित्त उसी प्रकार प्रसन्न होता है जैसे सुख प्राप्त करने वाले मनुष्य का हृदय प्रसन्न होता है। दु:ख को प्राप्त हुए मनुष्य को देखकर उसके प्रति गया का अभाव रखने से अपकार, असूया आदि कालुष्य समाप्त हो जाता है। दया/करूणा का भाव होने से उस दु:खी व्यक्ति की सहायता करने से मन में प्रसन्नता का उदय होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। पं. ओमानन्दतीर्थ पातञजलयोगप्रदीप में लिखते हैं कि किसी भी दु:खी जीव को देखकर **प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा। आत्मौपम्येन सर्वत्र दयां कुर्वन्ति साधव:** वाक्य स्मरण करना चाहिए।[3] पुण्यकर्म करते हुए पुण्यात्माओं के प्रति मुदित भाव होने से असूया भाव समाप्त होता है। मुदित भाव असूया भाव को समाप्त करता है। चित्त निर्मल होकर प्रतिस्पर्धा एवं असूया भाव से मुक्त होकर निर्मल अवस्था में स्थित होता है। चित् के अप्रसादित होने का बड़ा कारण होता है पाप युक्त दुर्जनों का व्यवहार। कठोर एवं क्रूर व्यक्ति चित्र को मलिन करते हैं, उनके प्रति द्वेष अथवा द्रोह करने के विचार मनुष्य की निर्मलता को हर लेते हैं और चित् में अत्यंत द्वेष पूर्ण क्षोभ उत्पन्न होता है। यह स्थिति दोनों पक्षों की दृष्टि से हानिकारक है अत: योग दर्शन में इस विषय में मानव मात्र के लिए उपेक्षा भाव का परामर्श दिया गया है।

---

1. पातञ्जलयोगसूत्र : एकसमालोचनात्मक अध्ययन। पृ. 180
2. वही–पृ. 181
3. ओमानन्दतीर्थ, 'पातञ्जलयोगप्रदीप' पृ. 224

पाप युक्त आचरण करने वाले व्यक्ति को सुमार्ग पर लाना अत्यंत कठिन होता है और अधिकांशत: पापी को सुमार्ग पर लाने वाला व्यक्ति द्वेष, रोष तथा अमर्ष से भर जाता है। पापी का कल्याण करने के स्थान पर मानव अपने चित् में द्वेष रूप मलिनता को आमंत्रित कर लेता है अत: दूसरे के अनुचित व्यवहार को देखते हुए स्वयं को प्रसन्न रखने के लिए उपेक्षा भाव सर्वोत्तम है।

## चित्त प्रसादन के कतिपय अन्य उपाय

योग दर्शन में कतिपय व्यवहारिक उपायों का भी उल्लेख किया गया है जिनके माध्यम से मनुष्य प्रसन्नता की अवस्था को प्राप्त कर सकता है-

- प्राणायाम की प्रक्रिया को भी चित् प्रसादन का साधन माना गया अर्थात् उदर में स्थित वायु को नासिका के माध्यम से बाहर निकालना 'प्रच्छर्दन' कहा गया तथा बाह्य वायु को नासिका के माध्यम से उदर में लाना 'विधारण' प्रक्रिया है इनका अभ्यास करने से चित्त में प्रसाद उत्पन्न होता है।[1]
- योग दर्शन में केवल वैराग्य मात्र से प्रसन्न रहने का विधान नहीं किया गया अपितु सांसारिक पंचमहाभूतों-रूप रस गंध स्पर्श एवं शब्द के विषयों की प्राप्ति से भी मन को प्रसन्न करने का विधान किया गया है।[2]
- रागादि दोषों से रहित होने का जिन महानुभावों का अभ्यास हुआ है उनके चरित्र का अध्ययन, श्रवण करने से चित्त प्रसन्न होता है।[3]
- जिस मानव को जो प्रिय हो वैसा ध्यान अर्थात उस विषय का चिंतन मन को प्रसन्न करता है।[4]
- उचित समय पर निद्रा का आलम्बन करने से हृदय में प्रसन्नता रहती है। वर्तमान काल में भी Good sleep को प्रसन्न रहने का एक उपाय बताया गया है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से यह सिद्ध होता है कि सुख निद्रा प्रसन्न रहने के लिए अवश्यंभावी है।[5]

---

1. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य। योग दर्शन- 1/34
2. विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनस: स्थिति निबन्धिनी। योग दर्शन- 1/35
3. वीतरागविषयं वा चित्तम्। योग दर्शन- 1/37
4. यथाभिमतध्यानाद्वा। योग दर्शन- 1/39
5. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा। योग दर्शन- 1/38

**निष्कर्ष**-

योग दर्शन यद्यपि अंतिम लक्ष्य समाधिस्थ अवस्था को प्राप्त करने हेतु साधना के लिए चित्त प्रसादन को एक साधन के रूप में प्रस्तुत करता है परंतु योगदर्शन में उल्लिख्त चित्त प्रसादन के उपाय लौकिक जीवन में अपेक्षित मानवीय व्यवहार के लिए भी मार्गदर्शन करते हैं कि सांसारिक प्रपंच की विविध परिस्थितियों में संतुलित रहते हुए मनुष्य किस प्रकार प्रतिक्रिया दें जिससे कि मन किसी भी स्थिति में विचलित न हो तथा चित्त की निर्मलता समाप्त न हो। आज विश्व जहां चित्त के विचलित होने के मूल कारणों का अन्वेषण कर रहा है तथा प्रसन्न रहने और संतोष के भाव को प्राप्त करने के उपायों का विश्लेषण कर रहा है और इसके निमित्त 'जीवन में सकारात्मक मनोविज्ञान Positive Psychology की आवश्यकता पर शोध हो रहे हैं, तब इस अवसर पर उक्त विषय में तत्पर मनोविज्ञान के शोधार्थियों तथा नूतन समाज के समक्ष भारतीय चिंतन को लाना श्रेयस्कर है। भारतीय योग दर्शन का चिंतन न केवल कैवल्य को प्राप्त करवाने में सहायक है अपितु यथार्थवादी विचारधारा के अनुरूप सांसारिक परिस्थितियों में यथा अनुसार अवसाद रहित रहने के लिए विविध विधियों से मार्गदर्शन भी करता है। योग दर्शन द्वारा प्रस्तावित चित्त प्रसादन क उपाय सर्वथा उपयोगी हैं।

**संदर्भ ग्रन्थ**


- पातञ्जलयोगदर्शम् (2016), संपादन, प्रो. सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव चौखम्भा सुभारती प्रकाशन, वाराणसी।
- पातञ्जलयोगप्रदीप (संवत् 2058), स्वामी ओमानन्दतीर्थ गीता प्रेस गोरखपुर।
- Carr, Alan (2011), Positive Psychology : The Science of Happiness and Human Strength. Pub by Routledge.
- Gupta, Pavan Kumar (1970), Patanjal Yogasutra : A Critical Study. Pub. Eastern Book Linkers, Delhi.


✦✦✦

# Status of India in World Happiness Rankings and its Linkages with Physical Activities

**Dr. Pratyush Vatsala***

**Dr. Seema Sharma (Kaushik)****

**Abstract**

*Participation in physical activities is a natural phenomenon. All human beings love to engage themselves in one or the other kind of physical activity, be it for recreation or for competition. It is a well known fact that numerous health and fitness benefits are associated with participation in physical activities. Any form of physical activity is bound to provide some level of happiness in people's life. This sense of happiness may ultimately leads to the attainment of inner peace which will be helpful in improving the overall productivity and quality of life. While peace is considered to be the lack of conflict and freedom from disturbance; happiness reflects the state of being happy.Currently, Finland tops the list of happiest nation according to the World Happiness Report 2021, in which India is placed at 139. According to these annual ranking reports, India's performance has been dismal and disappointing.*

*Hence, the present paper attempts to identify the linkages of peace and happiness with physical activities and sports. The literature has been collected from various secondary sources including websites, magazines, articles etc. The study focuses on analyzing the status of India in World Happiness Ratings, exploring probable reasons for poor ranking; and identify the linkages peace and happiness with sports. The study will be concluded in the form of SWOT analysis of the attainment of peace and happiness through physical activities and sports.*

---

* Principal, Lakshmibai College, University of Delhi, India

** Assistant Professor, Department of Physical Education, Lakshmibai College University of Delhi, India

*Key Words: Peace, Happiness, Physical Activities, Sports.*

## Introduction

Human being is naturally designed to be physically active. There is an abundance of literature that reflects a close connection between our mind and body. A positive lifestyle is associated with our mental well-being. The factors to achieve positive lifestyle include appropriate amount and combination of exercise, nutrition, sleep, rest, sunlight, and positive social interaction, which may keep us away from anxiety and depression.

The literature reflects that the health of a person is directly related to happiness, however, the objective health of a person as defined by medical assessment assumes little correlation with happiness. In qualitative terms, it is observed that the people who are happy, usually feel younger as they have younger heart, younger arteries, and a stronger immune system. People who are happy also develop the quality to cope better with stress, pain and recover more quickly from surgery than unhappy people (Sharecare, 2018). By means of playing games or participating in any form of physical activity like walking, jogging, running, swimming, cycling, weight training, yoga, dancing, trekking, mountaineering, or participating in competitive sports etc., we enjoy, feel happy, and become healthy at the same time.

Happiness is different from spiritual pleasure. One may seek happiness in achieving something materialistic. Its fulfillment/non-fulfillment may bring happiness or sorrow or a mixture of these two. While a common man feels good on hearing good words and sad about bad words, a knowledgeable person is not overjoyed with happiness or depress with sadness. He maintains a steady state of mind by accepting words not affecting his peace of mind. (Thekkittil, 2016)

While peace is the *stable* state of mind; happiness is an *achievable* state of mind, which can have positive effects on the body and mind (Shakti, 2015). Having support of family, friends and relatives; sharing healthy personal relations; a sense of belongingness, achievement and motivation; involvement in household or leisure activities; being spiritually connected; continuing with passion or a hobby; or exercising regularly are some of the natural and scientific ways to achieve happiness in our daily life.

By means of playing games or participating in any form of physical activity like walking, jogging, running, swimming, cycling, weight training, yoga, dancing, trekking, mountaineering, or participating in competitive sports etc., we enjoy, feel happy, and become healthy at the same time.

The United Nations Sustainable Development Solutions Network (UNSDSN) publishes the World Happiness Report annually. This survey indicates the state of global happiness on the basis of various perspectives including GDP per capita, social support, freedom in decision-making, better life-expectancy, kindness, corruption perception, survey analysis, and national statistics etc.

The World Happiness Report 2021rated Finland to be the happiest country. India's rankings in the same list were 111th in 2013, 117th in 2015, 118th in 2016; 122nd in 2017, 133rd in 2018, 140th in 2019, 144th in 2020 and 139th in 2021; which clearly indicates a disappointing trend. Hence, the present paper attempts to study the linkages of peace and happiness with physical activities and sports.

## Objectives

1. To identify the probable reasons for India's consistently disappointing performance in World Happiness Rankings.
2. To identify the linkages of peace and happiness with physical activities and sports.

## Methods

Keeping in view the nature of the study, literature has been collected and analyzed through the secondary sources of data including different website, magazines and articles etc.

## Analysis and Discussion

The first objective of the study was to identify the probable reasons for India's consistently disappointing performance in World Happiness Rankings. On the basis of literature search, the following factors could be responsible for India's dismal happiness rankings:

### 1. Greater Inequality in the Purchasing Power of People

With times, India has covered a long leap in improving the living standards of its population; and improved its economic activity and

GDP per capita in PPP (purchasing power parity). At the same time, there is an increase in the inequality of income games. India continues to possess the most important number of poor within the world. Growth has slowed in recent years and a number of other challenges remain unsolved. Bringing more people into the method of generating growth and sharing the gains more widely will make India more resilient for the longer term. With one among the most important and youngest populations within the world, India must create many good-quality jobs within the near future to make sure decent living conditions for the vast majority of its citizens. (Corrigan, 2018)

## 2. Disparity within the Access to Education Across Gender, Socio Economic Status, Religious Groups and Geographical Regions

Education has remained the key to moving up the economic and social ladder for long. One key indicator of the present state of access to education is that the net attendance ratio (NAR). 89% of youngsters of grade school going age of the richest fifth of the population attend school both within the rural and concrete areas, while that proportion drops to 79% for teenagers within the poorest fifth of the population in rural areas and 78% in urban areas. While basic literacy is increasingly available to all or any, the gulf between the poor and therefore the rich widens as you go up the tutorial ladder. Only 6% of children from rock bottom fifth of the population attend educational levels above higher secondary in urban India, but that proportion is five times higher, at 31%, for children from the richest fifth of the population. The well-off kids have far better opportunities for education, essential for getting good jobs within the cities and, increasingly, abroad also, while their poorer cousins are doomed to cut out a precarious living within the informal sector. The great news is that at the all-India level, there isn't much of a difference between the enrolment of women and boys, particularly at the first level. When it involves castes, the difference in enrolment at the first levels isn't much. But at higher levels of education, the difference between scheduled castes, scheduled tribes, and other categories widens. It becomes large, particularly in the case of urban girls who belong to scheduled tribes at the secondary and better secondary levels. When we talk of religious identities, the enrolment of Muslims is found to be lower as compared to other religions at every level, both for males and females. In urban India, while enrolment for Muslim boys

in primary schools is merely marginally lower, the proportion at the upper educational levels is substantially lower. For urban Muslim girls, NAR is substantially less than for those professing other faiths. (Chakravarty, 2016)

### 3. Concerns about Women's Safety

It is true that ladies in modern India are joining high offices (President, Speaker of Lok Sabha, Union Ministers, Leader of Opposition, Chief Minister, Governor, etc.) however on the rear of curtain they are being exploited too. According to the Constitution of India, they need equal rights of dignity, equality, and freedom from gender discrimination. Indian women are continuously facing numerous problems like harassment, violent victimization through rape, acid attack, dowry deaths, forced prostitution, and lots of more (India Celebrating, 2018). Capital City data suggested that 2016 was the safest year for ladies within the past decade. All kinds of crimes against women like molestation, rape, eve-teasing, stalking, saw a dip. According to the data of Delhi Police, the rape cases against women were reduced to 2017 in 2016 from 2199 in 2015. This went on for the primary time since 2008 when the rape numbers fell for the last time. (Gupta, 2017)

### 4. Growing Cases of Violence

For a nation, whose birth was inspired by the concept of nonviolence, it's indeed sad to notice that violent behaviour in our society is increasing. As per National Crime Records Bureau (NCRB) Report 2013, violent crimes are steadily increasing. A comparison of violent crimes committed in 2003 and 2012 reflects the increase in crime as India has urbanized rapidly during this period: Incidents of Murder û 32,716 (2003), 34,434 (2012); plan to murder - 25,942 (2003), 35,138 (2012); Rape - 15,847 (2002), 24,923 (2012); and Kidnapping and Abduction - 19,992 (2003), 47,952 (2012). As per NCRB 2014 Report, the amount of individuals committing suicide in 2014 was 1,31,666. The statistics reflect the growing incidents of violent behaviour in India and thus, it's important to know the triggers to violent behaviour. The reasons could be ego, conflict of interest, deprivation v/s aspiration, and concrete stress etc. (Debu, 2015)

### 5. Low Funding Towards Mental Health Care

Despite mental health becoming a major global concern, it is an area on which is not widely addressed. Mental health insurance is even beyond the discussion. The probable barriers could include inadequate funding, non-availability of services in rural areas, lack of integration with primary care services, and lack of experience and training among mental health professionals. (Kapoor, 2017)

The second objective of the study was to identify the linkages of peace and happiness with physical activities and sports. On the basis of literature search, the benefits associated with participation in physical activities and sports are listed below (Kelly, 2016).

1. Physical activities leads to the release of endomorphin in the brain, which acts as a happy chemical and reduce stress in our body.
2. Numerous researches have revealed that participation in physical activity helps in coping better with stress. Engaging in various types of aerobic activities like jogging, swimming, cycling, walking, gardening, and dancing, etc. is helpful in reducing anxiety and improving mood. Further, when we exercise in a natural and green area, it helps in improving our overall wellbeing. They can also reduce our tension, result in boosted self-esteem, and helps in better sleep. Activities like yoga can even have a meditative effect also.
3. The literature suggests that aerobic exercise helps in improving our cognitive functions by improving flow of blood to the brain.
4. Physical activities are helpful in combating depression, by overcoming the feeling of lethargy and lack of energy.
5. Regular participation in physical activities and sports helps in boosting psychological well-being. It improves the overall psychological well-being of an individual.

### Conclusion

The study has been concluded in the form of SWOT Analysis which is presented below.

Strengths

- There is a natural pleasure and enjoyment while participating

in leisure time activities, minor games and indigenous sports. It also helps in developing various fitness components. This pleasure leads to personal satisfaction, thereby increasing happiness resulting in inner peace.

Weaknesses

- Competitive nature of sports sometimes leads to stress of performing better.

Opportunities

- Different forms of physical activities may be recommended for different kind of population.
- Yoga can be promoted for all kind of human beings as it has something to offer to everyone.
- Mass participation activities of light intensity can be promoted with/without apparatus or music.
- Movements like 'Sports for All' might bring enormous benefits.

Threats

- There is a wide diversity in the socio-economic status and cultural background of people.
- Economic conditions of the country and vision of the Governmental policies are also among the threats to peace and happiness of its population.

It can be concluded that participation in physical activities and sports naturally leads to internal pleasure and happiness by means of improved quality of life. This feeling of happiness leads us towards peace by motivating us to perform better in every sphere of life, thereby increasing the overall productivity. However, various socio-cultural factors may affect its outcomes.

## References

1. Chakravarty, M. (2016), *How Unequal is Access to Education?* Retrieved from Live Mint: http://www. livemint.com/Opinion/t1QNCalLHTDkt8iun03jdK/How-unequal-is-access-to-education.html.

2. Corrigan, G. (2018), *19 charts that explain India's economic challenge.* Retrieved from World Economic Forum: https://www.weforum.org/agenda/2015/11/19-charts-that-explain-indias-economic-challenge.

3. De Neve, J.-E., Huang, H., & and Wang, S. (2017), *World Happiness Report.* United Nations: Sustainable Development Solutions Network (SDSN). Retrieved from http://worldhappiness.report/.

4. Debu, C. (2015), *Why is Violent Behaviour Increasing in Society?* Retrieved from Maps of India: https://www.mapsofindia.com/my-india/society/why-is-violent-behaviour-increasing-in-society.

5. Gupta, P. (2017), *Women's Safety is yet the Biggest Concern for Girls in India.* Retrieved from She the People.TV: https://www.shethepeople.tv/top-videos/bangalore-women-disgust-citys-new-years-eve-mass-molestation-incident.

6. India Celebrating. (2018), *Safety of Women in India Essay.* Retrieved from India Celebrating: http://www. indiacelebrating.com/essay/safety-of-women-in-india-essay.

7. Jan-Emmanuel, De Neve; and Christian Krekel (2020), Cities and Happiness: A Global Ranking and Analysis. World Happiness Reports. Retrieved from https://worldhappiness.report/ed/2020/cities-and-happiness-a-global-ranking-and-analysis.

8. Kapoor, H. (2017), *A Market for Mental Health Insurance?* Retrieved from Live Mint: http://www. livemint.com/Opinion/wtvnTJn38ZXv7deKCV2B0N/A-market-for-mental-health-insurance.html.

9. Kelly, T. (2016), *Exploring The Link Between Exercise And Happiness*. Retrieved February 23, 2018, from http://www.huffingtonpost.co.uk.

10. Mishra, Sunita (2019), Indians are way less happy than their Neighbours, shows World Happiness Report. Retrieved from https://www.proptiger.com/guide/post/neighbours-doing-better-than-india-shows-world-happiness-report.

11. Press Trust of India (2021), India Ranked 139 out of 149 Countries in UN's World Happiness Report 2021. Retrieved from https://www.firstpost.com/india/india-ranked-139-out-of-149-countries-in-

uns-world-happiness-report-2021-9462241.html.

12. Shakti, M.A. (2015). *Laughter Yoga Ireland.* Retrieved from https:// / laughteryogaireland.org/author/mary-ananda-shakti.

13. Sharecare. (2018), *Happiness and Your Health*. Retrieved from https://www.sharecare.com.

14. Thekkittil, M. (2016),*What is the Difference between Peace and Happiness?* Retrieved from https://www.quora.com.

15. Thundiyil, C. J. (2017), *World Happiness Report India's Place in International Rankings Indian Ethnicity and People Why is India ranked 122nd in the World Happiness Report? What is making Indians unhappy? What can we do about it?* Retrieved February 23, 2017, from https://www.quora.com.

16. Westerterp, K.R. (2013),Physical Activity and Physical Activity Induced Energy Expenditure in Humans: Measurement, Determinants, and Effects. Frontiers in Physiology, 4, 1-11. *The Benefits of Physical Education and Exercise for Health.* Available from https://www.researchgate.net/publication/ 322444720.

✦✦✦

# The meaning of Mokṣa in Jaina Philosophy with special reference to Tattvarthasutra

**Dr. Anil Pratap Giri***

Abstract : There are two kinds of philosophical systems flourishing in our Indian tradition: *astika* and *nastika*. The system which does not believe in the authoritativeness of Vedas is the Nastika philosophy, classified into *Carvaka, Buddha,* and *Jaina* philosophical schools. In Jainaphilosophy, Tīrthaṅkaras tried to build a metaphorical ford for householders towards the path of Mokṣa. According to Jaina's philosophy, Mokṣa can attain through right faith, proper knowledge, and right conduct. Good faith includes the essential elements of Jainism-*jīva, ajīva, āsrava, bandhā, samvarā, nirjara, Mokṣa. Mokṣa* separates those *karmas* of jiva which bind the Soul to its rebirth. It makes jiva to be free from all the bondages, ignorance, impurities,and so on and leads to real bliss. *Tattvārthasūtra*, written by *Ācāraya Umāsvāmī*, the first *Jain* scripture written in the Sanskrit language in the form of sutra style represents doctrines of Jain philosophy in a precise manner. The authoritativeness of this text is accepted equally by both Digambara *Jaina* and *Śvetāmbara Jaina*. *This is a foundational text of Jainism that* elaborates the valid path of *Mokṣa*. Therefore, the text is called *Mokṣaśāstra* of Jaina philosophy.Without the insight of this text, logistic discourse on *Mokṣa* cannot be justified in the *Jaina* philosophy.

In the view of the concept as mentioned earlier, this paper would discourse on *Mokṣa* in the light of *Jaina* philosophy with the particular reference to *Tattvārthasūtra* to highlight the academic significance of Tattvārthasūtra in Sanskrit and Indian philosophy in general and *Jaina* school of thoughts in particular.

---

* Associate Professor, Department of Sanskrit, Mahatma Gandhi Central University, Bankat, Motihari, Bihar-845401

Key word : *Mokṣa*, Jaina philosophy, Nāstika, Tattvārthasūtra, Ācāraya Umāsvāmī.

**Scope of the research :** Further scope of this research paper is

- To understand the contemporary significance of Jaina philosophy.
- To understand the meaning of the Jaina text Tattvarthasutra.
- To understand the concept of Mokṣa.
- To understand the concept of Mokṣa in Jaina philosophy through the Tattvarthasutra text.

**Methodology :** This paper is especially dealing the concept of Mokṣa,which is encoded in Tattvārthasūtra. Encoded Formulae of Mokṣa in Tattvarthasutra elaborated by applying deductive analytical methods so that the gist of the Mokṣa of Tattvārthasūtra could be highlighted systematically as well as scientifically for further research and understanding.

**Introduction :** Literary translation of Indian philosophy is Darśanaśāstra which comprising two words that is darśana and śāstra. Sastra is a system of knowledge which form is pure science classified into apauruṣeya and pauruṣeya and deals in a holistic way of understanding of the world for evolving human beings to avail de-conditioned stage from conditioned stage so that ultimate real bliss could be gained of the world. Where as darsana derives the following three meanings

1. Dṛsyatearenaitidarsanam- An instrument of looking into object
2. Dṛsyateasminitidarsanam- Locus of looking
3. Dṛsyateasauitidarsanam- An object of looking
4. Dṛṣṭiḥdarsanam -Inclusive of an instrument, locus and object is darsana.

Darśana- Śāstra is a system of scientific thought which helps to understand the meaning of life. Understand the meaning of life means transforming our life from the coding stage to the decoding stage. The coding stage means in this universe, and we are suffering from various kinds of pain. We are fastened with multiple types of ignorance, impurities, and bondages but in decoding stage we will be free from all distress, ignorance, and contaminants. Indian Philosophy transforms

human beings from coding stage to decoding stage for getting sustainable happiness and real bliss. Whereas the literary meaning of western philosophy is the love of wisdom, their Indian philosophy is the life of learning and life centric. That is why Indian philosophy has become an influential discipline of the holistic discourse of spiritual knowledge for attaining real bliss. Indian philosophy is not only a branch of the study for getting the knowledge only, but also it is a way of life through which human beings perform their duty. Indian philosophy is not only a source of the holistic discourse of knowledge, but it is also a source of liberation. Magnificently, Indian philosophy deals with both pieces of knowledge as well as spirituality. Therefore, Indian philosophy is treated as a religious philosophy. Western philosophy does not deal with spiritual realisation, meditation, liberation, salvation in a magnificent manner. Thus, religion is separated from the philosophy of the west. Religion is a failure to become a part of Western philosophy.

Lacunas of Western philosophy are absent in Indian philosophy. Indian philosophy deals with knowledge in such a way so that knowledge could be grasped by the knower forever, which must be reflected in his behavior. Knowledge becomes a quality of knower prompts a cause of all kinds of behaviors. Hence, significant branches of Indian philosophy have become religion as well, viz. *Buddhist* philosophy has become Buddha religion, *Jaina* philosophy has become *Jaina* religion, *Vedānta* philosophy has become a *Vedānta* religion, *Śaiva* philosophy has become a *Śaiva* religion. These are peculiar qualities of Indian philosophy imparting knowledge and joy in such a way that people could get two things, knowledge and liberation by one instrument. Indian philosophy does not bifurcate religion from the knowledge. It treats that knowledge itself as a religion that the intellectuals must bear. Therefore, Indian philosophy pervades Indian intellectual traditions, culture, and way of life in the form of a love of wisdom, the life of learning, and so on.

*Jaina* philosophy is realistic philosophy that deals with knowledge of the world based on relativity and probability. *Jaina's* philosophy is very much relevant in the contemporary world to investigate the truth. As per Jaina's philosophy, the fact is based on relative circumstances. Based on circumstances, the truth can be discovered by applying tools which are inclusively named *Syādvāda*. *Syādvāda* is not only applicable to find the truth, but it is also applicable in all dimensions of human life. It's a great invention, invented by *Jaina* school of thoughts which has

delimited materialistic, psychic and spiritual world. It is forced to rethink synonyms of each entityby the formula. 'Ananta Dharmatkam Vastu' which reveals a new property of the same entity. The Reality of the world can be known partially only based on seven analytica linstruments. Seven analytical tools are called *Saptabhaṅgīnaya* which is a device of probability to get relative true facts of the world. These actual facts are neither totally eternal nor totally non-eternal but partially eternal.

*Jaina* philosophical school believes the existence of body and Soul differently, where Soul is expounded with the body. According to *Jaina* philosophy, 24 Tīrthaṅkara steaches one by one about the fundamental theory of the universe, which is how to be free from worldly pain and achieve the ultimate Reality. *Jaina* philosophy is also divided into two schools- *Digambara* and Śvetāmbara. According to Sanskrit grammar *Digambara* means sky-clad, the practitioner who does not wear clothes while practicing monastery.[1] *Śvetāmbara* means white-clad, who used to wear white clothes while practicing monastery.[2] Although both are included under the practitioners of *Jaina* philosophy, but their style of practice is different; some principles over from foreign. Even the sculpture of the temples is also other.

*Tattvārthasūtra* is first *Jaina* scripture written in the Sanskrit language by *Ācāraya Umāsvāmī*. The literary meaning of *Tattvārtha-sūtra* is the nature of Reality, where tattva means 'reality and *artha* means 'meaning' and *sūtra* means the meaning of the Reality presented in formula style. In other words, we could say that 'coded meaning of reality is called *Tattvārthasūtra*. '*Sūtra* can be defined as statements containing very few words, free from ambiguity, concise, devoid of extravagance, meaningful and far-reaching in its implications'.[3]

In this text, every *sūtra* composed by Umāsvāmī is very easy, and he maintains the continuity of every *sūtra* very nicely where we can understand the actual fact and meaning in this text very easily. The full text is divided into ten chapters. This text is perfect for beginners and as well as for the learners. When a writer writes a reader, they should

---

1. दिक्शून्यमम्बरं यस्य -Vacaspatyam
2. श्वेतम्बरं यस्य- Vacaspatyam
3. अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम्।
   अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रकृतो विदुः।। - *Sādhanā Parasar, Kāvyamīmāṁsa of Rājaśekhara*, p& 27.

follow four steps which are famous as *Anubandhajñāna*[1],which means what induces to take up the study of the book. These four steps are- *Adhikārin, Viṣaya, Sambandha, Prayojana*. These four steps are applicable for both readers and writers. Here, *adhikar* in means who is qualified to take up this journey.[2] Is the reader qualified to understand this text, or is the writer allowed to write the text? Qualified means who are interested in taking up this journey. *Viṣaya* means topic, what topic the writer will discuss in his book, or the reader is going to read.[3] *Sambandha* means relation, the relation between the *adhikārin* and *viṣaya*.[4] *Prayojana* means purpose;[5] what is the purpose to write the book or read the book? We can find various purposes for writers like fame, money, etc,[6] and for readers to gain knowledge. But what should be the ultimate purpose for both-its *Mokṣa*, the ultimate Reality or happiness of life. Umāsvāmī discussed about how to get this ultimate Reality that is *Mokṣa*, in his Tattvārthasūtra.

Although Tattvārthsūtra is accepted equally by *Śvetāmbara* school of thoughts and *Digāmbara* school of studies, both *Jaina* schools respect *Tattvārthasūtra* and write series of commentaries and sub commentaries as per their philosophical systems. But this text is the most worshipped by *Digāmbara* intellectuals.

---

1. "अनु स्वाज्ञानात् अनन्तरं वध्नन्ति शास्त्रे ग्रन्थे वा आसज्जयन्ति प्रवर्तयन्ति ये ते अनुबन्धाः" - *Vipadbhañjan pāl, Vedāntasāra*, Vol-1, P-23.
2. "अधिकारी तु विधिवदधीतवेदवेदाङ्गत्वेनापाततौधिगताखिलवेदार्थौस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा काम्यनिषिद्धवर्जनपुरःसरं नित्यनैमित्तिकप्रायश्चित्तोपासनानुष्ठानेन निर्गतनिखिलकल्मषतया नितान्त निर्मलस्वान्तः साधनचतुष्टयसम्पन्नः प्रमाता।" -*Vipadbhañjan pāl, Vedāntasāra,* Vol-1, P-25.
3. विषयो जीवब्रह्मैक्यं शुद्धचैतन्यं प्रमेयं तत्रैव वेदान्तानां तात्पर्यात्।" -*Vipadbhañjan pāl, Vedāntasāra*, Vol-1, P-55.
4. "सम्बन्धस्तु तदैक्यप्रमेयस्य तत्प्रतिपादकोपनिषत्प्रमाणस्य च बोध्यबोधकभावः।" -*Vipadbhanjañ pāl, Vedāntasāra*, Vol-1 P-60.
5. "प्रयोजनं तु तदैक्यप्रमेयगताज्ञाननिवृत्तिः स्वस्वरूपानन्दावाप्तिश्च तरति शोकमात्मवित् इत्यादिश्रुतेः ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति इत्यादि श्रुतेश्च।" -*Vipadbhañjan pāl, Vedāntasāra,* Vol-1, P-62.
6. "काव्यं यशसैर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।" -*Āchārya Viśweśwara Sidhāanta siromaṇi, Kāvyaprakāśaḥ, Kārika* - 1.2

We should reach our goal through three steps: *Samyak Darśana*-Right faith, *Samyak Jñāna*-Right knowledge, and *Samyak Cāritra*-Right conduct.[1] These three steps constitute the path to liberation. Right faith is the first step for starting the spiritual journey-belief in substances as certained as they are in the right faith.[2] Good faith means understanding the whole world through the right perspective, consists of believing in nature through right faith. Practitioners can achieve the good faith through the seeking of truth. Achieving the right faith is not only physical action, but mental action too. Practitioners need both psychological and physical activity. This right faith is attained by intuition or by the acquisition of knowledge.[3] Naturally originated right faith is called Nisargaja-samyak-darsana, and preachy originated right faith is called Adhigamaja-samyak-darśana. Disaffection with attached action is an internal cause of both Nisargaja-samyak-darśana and Adhigamaja-samyak-darśana. Good faith and proper knowledge both lead to the right conduct. Right knowledge is nothing but an absence of ignorance. One's good faith has been originated, then it removes ignorance, where proper knowledge takes its own existence in the place of ignorance. Therefore, good faith has given first preference for attaining liberation. Right faith is exacting with seven tattvas- Jīva, ajīva, āsrava, bandha, samvara, nirjarā, Mokṣa. The Soul, non-soul, influx, bondage, stoppage, gradual dissociation, and liberation.[4] These are the ontology of Jaina philosophy which must be known by means of knowing for attaining liberation. The Conscious is *Jīva*. The consciousness is Ajiva which is classified into five categories: pudgala, Dharma, adharma, and time. An entrance gate of Karmais asrava. The mutual connection of Soul and Karma is called bandha. Prohibition of asrava is samvara. The demolition of one part of Karma is nirjara. Destruction of all types of Karma is called Mokṣa. Mokṣa is the last entity but supreme goal of jiva. Therefore,

---

1. "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः"- Paṇdita A. Śāntirāja Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 1.1
2. "तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यगदर्शनम्"- Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sātra, Sātra no - 1.2.
3. "तन्निसर्गादधिगमाद्वा"- Paṇdita A. Śāntirāja Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 1.3.
4. "जीवाजीवास्त्रवबन्धनिर्जरामोक्षास्तत्तम्"- Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 1.4.

Mokṣa is considered theprevious entity and jīva considered the first entity in the listing of ontology. These seven entities are installed in four ways- name, representation, substance, and actual state.[1] The seven entities are known by epistemology which is classified into two *Pramaṇas* and *Naya. Pramaṇa* is the means of holistic knowledge of entities. *Naya* is the means of partial knowledge of entities. *Pramaṇa* is divided into two 1. *Svārthapramāṇa* 2. *Parārthapramāṇa*. *Svārthapramāṇa* is a form of knowledge generated by the knower and responsible for imparting knowledge to the knower himself. *Parārthapramāṇa* is a verbal testimony form of knowledge that is the means of convincing others. Hence, there are five categories of knowledge -1. *Matijñāna* 2. *Śrutijñāna* 3. *Avadhijñāna* 4. *Manaḥ-paryayajñāna* 5. *Kevalajñāna*. Except for *Śrutijñāna* all types of *jñāna* are the form of *Svārthapramāṇa*. *Srutijñāna* has bothforms *Svārthapramāṇa* and *Parārthapramāṇa*. Knowledge form of *Śrutijñāna* is *Svārthapramāṇa* and verbal testimony form of *Srutijñāna* is *Parārthapramāṇa*. Inclusive result of genuine faith, fundamental knowledge, and actual conduct leads to attaining *Mokṣa*.

*Mokṣa* is the ultimate goal of life. A person can be free from all pain and get ultimate Reality through achieving *Mokṣa*. The practitioner has to overcome both, physicaland mental distractions to accomplish this ultimate happiness. He should have to be concerted and being ready for this. *Mokṣa* is salvation of the Soul from this universe. Salvation of Soul from the bondage of karmas. Now the question is what kind of bondage and what kind of Karma is referred to here? *Jaina* schools of philosophy believe that Karma does not depend on any moral administrator of this world. Karma works by itself without needing any divided agency. This system does not trace the origin of Karma in the Vedas as Hinduism does. Jainism believes that the doer of the action, i.e., self or *jīva* is permanent and beyond production and destruction in its essence. The result of Karma does not perish before its doer coming to experience it. The doer of action gets the result of his action sooner or later. The Jainas hold that man is wholly responsible for his birth, death, and suffering. Whatever he gets is determined by his past deeds. The doer of good receives a good result, and the doer of evil gets a

---

1. "नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यास"– Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvarth Sūtra, Sūtra no - 1.5.

terrible outcome. Misbelief and lack of gain are caused by faith deluding and obstructive karmas.[1]

Wrong beliefs, non-abstinence, negligence, passions, and activities are the causes of bondage.[2] In this respect, Jainism agrees with Buddhism, *Sāṅkhya*, and Vedānta. The idea ofthe bondage of the Soul takes place as soon as it has a terrible disposition, and the material bondage takes place when there is an actual influx into the Soul. Karma particles pernitrate into the Soul and get accumulated in it according to good and bad deeds. The Soul in its intrinsic nature, the Jaina believes, possesses Infinite faith-Anantadarāana, Infinite knowledge-Anantajñāna, Infinite bliss- Anantasukha, and Infinite power- Anantavārya. On their account, all the souls from the lowest to the highest possess consciousness, but the degrees of their consciousness alter according to the obstacles of Karma. Jainism, like Buddhism, does not admit action without agency and transmigration of saṅskaras without transmigrating Soul.

The individual self attracts particles of matter which are free to turn into Karma, as the self-actuated by passions[3] is counted as bondage. Bondage is of four kinds according to the nature of *Karma*, duration of Karma, the fruition of Karma, and the number of space-points of Karma.[4] Nature of Karma means what characteristic of Karma will be inhibited. So mainly nature of Karma deals with the element of Karma. How long the duration of Karma stays with the Soul that is the duration of Karma. When Karma is ready to produce, the result is the fruition of Karma. Quantity of Karma means how many karmic practices will be attended to the Soul. The type-bondage is of eight kinds, knowledge obscuring, perception-obscuring, feeling-producing, deluding, life-determining, name-determining (physique-making), status-determining, and obstructive karmas. The karmic molecules of infinity times infinity space-point

---

1. "दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ"- Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 9.14.
2. "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः" -Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 8.1.
3. "सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः"। Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 8.2.
4. "प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः" -Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 8.3.

always pervade in a subtle form the entire space-point for every Soul in every birth. The Soul absorbs those because of its activity.[1] The excellent variety of feeling-producing karmas, and the optimistic life, name, and status-determining karmas constitute merit, called as *puṇya*.[2] The remaining varieties of Karma constitute demerit.[3] Some scriptures define *puṇya* (virtue) and pāpa (sin) as separate tattvas, while others include them in asrava. In reality, puṇya and pāpa are the results of āsrava. Stoppages are affected by their control, carefulness, virtue, contemplation, conquest by endurance, and conduct.[4] Curbing activity well is control or *gupti*,[5] which does not create any conflict in the results but preventing the vergency of the mind, words, and actions does not infuse the deeds done for its purpose. This secret has three distinctions- Kāyagupti, Vacangupti, and Mana gupti. Although the guardian of the occult inhibits the tendency of the mind, words, and deed, but for the sake of diet, or for the vihara and for defecation, etc., it must have a tendency. Walking, speech, eating, lifting and laying down, and depositing waste products constitute the fivefold regulation of activities[6] which consist the *Dharma*. What is *Dharma* now? We can find several definitions of it in various sastric texts. According to *Tattvārthasūtra*, *Dharma* is the duty of supreme forbearance, modesty, straight for wardness, purity, truthfulness, self-restraint, austerity, and renunciation, non-attachment, and celibacy.[7] The origin of anger, it is the pardon not to have deficiencies in the results. Superior caste, clan, form, science, etc., are Mardava. Lack of maliciousness of mind, speech, and action is Ārjava. Extreme lack of

---

1. "नामप्रत्यया: सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिता: सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशा:" - Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no & 8.24.
2. "सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 8.25.
3. "अतौन्यत्पापम्" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 8.26.
4. "स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रै:" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.3.
5. "सम्यग्योगनिग्रह गुप्ति:" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.4.
6. "ईर्षाभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गा: समितय:" - Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.5.
7. "उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्म:" -Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.6.

greed is defecation. Greed isof four types- the greed of life, the greed of the sick, the greed of the senses, and the greed of the material. Lack of all this greed is defecation religion. Speaking beautiful words among gentlemen is true religion. To abandon conscious and unconscious penetration is renunciation. So, this practitioner has to be free from the bondage of *Karma*. But how to free from this bondage of *Karma*? Knowledge-covering karmas cause great learning and ignorance.[1] So actual knowledge is essential. Only fundamental knowledge can free practitioners from the bondage of *Karma*, and then they can start their meditational journey through internal and external austerities. *Svādhyāya* is very much important for them. Here *svādhyāya* means teaching, questioning, reflection, recitation, and preaching.[2] After gaining thefundamental knowledge through *svādhyāya*, one person can start to control his mind through meditation. Concentrating on one particular thing is meditation.[3] Mediation is a natural process of focusing. Mediation is a continuous perceiving process of one thing. Perception of one thing in mediation is based on limited time duration but due to extension of perceiving thing converts into a feeling of enjoyment. The painful, cruel, virtuous, and pure are the four kinds of meditation.[4] Righteous and pure meditation is the cause of liberation.[5] Righteous and pure meditation breaks the cycle of *karma* theory and makes the Soul free from the bondage, impurities, and ignorance. Through meditation, the Soul of the human being disconnects with worldly attachments and comes and takes natural form by expanding consciousness in which two kinds of meditation arise the omniscient.[6]

---

1. "ज्ञानावरणे प्रज्ञौज्ञाने" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 9.13.
2. "वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.24.
3. "उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मूहुर्तात्"– Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 9.27.
4. "आर्तरोद्रौधर्म्यशुक्लानि" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.28.
5. "परे मोक्षहेतू" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvarth Sūtra, Sūtra no - 9.29.
6. "परे केवलिनः" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 9.38.

Actual knowledge is attained on the destruction of deluding karmas and expertise- and perception-covering karmas and obstructive karmas.[1] Only decay of enlightenment, decay of visible knowledge, and simultaneous disintegration of the inner Karma are revealed. Mainly the organism lives in the property named kṣīna kaṣāya till the end of the first deeds of decaying the deeds. At the end, it gets knowledge only by destroying the understanding, visualization and inner work together. Owing to the absence of the cause of bondage and with the functioning of the dissociation of karmas is salvation.[2] So due to lack of reasons like appearance, new karma is stopped, and the karmas tied earlier by austerity, etc, are destroyed. Therefore, the Soul is released from all rituals. *Mokṣa* comes through the absence of other knowledge rather than infinite faith, infinite wisdom, infinite perception, and infinite perfection, and the bondage of *Karma* also stops here,[3] then the Soul free from all attachment.[4] The free Soulalso has several steps such as region, time, state, sign, type of that, conduct, self-enlightenment, enlightened by others, knowledge, stature, interval, number, and numerical comparison.[5] At the last stage, the Soul becomes a free soul, which can achieve eternal happiness in the form of absolute bliss.

Thus, *Mokṣa* is an essential concept of all philosophical schools but different ways for different schools to achieve this *Mokṣa*. *Jaina's* philosophy shows us the easiest way to reach this ultimate goal, where everything is painless, only sustainablebliss exists. *Tattvārthasūtra* is the best book to get the insight of Mokṣa and provides a method of knowing as it is knowledge of referents. The concrete formulae of Mokṣa are to receive *Kevala-Jñāna* (*Omniscience*). *Kevala-Jñāna* itself is treated as *Mokṣa* in *Jaina* philosophy. *Kevala-Jñāna* can be received by the

---

1. "मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 10.1.
2. "बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 10.2.
3. "अन्यत्रकेवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धतेभ्यः" –Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 10.4.
4. "पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च" – Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sutra no - 10.6.
5. "क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानवगाहनान्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः" – Paṇdita A, Śāntirājā Śāstri, The Tattvārth Sūtra, Sūtra no - 10.9

demolition of the attached action (*Moha-Karma*). Demolition of united action is the cause of *Mokṣa*. The relationship between attached activity and *Mokṣa* is a cause-and-effect relationship. Whereas is united action is treated as the cause,the effect of that cause is *Mokṣa* (*Kevala-Jñāna*).Thus, Jaina's philosophy is focused on knowledge only. Attaining ultimate knowledge is real happiness. In this way, *Jaina* philosophy is a Knowledge centric philosophy that can evolve real bliss.

**Bibliography**

1. The Tattvārth Sūtra, Paṇdita A. Śāntirājā Śāstri, Oriental library publication, University of Mysore, Mysore, Karnataka.
2. Vedāntasāra, Vipadbhañjan Pāl, Sanskrit Pustaka Bhāṇdāra, Kolkata.
3. Vacaspatyam, Sanskrit E books.
4. Kāvyamīmāṁsa of Rājaśekhara, Sādhanā Parāśar, Jayalakshmi Indological Book House, New Delhi.
5. Kāvyaprakāśaḥ, Ācārya Viśweśwara Siddhāntaśiromaṇi, 7th edition, Gyanamandal limited, Varanasi, Uttar Pradesh.

✦✦✦

# Authentic Search in Fasting, Feasting and A Thousand Splendid Suns

**Aiswarya B***

**Dr. T.S. Ramesh****

**Abstract:** Existentialism in literature emphasizes the idea of freedom, action, and decisions taken for survival. The trauma woman faces for survival rather than living is like a cherry on the cake, where most of the women fail to get one. Fasting, Feasting by Anita Desai and A Thousand Splendid Suns by Khaled Hosseini depict a woman's life and her survival. The existential crisis of Desai's and Hosseini's female characters reflects the exact sufferings of women in a hegemonic patriarchal society. Fast and feasting is the symbolic representation of food, where Desai compares and contrasts the two families in a different country with an akin mentality. Fasting typically means starving for a day and feasting for another day. Similarly, A Thousand splendid suns also represent a different kind of woman, who still shines and survives brightly amidst the dominance and traditional bound society. This paper highlights the life of Uma, Anamika, Mariam, and Laila where they starve for freedom to survive.

**Keywords:** Self, Existence, Survival, Domination, Freedom, Individual

Existentialism starts with an individual and it is a set of philosophical systems containing free will, choice, and freedom. Rodger and Thompson, in their *Understanding existentialism*, state that it is a

---

* Ph.D. Research Scholar (FT), PG & Research Department of English National College (Autonomous) Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN

** Associate Professor and Research Supervisor, PG & Research Department of English, National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN

life desire for shaping one's future is observed in the following lines:

> Existentialism is about the experiences of living as a human being. It is about engaging with the world and dealing with two features of life- the situation in which we find ourselves and the constant desire to go beyond ourselves, planning and shaping our future. (Rodger & Thompson, 10)

Existentialism means dealing with the challenges of life and fighting with them. An individual is threatened by societal norms when he/she is thrown into the world to fit in. Survival is the basic existential crisis, where the individual strives to find meaning, purpose, or value. It focuses mainly on the philosophical tradition of existentialism. Existentialist has a fear of fitting into the world's expectation and anticipation of the society, results in anxiety, depression, stress, and personality changes. Negative emotions in him/her can lead to deep agony, self-silencing, and frustration. Katie Leikam, a therapist, who has been working on anxiety issues and gender identity,point out the catastrophe as people can have an existential crisis when they start to wonder what life means, and what their purpose to life as a whole. *Fast, Feasting* by Anita Desai and *A Thousand Splendid Suns* by Khaled Hosseini depict women's lives and their existential crisis, reflecting their sufferings in the patriarchal society. Desai divulges the survival aspects through Uma and Anamika and Hosseini through Mariam and Laila. The existential crux of Desai's and Hosseini's characters experiences a different and arduous situation where they hanker for freedom and success in their life. There are four types of calamity a. Crisis of freedom and responsibility b. Crisis of Death and Mortality c. crisis of isolation and connectedness d. crisis of emotion, experiences and embodiment e. Meaning and meaningless crisis.

Generally, Indian families portray women as submissive creatures to men and their families. Uma is bounded by Indian traditional norms, where women are restricted to go out and confined to numerous gender roles. Desai describes the birth of a female child as a curse and a burden to the family, "The day she was born was a cursed day" (Desai, 36). women's education is banned and their marriage is chosen over education. Without pedagogical teaching, survival gets harder for women where they lack the confidence and courage to face the world. Education, freedom, and opinion are prioritized for men and rejected for women. Uma's parents decide her destiny by teaching all the household activities

and feminine skills to please men. Being neglected and confined Uma tries to get away from home for her survival. Desai highlights the survival existence through Uma in the following lines:

> A career. Leaving home. Living alone. These trembling, secret possibilities now entered Uma's mind-as Mama would have pointed out had she known-whenever Uma was idle... But Uma could not visualize escape in the form of a career. What was a career? She had no idea. (Desai, 167)

Uma is viewed to be a loser in her family because she is a woman. Arun, her brother, gains much respect in their family because he is a boy. Desai highlights this gender difference as, "girls in the family were not given sweets, nuts, good things to eat. If something special had been bought in the market, it was given to the boys in the family" (Desai, 12). A Patrilocal society, gender inequality is higher where married lady is expected to reside with her husband parents. In such scenario, Uma's survival is questioned, when she is forced to live with her in-laws. Charles Darwin's theory of evolution is based on the theory of survival for the fittest. The individual in a community, population are more likely to survive if they are fit for the world." It is becoming abundantly clear that æsurvival of the fittest' only works for a few and not for long enough" (Darwin, 94). Anamika, Uma's cousin, also caught under the same patriarchal net who hoped for a free life.Though, Anamika has been married for twenty-five years she couldn't survive under the patriarchal dominance of her husband, which forced her to commit suicide. Desai pointed out that marriage is also a burden to Anamika in the following lines,

> She had been married for twenty-five years, the twenty-five that Uma had not. Now she is dead, a jar of grey ashes. Uma, clasping her knees, can feel that she is still flesh, not ashes. But she feels like ashùcolorlessness, motionless ash. (Desai, 89)

Her cousin's death affects Uma's mental health and left a huge impact on her life. In India, women are forced to live with their in-laws and their opinion is often muted. Male-female imbalance is a great threat to women's survival in a hegemonic patriarchal society. Crisis of isolation and connectedness, the crisis of emotion, experiences, and embodiment are the two factors Uma faces when she lost her loved one Anamika.

The self-concept is an important idea in both social and humanistic psychology. Existential self is the most fundamental concept, "being a self of existing separate and distinct from others and the awareness of the constancy of the self" (Bee, 1992). The self-concept refers to how someone thinks, evaluates, and perceives themselves. Baumeister defines the self-concept as "The individual belief about himself or herself, including the person's attributes and who and what the self is" (Baumeister, 1999). Mariam in *A Thousand Splendid Sunsis* the illegitimate daughter of the most successful businessmen in the city of Herat, Jalil. Her individuality and her self-worth are rejected and buried under the prejudice of traditional gender roles. Being married to a narcist husband, Rasheed, she has to clean the house and satisfy his sexual urges. Mariam sticks to the words of her tutor who has given her hope and courage to survive is seen in the following lines, "You can summon them in your time of need, and they won't fail you. God's word will never betray you, my girl"(Hosseini, 17). Freedom is the basic need for women to survive. Simon de Beauvoir in her *The Ethics of Ambiguity*, points out the freedom of our situation has limits in the following lines,

> freedom which is interested only in denying freedom must be denied-to be free is not to have the power to do anything you like; it is to be able to surpass the given toward an open future; the existence of others as freedom defines my situation and is even the condition of my freedom. I am oppressed if I am thrown into prison, but not if I am kept from throwing my neighbour into prison. (Beauvoir, 89)

Women have a strong faith in God, the invisible protector. Mariam believes God has a reason for everything and he is the creator of the situation who puts human beings to the biggest test of survival. Believing in almighty is the survival strategy for women and they embrace the silent sufferings without complaining. This is highlighted in the following lines, "Behind every trial and sorrow that He makes us shoulder, God has a reason" (Hosseini, 38). Mariam thought her life is meaningless where her emotions and her voice has been rejected by Rasheed. The thoughts about the meaning of life and the purpose may weigh heavily on oneself leading to racing thoughts called existential obsessive-compulsive disorder. Mariam involves in the constant and repetitive thinking about the question of survival under the crux of Rasheed which cannot be answered leads her to depression. Rasheed's violent

nature portrays the hegemonic dominance towards women who threaten them to death in the following lines, "But I'm a different breed of man, Mariam. Where I come from, one wrong look, one improper word, and blood is spilled" (Hosseini, 69). Simon de Beauvoir's basic aspect of marriage, states that men are the ultimate source of power for their survival, whereas women feel inferior and controlled by them. This is highlighted in the following lines, "The principle of marriage is obscene...spontaneous impulse into rights and duties...an instrumental, thus degrading...that he is accomplishing a duty, and the wife is ashamed to feel delivered to someone who exercises a right over her" (Beauvoir, 465).

This existential OCD also threatens Laila where she happens to share the same roof with Mariam. Though she is educated and knows the survival strategy finds it difficult to cope with Rasheed. Both women felt weak and numb when their life is meaningless and complicated in patriarchal religion-bound traditional notions. Their continuous endurance and hope for surviving are the prominent theme in Hosseini'snovels is highlighted in the following line:

> It wasn't easy tolerating him talking this way to her, to bear his scorn, his ridicule, his insults, his walking past her like she was nothing but a house cat. But after four years of marriage, Mariam saw clearly how much a woman could tolerate when she was afraid. (Hosseini, 25)

Thus, the novel *A Thousand Splendid Suns* portrays human existence through Simon de Beauvoir's desire to love and to be loved. According to Mariam, love is a battlefield of conflicting desire or a graveyard for disappointments. Mariam's endurance of pain and suffering is finally lowered down by killing her husband. According to her, that's a freedom she has given to her soul and to Lailaby thinking of her future in the following lines, "Though there had been moments of beauty in it. Mariam knew that life for the most part had been unkind to her. But as she walked the final twenty paces, she could not help but wish for more of it... Yet as she closed her eyes, it did not regret any longer but a sensation of abundant peace that washed over her." (Hosseini, 65). Desai and Hosseini reflect the existential Crisis of freedom and responsibility, the Crisis of isolation and connectedness, and the crisis of emotion, experiences and, embodiment through their female characters. For women, surviving admit the hostile world is a never-ending existential crisis.

**Work cited:**

1. Baumeister, R. F. (Ed.) (1999). *The self in social psychology*. Philadelphia, PA: Psychology Press (Taylor & Francis).
2. Beauvoir, Simone de. (2015). *The second sex*. Vintage Classics. New York.
3. Beauvoir, Simon de. (1948). *The ethics of ambiguity*. New York, N.Y: Philosophical Library.
4. Bee, H. L. (1992). *The developing child*. London: HarperCollins.
5. Darwin, C. (1859). *On the origin of species by means of natural selection, or, the preservation of favoured races in the struggle for life.* John Murray press. London.
6. Desai, Anita. (1999). *Fasting, Feasting.* Chatto &Windus. London.
7. Hosseini, K. (2007). A thousand splendid suns. Riverhead Books. New York.
8. Rodgers, Nigel. Thompson, Mel. (2010). *Understand Existentialism- Teach Yourself Educational.* John Murray Press. London.
9. https://uggscanadaugg.ca/2020/03/20/existential-crisis-definition/

✦✦✦

# An Ecocentric Approach Todavid Malouf's Fly Away Peter

**Suriya R***

**Dr. T.S. Ramesh****

**Abstract**

Ecocentrism appreciates the uniqueness, the intrinsic value of all living beings. Human beings coexist in the environment. Man is part of the biotic community and is dependent in on the vast resources the Nature blesses. Hence it is man's responsibility to nurture and celebrate the symbiotic relationship with Nature and conserve it as an ethic. On the contrary man tries to find economic value in the entire biotic community. The Anthropocene attitudeof the Homo Sapiens motivates them to territorialise and expand their boundaries. Fly Away Peter by David Malouf is set at the backdrop of World War One. Jim Saddler, the protagonist of the novel is one with a keen aesthetic sense and responsive towards his ecocentric sensibilities. This paper tries to explore the ecocentric views presented in David Malouf's Fly Away Peter.

**Keywords :** *Nature, symbols, Birds, intrinsic values, ecocentric sensibilities.*

"A thing is right when it tends to preserve the integrity, stability, and beauty of the biotic community. It is wrong when it tends otherwise".(Leopold, 224)

The term ecocentrism gained momentum when the concept of 'The Land Ethic' was first propounded by Aldo Leopold. According to

* PhDResearch Scholar (FT) PG & Research Department of English National College (Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN

** Associate Professor and Research Supervisor, PG & Research Department of English, National College(Autonomous), Affiliated to Bharathidasan University, Tiruchirappalli, TN

the concept of ecology,the land is a community. Therefore, one has to love and respect it as an ethic. Every living thing on this earth has an 'intrinsic value'. Hence it is crucial to turn towards Nature, cherish and conserve it. Fly Away Peter by David Malouf is set at the backdrop of World War One. Jim Saddler, thecentral character in the novel shows interest and affinity towards Nature, especially birds. Having appointed as a birdwatcher by Ashley Crowther in his farmland in Australia, Jim finds joy and happiness. This is reflected in his enthusiasm identifying, making a proper record of the birds in the coastal swampland, and the fascination he exhibits for the migratory pattern of the birds. They both wish the swampland should soon become a 'sanctuary'. Ashley Crowther makes use of Jim's knowledge.

> There lay in Jim's knowledge of every blade of grass and drop of water in the swamp, of every bird's foot that was set down there; is in his having a vision of the place and the power to give that vision breath; in his having, most of all, the names for things and in that way possessing them. (Malouf, 7)

Imogen Harcourt, one of the main characters in the novel is a Nature photographer. Shecaptures the image of Jim, observing the beauty of the Sandpiper that visited the swampland in her camera. Jim befriends her. Man's permanency in this world is ensured though the memories left behind. Jim gives permanency to the birds through the 'Book' in which he is recording all its details.

> It was giving the creature through its name a permanent place in the world as Miss Harcourt did through pictures. The names were magical.They had behind them, each one, in a way that still seemed mysterious to him, as it had when he first learned to say them over in his head, both the real bird he had sighted, with its peculiar markings and its individual cry and the species with all its characteristics of diet, habits, preference for this or that habitat, kind of nest, number of eggs, etc.(Malouf, 44)

Once when Jim witnesses the presence of 'Dunlin' in Australia he was astonished because they migrate and "used to come in thousands back home, all along the shore and in the marshes" (Malouf 47) breaking the Boundaries.The migratory pattern of the birds is in consonance with the travel of the Australian soldiers to foreign lands to participate in the war.As the novel progress, circumstances force Jim to enlist in World

War One. In the war-field Jim witnesses a lot of change. The same things which he had seen earlier add new layers of meaning.

According to Jim birds represent a sense of freedom. When he is in the war-field, he looks at the sky and notices many winged birds. They are unaffected by the violence of war. They never show demarcation or boundaries.Their unlimited freedom is a complete contrast to man's foolishness who create demarcation and fight for boundaries.Birds migrate to another country in search of food and shelter. Whereas the Australian soldiers are bound to travel to a foreign land to safeguard theirColonisers boundaries.They clearly knew that their travel is insecure and they may lose their life in the process.

Jim Saddler isa person with strong ecocentricsensibilities. He shows discontent towards technical advancements.It is conveyed in the beginning of the novel.When he looks at the biplane, he feels that it had encroached the space of the birds.He articulates "the lack of purpose in its appearance and disappearance at the tree line" (Malouf 2).He is tired of its presence and views it as a noisy disturbance.

According to Jim, "the earth was man's sphere and the air was for the birds" (Malouf 50). Thus,there is a conflict between the natural world and technical advancements which the biplane represents. Jim, through Ashley Crowther gets an opportunity to fly in Bert's Biplane. During his flight in the biplane he gets the real picture of what he has already seen in his imagination, perhaps he had, in some part of himself, taken on the nature of the bird.

Man's greed drives away his ethical concern towards Nature. Instead of using scientific inventions for the growth and well-being of the Biotic community, man is spearheaded towards destroying the same for economic gains. The biplane from being a spirit of adventure has changed its natureand has become a 'fighting arm' 'to drop bombs' in the war. Man's Anthropocene attitude, his quest to conquer the world make him to 'war' with nations and thus disturbs and exploits Nature.

The concept of Ecotheologyraises concern about the Anthropocentric idea thatplaces man at the Centre, as the Crown of God's creation. Ecotheologistsare of the view that if man is Supreme amongst all His creations then he is equally responsible to Conserve the same. Aldo Leopold ascertains this view in his work "A Sand County Almanac: Sketches Here and There", as 'Individual thinkers since the

days of Ezekiel and Isaiah have asserted that "dispoliation of land is not only inexpedient but wrong" (203).Man being a member of the biotic community has to conserve and maintain the symbiotic relationship and coexist in the environment. God purpose behind making human beings Supreme is thathumans should appreciate the truth and beauty of His Creations. Man as God's representative should use his morality and spirituality to nurture and appreciate God's Gift.This concept of ecology is mentioned in The Good Reads Bible

> Then God said, 'And now we will make human beings; they will be like us and resemble us. They will have power over the fish, the birds and all animals, domestic and wild, large and small.' So God created human beings, making them to be like himself. He created them male and female, blessed them, and said,Have many children, so that your descendants will live all over the earth and bring it under control. I am putting you in charge of the fish, the birds and all the wild animals.(Genesis 1:26-28)

Afterwitnessing lots of death and catastrophic events in the war-field, Jim's aesthetic sense gradually begin to disappear.He no longer finds happiness looking into the Sky or the birds.His belief that War is something Extraordinary and only very fewgets affected due to itsdevastating changes is vanished. Jim understands the crude reality, the incongruities of war are a part of human existence.Jimwitnesses an old man Winter sowing. He relates the act of the old man as a Symbol which reflects the relationship between Man and Land. This brings in hope and once again becomes emotionally resilient. The continuity of life despite the changing situations is beautifully depicted through the old man working with his hoe in the fields. In the words of Aldo Leopold,

> Land, then, is not nearly soil; it is a fountain of energy flowing through a circuit of soils, plants and animals.Food chains are the living channels which conduct energy upward; death and decay return it to the soil. The circuit is not closed; some energy is dissipated in decay, some is added by absorption from the air, some is stored in soils, peats, and long-lived forest; but it is a sustained circuit; like a slowly augmented revolving fund of life. (216)

**Workscited**

1. Barry, Peter. *Beginning Theory: An Introduction to Literary and Cultural Theory.* New Delhi, 2007.
2. *Good News Bible.* St. Pauls.1979.
3. Leopold, Aldo. *A Sand County Almanac: And Sketches Here and There*. Oxford University Press, (1989).
4. Malouf, David. *Fly Away Peter.* New York, Random House, 1982.
5. Randall, Don. *David Malouf.* Manchester University Press, 2007.
6. *The Bible: New International Version*. Michigan; Zondervan. 2005.

✦✦✦

Shri Ranbir Campus, Jammu

**CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY**
(Established by an Act of Parliament)
**SHRI RANBIR CAMPUS**
Kot-Bhalwal, Jammu - 181122
Jammu & Kashmir
Ph.: 0191-2623090

UGC CARELISTED
ISSN : 2248-9495
Vol. - XIX, 2022-23

# जयन्ती

# JAYANTĪ

सान्दर्भिक-पुनरीक्षितवार्षिकशोधपत्रिका

Refereed and Peer Reviewed Annual Research Journal

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
जयपुरपरिसरः, जयपुरम्

Vol. - XIX, 2022-23

UGC CARELISTED
ISSN : 2248-9495

# जयन्ती

# JAYANTĪ

## नवदशं पुष्पम्

सान्दर्भिक-पुनरीक्षितवार्षिकशोधपत्रिका

**Refereed and Peer Reviewed Annual Research Journal**

**2022-23**

❊ प्रधानसम्पादकः ❊

प्रो. सुदेशकुमारशर्मा

❊ सम्पादकः ❊

प्रो. कुलदीपशर्मा

❊ सहसम्पादकः ❊

डॉ. पवनव्यासः

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

जयपुरपरिसरः

त्रिवेणीनगरम्, गोपालपुरा-बाईपास, जयपुरम्-302 018

दूरभाषाङ्कः 0141-2761115 (कार्यालयस्य)

अणुसङ्केतः (ई-मेल) : jayantijournal@gmail.com

वेबसाइट : www.csu-jaipur.edu.in

**प्रो. श्रीनिवासः वरखेड़ी**

कुलपतिः

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, नवदेहली

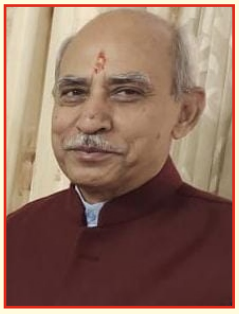

**प्रो. सुदेशकुमारशर्मा**

प्रधानसम्पादकः

निदेशकः, केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः, जयपुरपरिसरः, जयपुरम्

**प्रो. कुलदीपशर्मा**

सम्पादकः

आचार्यः, शिक्षाशास्त्रविद्याशाखा

**डॉ. पवनव्यासः**

सहसम्पादकः

सहायकाचार्यः, दर्शनविद्याशाखा

प्रो. श्रीनिवास वरखेड़ी
कुलपतिः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः
संसदः अधिनियमेन स्थापितः
(प्राक्तनं राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्,
भारतसर्वकारस्य शिक्षामन्त्रालयाधीनम्)

Prof. Shrinivasa Varakhedi
Vice-Chancellor
Central Sanskrit University
Established by an Act of Parliament
(Formerly Rashtriya Sanskrit Sansthan,
Under Ministry of Education, Govt. of India)

# ❊ शुभाशंसनम् ❊

अयि विद्यैकप्रणयाः संस्कृतलोकाः! विषयमिमं भवतां श्रुतिपथे आनयन् सुतरां प्रसीदामि, यन्नैकविद्याप्रसारणनिपुणस्य केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालस्य जयपुरपरिसरो जयन्तीत्यभिधायिनिशोधपत्रिकायाः प्रत्यब्दमिव प्रकाशनं संकल्पयति। गुणोत्कर्षेण एधमानाया अमुष्याः पत्रिकाया नवदशं पुष्पं सत्रेऽस्मिन् लोकमुखम् आनीयते। यत्र अप्रतिमशेमुषीमतां विपश्चितां हिन्दी-आंग्ल-संस्कृतमिति भाषात्रये लिखिताः शोधलेखा भारतीयज्ञानपरम्परायाः प्रायः प्रत्येकं शाखाया मर्म स्पृशन्तस्तद्विषयप्रतिपित्सूनां महते लाभाय कल्पिष्यन्त इति द्रढीयसी मतिर्मे। यस्य अनल्पश्रमेण सारस्वतविधानमिदं मूर्तं जायते, तस्मै सम्पादकगणाय सपरिसरनिदेशकं साधुवादान् प्रयच्छामि। सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम् इति कालिदासीयं वचः स्मरन् महीयन्ताश्च सरस्वत्या वरदपुत्राः कोविदा इत्यभिलषंश्च वाचम् अवसाययामि।

इति शम्

भावत्कः

(प्रो. श्रीनिवासवरखेड़ी)

प्रो. सुदेशकुमारशर्मा
निदेशक
केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
(संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित)
जयपुर परिसर
त्रिवेणी नगर, गोपालपुरा बायपास,
जयपुर-302018 (राजस्थान)

PROF. SUDESH KUMAR SHARMA
Director
CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY
(Established by an Act of Parliament)
JAIPUR CAMPUS
Triveni Nagar, Gopalpura Bypass,
Jaipur-302018 (Rajasthan)

# निदेशकीयम्

**सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्।**
**साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम्।।**

अयि विद्यावैभवविभूषिताः विद्वद्वराः!

अपि कोऽस्ति संस्कृतलोके यो न जानाति यत् सारस्वतरचनासमर्चनारतासु शैक्षिकसंस्थासु सुधीसभ्यानां संस्कृतसाधकानां सदाशासदनमस्ति केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य जयपुरपरिसरः। परिसरस्यास्य वार्षिकी पत्रिका 'जयन्ती'ति सातत्येन प्रकाश्यमाना संस्कृतजगति महान्तं गरिमाणमादधाति। पत्रिकेयं विश्वविद्यालयानुदानायोगेन शैक्षणिकानुसन्धानाय नैतिकतायै च रचितसङ्घसूच्यां (UGC Consortium Academic Research Ethics List) स्थानमलङ्करोति। अमुष्यां पत्रिकायां शोधलेखान् पठित्वा गीर्वाण्यनुरागपरागचञ्चरिकाः ज्ञानपिपासवः ज्ञानामृतं समास्वादयितुं क्षमन्ते। अस्मिन् अङ्के राष्ट्रीयशिक्षानीतौ समर्थितायाः भारतीयज्ञानपरम्परायाः विविधपक्षपुष्पाणां माल्यं निर्माय लोककल्याणाय भारतत्वं प्रकाशयितुं परिसरपत्रिकेयं सर्वथा समुपकारकं विधास्यतीति मे द्रढीयान् विश्वासः। स्वगरिममयीं प्रतिष्ठामनुगच्छन्ती सैषा 'जयन्ती' विद्वन्मनोरञ्जनाय यशोजयमवाप्स्यतीति सदिच्छया शुभावसरेऽस्मिन् लेखकेभ्यः सम्पादकेभ्यश्च भूयांसि शुभाशंसनानि समर्प्य मामकीनां वर्धापनोक्तिमधोलिखितेन लोककल्याणवचसा प्रहिणोमि-

**कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।**
**लोकसङ्ग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।।** - श्रीमद्भगवद्गीता, 3/20

(प्रो. सुदेशकुमारशर्मा)
निदेशक

# ❊ सम्पादकीयम् ❊

मान्याः सुधीवरिष्ठाः! यथाज्ञातं भवतां केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः सर्वदा संस्कृतनिष्ठ-सारस्वतनिधेर्विकासाय निरतो भवति। तदङ्गत्वेन विश्वविद्यालयस्यास्य जयपुरपरिसरो जयन्तीति वार्षिकीं शोधपत्रिकां प्रकाशयति। यत्र अभ्यस्तविविधविद्यानां विदुषां शोधच्छात्राणाञ्च संस्कृताङ्ग्ल-हिन्दीभाषासु शोधलेखाः प्रकाश्यन्ते। पत्रिकाया गुणवत्तां मनसि निधाय एतान् प्राप्तलेखान् विदुषां परिषदेका परीक्षते, तत एव कश्चिल्लेखः पत्रिकायां स्थानं विन्दते। अतो नवाचारमयं गुणात्मकञ्च लेखनं संस्कतभाषायां तदितरभाषासु भवेदिति यत्नमूलं नः। जयन्तीपत्रिकायाः नवदशं पुष्पमिह प्रकाशितं भवतीति हृष्टमना विज्ञापयामि। अस्मिन्नवसरे सहसम्पादकाय धन्यतावचांसि आविष्करोमि। अन्येषाञ्च सहयोगिनां मनसां स्मरणं विदधत् तेषां शिवं कामये। अयं यत्नो लोकानां ज्ञानवर्धकत्वेन मनोमोदाय स्यादिति भगवतीं शारदां प्रार्थये।

# ❊ कुलगीतम् ❊

ज्ञानप्रभां विकिरन् सदा भुवि राजते नवभास्करः।
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
विश्वाद्यसंस्कृतिसेवको निजराष्ट्रगौरवभासकः,
सभ्याभिवन्दित–सत्यविद्यासत्कलासमुपासकः।
वेदाङ्ग–वेद–पुराण–दर्शन–काव्य–शास्त्रसुधाधरः,
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
ज्ञानप्रभां.....

प्राचीन–बोध–परम्परा–संवाहको बुधमण्डितो
नवबोधशोधपरम्परापरिपालनेऽपि च पण्डितः।
विविधाधुनिकसंसाधनैः सज्जः सुरम्यकलेवरः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
ज्ञानप्रभां.....

अज्ञानगाढतमो हरन् समदुर्गुणादि–निरोधकः
प्राचीननव्यविचारसङ्गम मानवत्वविबोधकः।।
योऽनूचानः स नो महानिति घोषपोषणतत्परः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
ज्ञानप्रभां.....

कार्यक्रमैर्विविधैः सदा निजसंस्कृताय समर्पितः
कूपारपादहिमालयास्यः सर्वदिक्षु च चर्चितः।
नानापरिसरो भारते भरते प्रशस्तयशः सरः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
ज्ञानप्रभां.....

नवदृष्टिशक्तिसमूर्जितो नवयोजनापरियोजनो
नवनीतिरीतिसमुन्नतो नवकल्पनारचनाचणः।
नवलोपलब्धिविभासितो गुरुवाग्विलासमनोहरः
केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालय उदात्तगुणाकरः।।
ज्ञानप्रभां.....

(इदं कुलगीतं दरबारी–भैरवी मालकोंस–मियामल्हार–हिण्डोल–लझझोटी–प्रभृतिविविधरागेषु रूपकताले अन्यतालेष्वपि वा गातुं शक्यते। श्रीरामचन्द्रकृपालु भज मन... इतिवत्।)

# * अनुक्रमणिका *


| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | पण्डितराजजगन्नाथस्य अन्योक्तिपरिशीलनम् | डॉ. राजकुमारमिश्रः | 7 |
| 2. | श्रीधराचार्यमते पृथिवीस्वरूपम् | डॉ. अजय कुमार कर | 12 |
| 3. | स्वतन्त्रता आन्दोलने संस्कृतसाहित्यस्य तत्कवीनाञ्च योगदानम् | डॉ. वीरेन्द्र कुमार ठाकुरः | 18 |
| 4. | संस्कृत-पत्रकारिताया: समस्या: समाधानि च | डॉ. सुभाष चन्द्र मीणा | 23 |
| 5. | व्याकरणशास्त्रोक्तं वृत्तिस्वरूपम् | डॉ. गोपीकृष्णन् रघुः | 30 |
| 6. | महाभाष्यदिशा उपपदमतिङ् इति सूत्रस्य विचारः | डॉ. मलयपोडे | 36 |
| 7. | संस्कृतशिक्षायां क्रियात्मकानुसन्धानम् | प्रो. कुलदीपशर्मा | 42 |
| 8. | लोककल्याणार्थं संस्कृतसाहित्यस्यावदानम् | सुपर्णा सेनः<br>प्रो. प्रसूनदत्तसिंहः | 48 |
| 9. | ऋग्वेदप्रातिशाख्ये संज्ञानां समीक्षणम् | झिलिविश्वासः | 56 |
| 10. | प्रदीपोद्द्योतनादिदिशा कर्मप्रवचनीयाः | शुभङ्करसामन्तः | 65 |
| 11. | अलङ्कारशिरोभूषणस्थमङ्गलवादविमर्शः | अभिषेक कुमार | 71 |
| 12. | यज्ञकर्मणि कुण्डनिर्माणपद्धतिः | प्रो. शुभस्मिता मिश्रः | 75 |
| 13. | व्यञ्जनाशक्तिविमर्शः | डॉ. राकेशकुमारजैनः | 83 |
| 14. | डॉ. हरिनारायणदीक्षितविरचितं राधाचरितमहाकाव्यम् | डॉ. ललितकिशोरशर्मा | 101 |
| 15. | वेदेषु पर्यावरण चिन्तम् | डॉ. आभा द्विवेदी | 108 |
| 16. | स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमादितव्यम् - इति तैत्तिरीयश्रुतेः धर्मशास्त्रीयविमर्शः | डॉ. दयानन्दपाणिग्राही | 112 |
| 17. | समसामयिकसमाजकल्याणार्थं यमः | डॉ. शुभांकर बसक | 120 |
| 18. | ध्वन्यालोकलोचने निर्दिष्टं वाक्तत्त्वम् | विपाशा जैनः | 126 |
| 19. | यदागमपरिभाषायाः नागेशगूढार्थदीपिकानुसारी विमर्शः | डॉ. वि. श्रीनिवासनारायणः | 130 |

| | | | |
|---|---|---|---|
| 20. | नादबिन्दूपनिषदि अद्वैतवेदान्तदिशा ज्ञानिनः प्रारब्धकर्मभावाभावविमर्शः | सचिन द्विवेदी | 137 |
| 21. | लोकधर्मि साहित्यम् | डॉ. छोटी बाई मीणा | 141 |
| 22. | आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि और गोस्वामी तुलसीदास | रेखा पाण्डेय | 146 |
| 23. | वित्तीय कार्यों में महिलाओं की भूमिका (राजस्थान विधानसभा में अनुदान मांगों पर महिला प्रतिनिधियों की भूमिका के विशेष संदर्भ में) | सीमा अग्रवाल | 151 |
| 24. | आचार्य यास्क का सर्वतन्त्रस्वतन्त्रत्व | डॉ. बिपिन कुमार झा<br>डॉ. दीपिकादीक्षित | 157 |
| 25. | नागरीदास कृत 'इश्कचमन' में प्रेम और भक्ति का स्वरूप | डॉ. सुरेश सिंह राठौड़ | 162 |
| 26. | डॉ. हरिनारायण दीक्षित प्रणीत राष्ट्रिय सूक्ति संग्रह में राष्ट्रिय भावना | डॉ. हेमवती नंदन पनेरु | 171 |
| 27. | प्रभावी शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका | डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार | 177 |
| 28. | वैश्वीकरण एवं महिलाओं की बदलती स्थिति : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन (उच्च शिक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के विशेष सन्दर्भ में) | डॉ. राजश्री मठपाल<br>डॉ. मल्लिका शेखर | 182 |
| 29. | गोस्वामी तुलसीदास जी का लोकनायकत्व एवं समन्वयवाद | डॉ. ब्रह्मा नन्द मिश्र | 191 |
| 30. | प्रणव जप के द्वारा अवसाद पर प्रभाव : एक अध्ययन | मनोज विश्नोई,<br>डॉ. कल्पना जैन | 198 |
| 31. | अभिवृत्ति का स्वरूप एवं महत्त्व | डॉ. बलबीर सिंह मीना | 206 |
| 32. | काव्यभाषा विमर्श (अलंकार और वक्रोक्ति के आलोक में) | कौशल किशोर प्रजापत | 212 |
| 33. | देवालय वास्तु के विविध अङ्ग | राहुल दे | 220 |
| 34. | 'प्रकृतिसौंदर्यम्' नाटक में वर्णित गुरुकुल पद्धति | ममता<br>डॉ. विजय गर्ग | 227 |
| 35. | रघुवंशमहाकाव्य में वर्णित पर्वत : एक साहित्यिक अध्ययन | स्मिता यादव | 236 |

UGC CARE Listed (Arts and Humanities) ISSN : 2347-9892

# शोधप्रज्ञा

## Śodha-prajñā

अर्द्धवार्षिकी, अन्ताराष्ट्रिया, मूल्याङ्किता, समीक्षिता च शोधपत्रिका

Biannual, International, Refereed / Peer Reviewed and
UGC CARE Listed (Arts & Humanities) Research Journal

वर्षम् - नवमम् अङ्कः - नवदशः दिसम्बरमासः - २०२२

प्रधानसम्पादकः
प्रो. दिनेशचन्द्रशास्त्री
कुलपतिः

सम्पादकः
डॉ. प्रकाशचन्द्रपन्तः

प्रकाशकः
उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालयः, हरिद्वारम्
उत्तराखण्डम्

# अनुक्रमणिका


| क्रम सं. | विषय | नाम | पृष्ठ सं. |
|---|---|---|---|
| 1. | पणिनीयव्याकरणे पदस्वरूपसमीक्षणम् | डा. मलयपोडे | 1 |
| 2. | ज्योतिषशास्त्रानुसारं नवग्रहमीमांसा | डॉ.रतनलालः भगवतीप्रसादबिजल्वाणः | 8 |
| 3. | कालिदासस्य सामाजः, मूल्यशिक्षा च | डॉ.प्रकाशचन्द्रपन्तः | 15 |
| 4. | 'प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' इति सूत्रार्थविचारः | डॉ. चिरंजीवी अधिकारी | 22 |
| 5. | रामायणे भावध्वनिविचारः | डॉ. अनिलकुमारः | 26 |
| 6. | सन्देहालङ्कारस्य काव्यशास्त्रीयमीमांसा | डॉ.कंचनतिवारी | 32 |
| 7. | उत्तराखण्डे संस्कृतेऽनूदितसाहित्ये अनुप्रासालंकारविश्लेषणम् | डा. रितेशकुमारः | 36 |
| 8. | स्तोत्रकाव्यपरम्परा विकासश्च | डॉ.रामरतनखण्डेलवालः मनमुदितनारायणशुक्लः | 39 |
| 9. | बृहद्भूषणदृष्ट्या नामार्थविमर्शः | आशुतोषः काला | 43 |
| 10. | व्यक्तित्वस्य निर्धारकाः | डॉ. सुमनप्रसादभट्टः | 53 |
| 11. | कादम्बरीहर्षचरितयोर्बाणभटटस्य काव्यसौन्दर्यम् | प्रो. प्रसूनदत्तसिंहः सुपर्णा सेनः | 64 |
| 12. | रामायणमहाकाव्ये मोक्षस्य अवधारणा | तरणीकुमारपण्डा | 69 |
| 13. | वर्तमानसमाजोपलब्धसमस्याः वैदिकसमाधानानां विश्लेषणम् | देवसुजन-मुखार्जी | 77 |
| 14. | विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः-एकमध्ययनम् | डा. चन्द्रकान्त पण्डा | 82 |
| 15. | भारतीय सनातन परम्परा के संवाहक के रूप में उदासीन अखाड़े का ऐतिहासिक सर्वेक्षण | डा. कमलेश पन्त डा. अजय परमार | 93 |
| 16. | सनातन वैदिक शिक्षा सिद्धान्त | डा. अरुण कुमार मिश्र | 102 |
| 17. | महाभारत के काल निर्णय में ज्योतिष का योगदान | डॉ. भगवानदास जोशी | 105 |
| 18. | संस्कृत-काव्यशास्त्रीय अनुशीलन | डा. मनोज किशोर पंत | 112 |
| 19. | सृष्टिरचना के वैदिक एवं आधुनिक सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन | डा. श्रुतिकान्त पाण्डेय | 116 |
| 20. | भारतीय ज्ञान परम्परा में महर्षि याज्ञवल्क्य का शिक्षादर्शन | डा. अरविन्दनारायण मिश्र | 122 |
| 21. | वर्तमान समय में व्यावसायिक आचारों के परिप्रेक्ष्य में मूल्य शिक्षा | डॉ. प्रेमसिंह सिकरवार | 125 |

॥ श्रीमते रामानुजाय नमः ॥

ISSN-2321-7618

# श्रीरङ्गलक्ष्मीः

(वार्षिक शोध-पत्रिका)

वर्ष - 2023

प्रधान-सम्पादकः

डॉ. अनिलानन्दः, प्रभारीप्राचार्यः

सम्पादकौ

डॉ. विभा गोस्वामी

सहायकाचार्या, साहित्यविभागः

डॉ. राजेशकुमारशुक्लः

सहायकाचार्यः, आधुनिक विभाग (हिन्दी)

प्रकाशकः

श्रीरङ्गलक्ष्मी-आदर्श-संस्कृत-महाविद्यालयः वृन्दावनम्

(मथुरा) उ. प्र. -281121

ISSN-2321-7618

# अनुक्रमणिका


| | | |
|---|---|---|
| मङ्गलाशीपः | आचार्य रविशंकर मेनन | 5 |
| विद्यलयस्य प्रार्थना | ;--- | 6 |
| सम्पादकीयम् | डॉ. अनिलानन्द | 7 |
| नित्यानित्यवस्तुविवेकविमर्शः | डॉ. अनिलानन्द | 8 |
| महाभाष्यस्य वैशिष्टयम् | डॉ. रीतेश कुमार पाण्डेय | 16 |
| लक्षणायाः स्वरूपम् | डॉ. केशव प्रसाद पौड्याल | 19 |
| स्वतन्त्रता आन्दोलन में संस्कृत साहित्य की भूमिका | डॉ. विभा गोस्वामी | 23 |
| भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में साहित्य का अवदान | डॉ. राजेश कुमार शुक्ल | 27 |
| वीर सावरकर : स्वातन्त्रय यज्ञ के पुरोधा | प्रो. अवनीश अग्रवाल | 34 |
| स्वाधीनता आन्दोलन में विभिन्न आचार्यों..... | डॉ. गौरव सिंह | 40 |
| भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संस्कृत साहित्यकारों.. | डॉ. प्रेम सिंह सिकरवार | 44 |
| स्वाधीनता आन्दोलन में मुंशी प्रेमचन्द्र ..... | नेहा शर्मा | 48 |
| स्वाधीनता आन्दोलन में साहित्य का अवदान | डॉ. रामकृपाल | 51 |
| एकात्ममानववादस्य प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्यायस्य.. | डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा | 57 |
| गौ माता का वर्द्धन | डॉ. रश्मि वर्मा | 60 |
| राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में साहित्य का अवदान | डॉ. बृजमोहन शर्मा | 67 |
| स्वाधीनता आन्दोलन और साहित्य | सत्यम मिश्र | 69 |
| उग्र जी की कहानियों में राष्ट्रीय चेतना के स्वर | डॉ. मनोज कुमार दुबे | 72 |
| श्रीमद्भगवद्गीता में संस्कृत शिक्षण विधियाँ | श्रवण कुमार उपाध्याय | 79 |
| ईश्वर की सत्ता और महत्ता | डॉ. रामानुजाचार्य | 83 |
| प्रेमचन्द्र के उपन्यासों में स्वाधीनता आन्दोलन | डॉ. रेखा मिश्रा | 87 |
| परमादर्श राजा राम | डॉ. सुदर्शन शर्मा | 90 |
| आधुनिक संस्कृत साहित्य व हिन्दी साहित्य द्वारा... | सुधांशु | 94 |
| स्वाधीनतया साहित्यावदानम् | अभिषेक परगाँई | 96 |
| स्वतन्त्रतासंग्रामे साहित्यस्य योगदानम् | आरती | 98 |
| Contribution of Literature in Freedom Movement | | 100 |

ISSN-2321-7618

# भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संस्कृत साहित्यकारों का योगदान

- डॉ. प्रेम सिंह सिकरवार
सहायक आचार्य, शिक्षापीठ, श्री ला. ब. शा.रा. सं. विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-110016

**शोधसार -**

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संस्कृत साहित्य का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। संस्कृत साहित्य का महत्व प्राचीन काल से ही हमें प्रगति के मार्ग पर ले जाने में मदद करता हुआ; संस्कृति, अध्यात्म, दर्शन, समाज, विज्ञान, कला, संगीत, प्रकृति, मनोरंजन, प्रेरणा आदि के क्षेत्रों में हमें प्रेरित करता रहा है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संस्कृत साहित्यकारों का योगदान विशेष उल्लेखनीय है, जिनमें क्षमाराव, गंगा प्रसाद उपाध्याय, हरिप्रसाद द्विवेदी शास्त्री, अप्पा शास्त्री, राशि वडेकर, हरिदास सिद्धान्त वागीश आदि।

**बीज बिन्दु -**

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन, संस्कृत साहित्यकारों पण्डिता क्षमाराव, गंगा प्रसाद उपाध्याय, हरि प्रसाद द्विवेदी शास्त्री, अप्पा शास्त्री, राशि वडेकर, हरिदास सिद्धान्त वागीश, योगदान।

**भूमिका -**

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन में संस्कृत साहित्य का योगदान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। संस्कृत भाषा के माध्यम से सभी प्रकार के वाङ्मय का निर्माण होता आ रहा है। भारतीय संस्कृति और विचार धारा का माध्यम होकर भी संस्कृत भाषा अनेक दृष्टियों से धर्मनिरपेक्ष (सेक्यूलर) रही है।

संस्कृत साहित्य का महत्त्व प्राचीनकाल से ही हमें प्रगति के मार्ग पर ले जाने में मदद करता हुआ, संस्कृति, आध्यात्मिकता, दर्शन, समाज, विज्ञान, कला, संगीत, प्रकृति, मनोरंजन, प्रेरणा आदि के क्षेत्रों में हमें प्रेरित करता रहा है, जिसका अवदान आज भी भारतीय संस्कृत साहित्य में देखा जा सकता है।

इस पृथ्वी पर शायद ही कोई मनुष्य होगा जिसे अपने राष्ट्र, अपनी जन्मभूमि से प्रेम न हो। रामायण में श्रीराम ने कहा है -

**अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।**
**जननी ज न्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥**

अन्य भाषा के रचनाकारों की तरह संस्कृत के कवियों की लेखनी ने भी अपने राष्ट्र के नव जवानों को जागरूक करने का कार्य किया। इन्होंने अपने दृश्य-श्रव्य काव्य के माध्यम से जनमानस के

हृदय में राष्ट्रीय भावनाएँ उत्पन्न कीं। परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़ी भारतमाता को स्वतन्त्र कराने के लिए इन संस्कृत साहित्यकारों तथा कवियों ने अपनी रचनाओं द्वारा लोगों के मस्तिष्क को झकझोर दिया। इस राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने में इन सभी भाषा भाषी लेखकों का महनीय योगदान रहा है। कुछ प्रमुख संस्कृत लेखक और उनकी रचनाएँ इस प्रकार हैं –

**पण्डिता क्षमाराव**

इनका जन्म 1890 ई. में पूना जनपद में हुआ। इनके पिता का नाम शंकर पाण्डुरंग था। ये संस्कृत के अतिरिक्त मराठी और अंग्रेजी में भी रचनाएँ करती थीं। इनका देहान्त 1954 ई. में हुआ। इनकी राष्ट्रभक्तिपरक तीन रचनाएँ संस्कृत भाषा में लिखी हुई हैं जो भारतीय संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, जो निम्न हैं –

**सत्याग्रहगीता, उत्तरसत्याग्रहगीता और स्वराज्यविजय –**

सत्याग्रह गीता (महाकाव्य) में उन्होंने 1931–1944 ई. तक की घटनाओं का वर्णन किया है। यह तीन भागों में विभक्त है। इसमें अनुष्टुप छन्द का प्रयोग हुआ है। कवयित्री लिखती हैं कि मैं भले ही मन्दबुद्धि हूँ, लेकिन मैं अपने राष्ट्र से प्रेम करती हूँ और इसका यशोगान करती हूँ। जैसे –

**तथापि देशभक्त्याऽहं जाताऽस्मि विवशीकृता।**
**अत एवास्मि तद्गातुमुद्यता मन्दधीरपि॥**

कवि या लेखक युगद्रष्टा होता है। पण्डिता क्षमाराव के इस काव्य को पढ़कर यह स्वयं सिद्ध हो जाता है। पण्डिता क्षमाराव ने उस समय स्पष्ट लिखा था कि अगर हमारे देशभक्त इस प्रकार निरन्तर लगे रहे तो हमारा देश एक दिन स्वतन्त्र हो जायेगा। उनकी यह बात सही भी हुई और आज हम आजाद भारत में साँस ले रहे हैं। यथा –

**कुर्वन्तो नित्यमेवं हि स्वातन्त्र्यं प्राप्स्यथाचिरात्।**
**स्वातन्त्र्यादपि भूतानां प्रियमन्यत्र विद्यते॥**

**गंगा प्रसाद उपाध्याय**

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जिले के नदरई ग्राम में 1881 ई. को हुआ। इन्होंने अपने आर्योदय महाकाव्य के माध्यम से देशवासियों से कहा है कि देश की लड़ाई में हमें आपसी भेदभाव, ईर्ष्या, द्वेष भूलकर एक हो जाना पड़ेगा तभी हम अंग्रेजों को यहाँ से भगा पायेंगे। अगर हम आपस में छोटी-छोटी बातों को लेकर लड़ते रहे तो हम कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पायेंगे। यथा–

**पश्येत् को वा स्वहितविषयान् स्वार्थभावान् विहाय।**
**रक्षेत् को वा रिपुगणकराद् देशधान्यं धनं वा।**
**कुर्यात् को वा परवशहतां मातरं शल्यशून्यां**
**को वा भव्यां भरतधरणीं मोचयेच्छत्रुपाशात्॥**

कवि पुनः कहता है कि अगर हम यह सोचते रहे कि कोई अन्य इस कार्य को करेगा, तो देश कभी भी आजाद नहीं होगा। हमें ही स्वयं आगे बढ़ना होगा, यथा -

काङ्क्षामात्रमलं नृणां न हृदये साध्यस्य पुर्तौक्वचित्,
योग्यायैव ददाति वाञ्छिति फलं विश्वम्भरः सर्वदा।
यावद्दुष्टगुणांस्त्यजेन्न जनता जातीयताधातकान
तावच्छाक्तिमुपैति नैव न च वा मुञ्चेत पराधीनताम्॥

**हरिप्रसाद द्विवेदी शास्त्री**

इनका जन्म उत्तर प्रदेश के अलीगढ़ जनपद के बाण ग्राम में 1892 ई. को हुआ। अपनी कविता में वे कहते हैं कि यह जो गंगा की लहरें कल-कल से यह उपदेश देती हैं कि मनुष्य को भी जाति, धर्म से ऊपर उठकर सोचना चाहिए, तभी राष्ट्र की उन्नति होगी। यथा -

त्रिधाराणां यस्मिन् पृथगगभुवां सङ्गमवरः
स्वरूपाद् भिन्नानां दिशति लहरीणां कलकलैः।
गुणैर्जात्या रूपैरिह जगति भिन्नैरपि जनै-
र्मिथः सङ्गन्तव्यं सुमतिसुखसिद्धयै सहृदयैः॥

**अप्पा शास्त्री राशि वडेकर**

इनका जन्म 1873 ई. को कोल्हापुर में हुआ था। इनके पिता का नाम सदाशिव शास्त्री था। इनका स्वर्गवास 25 अक्टूबर 1913 ई. को हुआ। परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े भारत को स्वतन्त्र करने के लिए कवि ने प्रतीकात्मक शैली का सहारा लिया। वे अपनी कविता (पञ्जरबद्धः शुकः) में लिखते हैं कि – हे तोते तुम तो सोने के पिंजरे में बन्द हो तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए। यथा –

शुक सुवर्णमयस्तव पञ्जरो विविधरत्नचयप्रतिमण्डितः।
कलयते हृदयं न मुदान्वितं समपसार्य मनः क्लममन्वहम्॥

वे पुनः लिखते हैं कि परतन्त्र मृत्यु के समान हैं। ताते का सहारा लेकर देशवासियों को समझाते हुए कवि कहता है कि हे शुक! इस सोने के पिंजरे को पिंजरा मत समझ। इस पिंजरे में जो सलाखें लगी हैं वह मृत्यु का मुख हैं। यथा –

शुक सुवर्णमयस्यतव पञ्जरो न खलु पञ्जर एष विभाव्यताम्।
मुखमिदं ननु हेमशलाकिका-रदनशालि मृतेरतिभीषणम्॥

**हरिदास सिद्धान्त वागीश**

इनका जन्म बंगाल के फरीदपुर जिले में कोटालपाड़ा-अनशिया ग्राम में 1876 ई. में हुआ था। इनका देहान्त 1961 ई. में हुआ। अपने 'मिवारप्रताप' नाटक में यवन आक्रमणकारियों को समझाते हुए

कवि कहता है कि तुम सब अपने देश लौट जाओ। तुम्हारी बस्ती हमारे हिन्दुस्तान में उसी प्रकार शोभा नहीं पा रही है, जैसे शरद् ऋतु में बादल। यथा -

हिन्दुस्थाने यवनवसतिर्नोचिताभारतेऽस्मिन्।
नीहारोघस्थितिरिव शरद्योम्नि नक्षत्रदीप्ते॥
तस्मादस्मान्निजनिजधिया यात यूयं स्वदेशान्।
अस्त्रस्त्रोतः स्त्रवतृ न खलु च्छिन्नभिन्नाच्छरीरात्॥

**निष्कर्ष -**

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि देश के प्रत्येक व्यक्ति ने अपने-अपने स्तर से राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने में अपना अवदान दिया। जिस देश को स्वतन्त्र कराने में देश के सहस्त्रों नवजवानों ने हँसते-हँसते मौत को गले लगा लिया, आज मुट्ठीभर चन्द लोग उसी राष्ट्र को पुनः गुलाम कराने में लगे हुए हैं। वे राष्ट्र विरोधी नारे लगा रहे हैं। जातिवाद, धर्मवाद, क्षेत्रवाद, भाई भतीजाबाद आदि पर लड़ रहे हैं। जिसकी कल्पना हमारे राष्ट्र नायकों ने स्वप्न में भी नहीं की होगी। क्या इसी दिन को देखने के लिए हजारों बहनों ने अपनी माँग का सिन्दूर पोंछ लिया था? हजारों माताओं ने अपनी गोद सूनी कर ली थी। हजारों बच्चों के सर से पिता का साया क्या यही दिन देखने के लिए उठ गया था? आज राष्ट्र को फिर उसी राष्ट्रीय एकता की जरूरत है, जिस एकता का बीजारोपण हमारे पूर्वजों ने किया था।

**संदर्भ ग्रन्थ सूची -**


1. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास। सम्पादक डॉ. जगन्नाथ पाठक, उ. प्र. संस्कृत संस्थान प्रकाशन, लखनऊ, संस्करण 2000 ई.।
2. संस्कृत साहित्य का इतिहास, सम्पादक डॉ. कपिल देव द्विवेदी, चौखम्भा संस्कृत संस्थान प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 2000 ई.।
3. भारतीय संस्कृत साहित्य का इतिहास, सम्पादक डॉ. बलदेव उपाध्याय, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी, संस्करण - 1958 ई.।


* आत्मविश्वास में वह शक्ति है जो सहस्र विपत्तियों का सामना कर उन पर विजय प्राप्त कर सकती है।
* आत्मविश्वास की मात्रा हममें जितनी अधिक होगी, उतना ही हमारा सम्बन्ध अनन्त जीवन और अनन्त शक्ति के साथ गहरा होता जायेगा।
* जो मनुष्य आत्मविश्वास से सुरक्षित है वह उन चिन्ताओं, आशंकाओं से मुक्त रहता है, जिनसे दूसरे आदमी दबे रहते हैं।

- स्वेट मार्डन

HPMUL/2017/77762

ISSN 2582-2608

# निःश्रेयसी

# (NISSHREYASI)

Peer-Reviewed Multidisciplinary Annual Research Journal

Vol. 08

2024

## DEPARTMENT OF ADVAITA VEDANTA

योऽनूचानः स नो महान्।

केन्द्रीयसंस्कृतविश्वविद्यालयः

## CENTRAL SANSKRIT UNIVERSITY

VEDAVYAS CAMPUS, BALAHAR

Himachal Pradesh-177108

www.csu-balahar.edu.in

HPMUL/2017/77762

ISSN 2582-2446

| | | |
|---|---|---|
| Title | : | Nisshreyasi ( निःश्रेयसी ) |
| Vol. : | : | 08 |
| Year | : | 2024 |
| Price | : | 350/- |

© Vedavyas Campus



| | | |
|---|---|---|
| Copies | : | 100 |
| **Printed and Published by** | : | Prof. Satyam Kumari, Director<br>Central Sanskrit University, Vedavyas Campus,<br>Balahar, Himachal Pradesh-177108 |
| **Editor** | : | Prof. Manjunath S.G. |
| **Email** | : | vedanta.vvc@gmail.com |
| **Website** | : | http://csu-balahar.edu.in./journal_nisshreyasi.html |
| **Phone** | : | 7505639178 |
| **Printed at** | : | Sharma Trading Company<br>V.P.O. Pragpur Tehsil Pragpur Distt. Kangra H.P.<br>86288-33269 (M) |
| **Composed and Designed By** | : | Ajay Sharma for Sharma Trading Company |

HPMUL/2017/77762

ISSN 2582-2608

# विषयानुक्रमणिका

1. सम्पादकीयम् (iii)

2. समीक्षा-समितिः (iv)

3. परामर्शदातृ-समितिः (v)

| क्र. सं. | विषयः | लेखकः | पृ. सं. |
|---|---|---|---|
| 1. | वेदान्तदर्शने जीवस्वरूपम् | प्रो. सत्यम कुमारी | 1-2 |
| 2. | महावाक्यार्थदर्पणदिशा मोक्षसाधनविमर्शः | डॉ. गणपति वि. हेगडे | 3-5 |
| 3. | अद्वैतवेदान्तदर्शने आचार्यश्रीमधुसूदनसरस्वतीस्वामिनां योगदानम् | डॉ जि. नरसिंहुलु | 6-10 |
| 4. | संस्कृतानुरागि-बलदेवदासबिरलामहोदयस्य स्वतन्त्रतासङ्ग्रामे योगदानम् | प्रो. शीशरामः | 11-12 |
| 5. | मानव-मानस-महत्त्वं स्वभावश्च | डॉ. शम्भुनाथभट्टः | 13-15 |
| 6. | ब्रह्मसूत्रे सर्ववेदान्तप्रत्ययाधिकरणे मीमांसान्यायसंचारविमर्शः | डॉ. सचिन द्विवेदी | 16-17 |
| 7. | अद्वैतसिद्ध्युक्तदिशा सोपाधिकत्वविमर्शः | श्री आदित्य प्रकाश सुतारः | 18-19 |
| 8. | विद्यासहितस्य साधकस्य उत्क्रान्तिक्रमविचारः | श्री भोजराजः. टि | 20-23 |
| 9. | बिम्बप्रतिबिम्बवादानुसारं जीवेश्वरयोः स्वरूपविमर्शः | श्री शान्तिघोषः | 24-27 |
| 10. | उपनिषत्सु पुराणेषु च विद्यमानानाम् आख्यानानां तौलनिकमध्ययनम् | श्री राकेशः एम्. आर्. | 28-29 |
| 11. | कुन्दकुन्दाचार्यकृतप्रवचनसारग्रन्थे ज्ञानस्य स्वरूपम् | श्री प्रतापः, डॉ. योगेशकुमारजैनः | 30-34 |
| 12. | अग्निपुराणोक्तविविधविद्यासु शैक्षिकनिहितार्थाः | डॉ. सत्यदेवः | 35-37 |
| 13. | वर्तमानसमाजे मनसः एकाग्रतासम्पादने भगवद्गीतायाः प्रभावः | डॉ. प्रियाङ्का चन्द्र | 38-40 |
| 14. | वेदेषु सौहार्दचिन्तनम् | डॉ. अमित शर्मा | 41-43 |
| 15. | परिभाषेन्दुशेखरपरिभाषाभास्करयोः स्थिता यदागमपरिभाषा | श्री. सुब्रह्मण्यभट्टः | 44-45 |
| 16. | ऋग्वेदे कृषिविचारविमर्शः (कृषिमित् कृषस्व) | डॉ. नवीनभट्टः | 46-48 |
| 17. | सीमन्तोन्नयनसंस्कारस्य प्रासंगिकता | डॉ. प्रतिज्ञा आर्या | 49-51 |
| 18. | जैमिनिसूत्रे उदररोगः आयुर्वेददिशा तदुपचाराश्च | श्री गुलशन कुमारः | 52-53 |
| 19. | शैक्षिकक्षेत्रे सूचनासम्प्रेषणप्रविधिः | श्री रेड्डी शेखर ए. | 54-57 |
| 20. | संस्कृतभाषायाः आङ्ग्लभाषायाम् एवम् आङ्ग्लभाषायाः<br>प्रचरत्संस्कृतभाषायां प्रभावः | श्री पाढ जयः क. | 58-60 |
| 21. | वर्तमानसमये संस्कृतशिक्षणे संगणकस्य अनुप्रयोगः | डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः | 61-64 |
| 22. | Temples of Gujarat Reveal the Royal Patronage to Fine Arts | Ms. Hetvi Amit Shah | 65-67 |
| 23. | Yoga for Health, Happiness and Harmony | Dr. Darsana Roy | 68-69 |
| 24. | Privacy-Preserving Federated Learning :<br>Advancements, Challenges & Applications in Healthcare | Mr. Amit Walia, Dr. S.Shanthini | 70-73 |
| 25. | शारीरिक स्वास्थ्य एवं अष्टांग योग के यम | डॉ. सुबोध सिंह | 74-76 |
| 26. | महर्षि पतंजलि प्रणीत चतुर्व्यूहवाद का अनुशीलन | डॉ. वेदप्रकाश आर्य | 77-81 |
| 27. | संस्कृत ग्रन्थों में प्रतिपादित स्वाध्याय की महत्ता मनुस्मृति के विशेष आलोक में | डॉ. चंद्रिका | 82-84 |
| 28. | दूध के आयुर्वेदीय वैशिष्ट्य से आर्थिक सम्पन्नता | डॉ. विवेक शर्मा | 85-87 |
| 29. | विभिन्न रूपों में स्त्री - महाभारत के विशेष सन्दर्भ में | डॉ. स्मृति सैनी | 88-90 |
| 30. | तुलसीदास के काव्य में माया संबंधी चिंतन | डॉ. संजय गौतम | 91-94 |

# वर्तमानसमये संस्कृतशिक्षणे संगणकस्य अनुप्रयोगः

ISBN 2582-2608

डॉ. प्रेमसिंहसिकरवारः,

**शोधसारः ( Abstract)**

प्राचीनकालात् वर्तमानपर्यन्तं विकासस्य मूलाधारः शिक्षास्ति। शिक्षया एव मनुष्यः अद्य सभ्यः सुसंस्कृतः, विकसितः आत्मनिर्भरः श्रेष्ठश्च वर्तते। शिक्षा सार्वकालिका, सार्वभौमिका वा निरन्तरं प्रवहमाना भवति। शिक्षायाः क्रमबद्धे व्यवस्थिते च भूते सति व्यक्तेः वा समाजस्य प्रभावी विकासः भवति। अद्यत्वे अन्तर्जालसाहाय्येन जीवनस्य सर्वेषु क्षेत्रेषु संगणकस्य प्रयोगो भवति। दूरस्थव्यवसायक्षेत्रे व्यवसायः सरलः सहजश्च जातः अस्ति। संगणकः संस्कृतशिक्षणे निम्नलिखितसन्दर्भेषु उत्कृष्टयोगदानं ददाति।

(अ) शिक्षणे।
(ब) ऑनलाइनशिक्षणे।
(स) अनुदेशनात्मकसामग्रीविकासे।
(द) प्रयोगशालास्थापनायाम्।
(य) मूल्यांकने।
(र) निदानात्मकपरीक्षणे।
(ल) उपचारात्मकशिक्षणे।
(व) निर्देशने परामर्शप्रदाने च।

**भूमिका-**

प्राचीनकालात् वर्तमानपर्यन्तं विकासस्य मूलाधारः शिक्षास्ति। शिक्षया एव मनुष्यः अद्य सभ्यः सुसंस्कृतः, विकसितः आत्मनिर्भरः श्रेष्ठश्च वर्तते। शिक्षा सार्वकालिका, सार्वभौमिका, निरन्तरं प्रवहमाना च भवति। शिक्षायाः क्रमबद्धे व्यवस्थिते च भूते सति व्यक्तेः वा समाजस्य प्रभावी विकासः भवति। जीवने अद्य जटिलतायाः समस्यायाश्च आधिक्यं वर्तते। अस्यां परिस्थितौ जीवनं सुगमं सुखमयं च कर्तुं सूचनासम्प्रेषणमाध्यमानां महद्योगदानं वर्तते। शिक्षायां सूचनासम्प्रेषणमाध्यमानां प्रयोगेण: शिक्षणाधिगमं सरलं रुचिकरं शीघ्रग्राह्यं च कर्तुं सहयोगी वर्तते।

अद्यत्वे अन्तर्जालसाहाय्येन जीवनस्य सर्वेषु क्षेत्रेषु संगणकस्य प्रयोगो भवति। दूरस्थव्यवसायक्षेत्रे व्यवसायः सरलः सहजश्च जातः अस्ति। यन्त्रस्यास्योपयोगः भवननिर्माणे, विमानादीनां दिशानिर्देशने, रोगाणां सूक्ष्मपरीक्षणे, शोधकार्ये, वाणिज्ये, व्यवसाये च शिक्षाक्षेत्रे, मनोरञ्जनविधौ, ललितकलासु, प्राकृतिकोपादाने चिकित्सायां, बैंकिंगप्रणाल्यां, रेलवेपरिचालने चादिक्षेत्रेषु सहजतया भवति। शिक्षायां प्रवेशप्रक्रियाः अभिलेखानां संरक्षणं, शिक्षणाधिगमप्रक्रियायां, स्वाध्याये, अभ्यासे, मूल्यांकने, परिणामनिष्पादने च संगणकस्य प्रभावी भूमिका दृश्यते। संगणकः शिक्षकेभ्यः तादृशं सुगममुपकरणं वर्तते यत् एतेषु सर्वेषु कार्येषु शिक्षकाणां सहायतां करोति।

किंचित्कालपूर्वं संगणकस्य क्षेत्रं नियमितमासीत्। परन्तु अद्य एषः एकः अत्यन्तं सुग्राही दृश्यश्रव्योपकरणरूपेण प्रतिष्ठितः वर्तते। शिक्षायाः सिद्धान्तेन शोधाध्ययनेन निश्चितमस्ति यत् स एवाधिगमः प्रभावी भवति यस्मिन् सर्वाणीन्द्रियाणि संलग्नानि भवन्ति। संगणकः नेत्र-श्रोत्र-हस्तादिभिः इन्द्रियैः सार्धं मनः मस्तिष्कं च संचालयितुं शक्नोति। मनोवैज्ञानिकदृष्ट्यापि एषः अधिगमस्य कृते उपयोगी सिद्धः । विद्यालयस्य क्षेत्रे स्थानीयान्तर्जालं (लोकल एरिया नेटवर्क) तथा च विस्तृत-अन्तर्जालक्षेत्रं ज्ञानसम्प्रेषणस्य सामूहिकाधिगमस्य च क्षेत्रं विस्तारितमस्ति। इदानीं तु आभासी-विश्वविद्यालयस्य (वर्चुअल यूनिवर्सिटी) सम्प्रत्ययः मूर्तरूपं धृतवानस्ति। भाषासु प्राकृतभाषाप्रक्रियायां (नेचुरल लैंग्वेज प्रोसेसिंग) एकस्याः भाषायाः भाषान्तरे यथावत् अनुवादस्य क्षमता विकसिता अस्ति।

**शिक्षायां संगणकप्रयोगः -**

अध्यापकानां कृते संगणकः बहु-उपयोगि सहायकसाधनमस्ति। जीवनस्य प्रत्येकं क्षेत्रे संगणकस्य अद्वितीयं योगदानमस्ति। संगणकस्य गणनक्षमता संग्रहक्षमता च अत्यधिका वर्तते। संगणकमाध्यमेन परिणामनिष्पादने कालः अत्यल्पः अपेक्षते। प्रदर्शनं सरलमस्ति। द्वि-आयामी त्रि-आयामी च चित्ररचना सम्भवति। संगणकेन निष्कर्षः भविष्यवाणी च कर्तुं शक्येते। अद्य अस्मिन् कृत्रिमबुद्धिमत्तायाः अपि प्रयोगः सम्भाव्यते। संगणकस्य सम्भावनायाः क्षमतायाश्च यदि वयं विश्लेषणं कुर्मः तदा तु वर्तमानसमये संगणकप्रयोगस्य अनिवार्यता ज्ञायते। इदमपि ध्यातव्यमस्ति यत् संगणकस्य शिक्षकत्वेन अथवा शिक्षकस्य विकल्पत्वेन स्वीकारोक्तिः समुचिता नास्ति। संगणकः शिक्षकस्य प्रभावी सहायकः वर्तते। अभ्यासे, प्रतिपुष्टौ मूल्यांकने, अनुरूपणे, विश्लेषणे काल्पनिकविचारविकासे च संगणकः अत्यन्तं सहयोगी, उपयोगी